अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन

सहज

मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद

अनुभवात्मक अध्यात्मवाद

मान्यता : ज्ञान की व्यापकता एवं प्रकृति का अनादित्व

सिद्धान्त : श्रम – गति – परिणाम

ए. नागराज

श्री भजनाश्रम, अमरकंटक

जिला – अनूपपुर, म. प्र. (भारत) – 484886

प्रकाशक :

जीवन विद्या प्रकाशन, दिव्यपथ संस्थान

अमरकंटक, जिला - अनूपपुर (म.प्र.), भारत, 484886

www.divya-path.org | info@divya-path.org

प्रणेता एवं लेखक :

ए. नागराज

सर्वाधिकार दिव्यपथ संस्थान के पास सुरक्षित

सहयोग राशि : 200/-

पूर्व संस्करण : प्रथम - 2000, द्वितीय - 2009

मुद्रण : 14 जनवरी 2023

ISBN : 978-81-956883-1-9

प्रामाणिक वेबसाइट : www.madhyasth.org

प्रिंटेड पुस्तक प्राप्ति : books@divya-path.org

All Websites : www.jvidya.com

मुद्रक : युगबोध डिजिटल प्रिंटस,

समता कॉलोनी, रायपुर, छ.ग. – 492010

सदुपयोग नीति :

यह प्रकाशन 'सर्वशुभ' के अर्थ में है और इसका कोई व्यापारिक उद्देश्य नहीं है। इसका उपयोग एवं नकल, निजी अध्ययन के लिए उपलब्ध है। इसके अलावा किसी भी अर्थ में प्रयोग (नकल, मुद्रण, आदि) करने के लिए 'दिव्यपथ संस्थान', अमरकंटक, जिला अनुपपुर (म.प्र.) भारत - 484886 से पूर्व में लिखित अनुमति लेना अनिवार्य है। यह अपेक्षित है की इन अवधारणाओं को दूसरी जगह प्रयोग करते समय इस ग्रंथ का पूर्ण उद्धरण (संदर्भ) दिया जाएगा। कृपया दर्शन की पवित्रता बनाये रखें।

भूमिका

इस अनुभवात्मक अध्यात्मवादी प्रबंध को मानव के कर कमलों में अर्पित करते हुए परम प्रसन्नता का अनुभव कर रहा हूँ।

अनुभवात्मक अध्यात्मवाद अपने में अनुभवमूलक विधि से जीता जागता हुआ मानव की आपसी चर्चा है या दूसरी भाषा में अनुभवमूलक विधि से जीता जागता विवेक और विज्ञान की परामर्शात्मक प्रस्तुति है।

सौभाग्य यह रहा कि सहअस्तित्व रूपी अस्तित्व में अनुभव करने और उसकी अभिव्यक्ति को प्रस्तुत करने की सुखद घटना मेरे इस शरीर यात्रा में घटित हुई। यह मेरे ही स्वयं-स्फूर्त जिज्ञासा की परिणिति रही। नियति के अनुसार, अनुभव को व्यक्त करने का स्वरूप, प्रक्रिया, लक्ष्य और दिशा मुझे स्पष्ट हुई, जिसके आधार पर इस कृति की रचना संभव हो पाई।

जितनी भी सुनी हुई बातें हैं, उसके सार संक्षेप में, मेरे स्वयं को प्रमाणित होना ही, मेरा उद्देश्य बना रहा। इसी मानसिकता की गति जिज्ञासा में, जिज्ञासा शोध में, शोध अनुसंधान में प्रवर्तित होने के फलस्वरूप, नियति के अनुरूप होना संभव हो गया। अनुभवात्मक अध्यात्मवाद पूरा प्रबंधन रूप में साकार हुआ।

इस अभिव्यक्ति की संप्रेषणा में यही आशय निहित है कि अपने में अनुभव को भाषा रूप देना बन गया है। उसी प्रकार इसे अध्ययन करने वाले हर व्यक्ति में, भाषा को अर्थ रूप में स्वीकारने की महिमा समाई हुई है। इसी विश्वास से इसको मानव में, से, के लिए अर्पित करना संभव हुआ।

यह मैं अथ से इति तक अनुभव किया हूँ कि अनुभवमूलक विधि से किया गया सूझ-बूझ अर्थात् लक्ष्य और दिशा के अनुसार योजना और कार्य योजना तथा फल परिणाम - ऐसे फल परिणाम का अनुभव के अर्थ में सार्थक होना ही सर्वमानव सौभाग्य का स्वरूप होना पहचाना गया। इसी कारणवश इसे मानवता के लिए अर्पित किया गया है। इसी से अर्थात् अनुभवमूलक प्रणाली से न्यायपूर्वक जीना, समाधानपूर्वक जीना, व्यवस्था में जीना, समग्र व्यवस्था में भागीदारी करना, यह सभी संभव हो चुका है।

समग्र व्यवस्था में भागीदारी करने का तात्पर्य - मानवीय शिक्षा कार्य में, न्याय सुरक्षा कार्य में, परिवार की आवश्यकता से अधिक उत्पादन कार्य में, लाभ-हानि मुक्त विनिमय कार्य में, स्वास्थ्य-संयम कार्य में भागीदारी करने से है।

हम यह भी अनुभव कर चुके हैं कि हर समझदार मानव परिवार का समाधान समृद्धिपूर्वक जीना सुलभ होगा। मेरा यह भी विश्वास है कि हर मानव अर्थात् प्रत्येक नर-नारी समाधान, समृद्धि के प्यासे हैं। यह प्यास तृप्ति में परिवर्तित हो, यही इस अनुभव दर्शन का मूल उद्देश्य है।

इसका मानव में स्वीकृत होना, नियति विधि और नियति होने के आधार पर इसका लोकव्यापीकरण होना आवश्यक है। इसे स्वीकारने के उपरान्त ही, इसे प्रस्तुत किया।

मुझे पूरा भरोसा है कि मानव कुल में आदि काल से बनी हुई अभ्युदय की अपेक्षा प्रयासों के क्रम में यह ग्रन्थ सार्थकता की मंजिल तक पहुँचाने में उपयोगी होगा।

जय हो ! मंगल हो ! कल्याण हो !

- ए. नागराज

विकल्प

1. अस्थिरता, अनिश्चयता मूलक भौतिक-रासायनिक वस्तु केन्द्रित विचार बनाम विज्ञान विधि से मानव का अध्ययन नहीं हो पाया। रहस्य मूलक आदर्शवादी चिंतन विधि से भी मानव का अध्ययन नहीं हो पाया। दोनों प्रकार के वादों में मानव को जीव कहा गया है।

   विकल्प के रूप में अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन विधि से मध्यस्थ दर्शन, सहअस्तित्ववाद में मानव को ज्ञानावस्था में होने का पहचान किया एवं कराया।

   मध्यस्थ दर्शन के अनुसार मानव ही ज्ञाता (जानने वाला), सहअस्तित्व रूपी अस्तित्व जानने-मानने योग्य वस्तु अर्थात् जानने के लिए संपूर्ण वस्तु है यही दर्शन ज्ञान है इसी के साथ जीवन ज्ञान मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान सहित सहअस्तित्व प्रमाणित होने की विधि अध्ययनगम्य हो चुकी है। अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिन्तन ज्ञान, मध्यस्थ दर्शन, सहअस्तित्ववाद-शास्त्र रूप में अध्ययन के लिए मानव सम्मुख मेरे द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

2. अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन के पूर्व मेरी (ए. नागराज, अग्रहार नागराज, जिला हासन, कर्नाटक प्रदेश, भारत) दीक्षा अध्यात्मवादी ज्ञान वैदिक विचार सहज उपासना कर्म से हुई।

3. वेदान्त के अनुसार ज्ञान "ब्रह्म सत्य, जगत मिथ्या" जबकि ब्रह्म से जीव जगत की उत्पत्ति बताई गई।

उपासना	:-	देवी देवताओं के संदर्भ में।
कर्म	:-	स्वर्ग में मिलने वाले सभी कर्म (भाषा के रूप में)
मनु धर्म शास्त्र में	:-	चार वर्ण चार आश्रमों का नित्य कर्म प्रस्तावित है।
कर्मकाण्डों में	:-	गर्भ संस्कार से मृत्यु संस्कार तक सोलह प्रकार के कर्मकाण्ड मान्य है एवं उनके कार्यक्रम है।

   इन सबके अध्ययन से मेरे मन में प्रश्न उभरा कि -

4. सत्यम् ज्ञानम् अनन्तम् ब्रह्म से उत्पन्न जीव जगत मिथ्या कैसे है? तत्कालीन वेदज्ञों एवं विद्वानों के साथ जिज्ञासा करने के क्रम में मुझे :-

   समाधि में अज्ञात के ज्ञात होने का आश्वासन मिला। शास्त्रों के समर्थन के आधार पर साधना, समाधि, संयम कार्य संपन्न करने की स्वीकृति हुई। मैंने साधना, समाधि, संयम की स्थिति में संपूर्ण अस्तित्व सहअस्तित्व होने, रहने के रूप में अध्ययन, अनुभव विधि से पूर्ण समझ को प्राप्त किया जिसके फलस्वरूप मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद वाङ्गमय के रूप में विकल्प प्रकट हुआ।

5. आदर्शवादी शास्त्रों एवं रहस्य मूलक ईश्वर केंद्रित चिंतन ज्ञान तथा परंपरा के अनुसार - ज्ञान अव्यक्त अनिर्वचनीय।

मध्यस्थ दर्शन के अनुसार - ज्ञान व्यक्त वचनीय अध्ययन विधि से बोधगम्य, व्यवहार विधि से प्रमाण सर्व सुलभ होने के रूप में स्पष्ट हुआ।

6. अस्थिरता, अनिश्चियता मूलक भौतिकवाद के अनुसार वस्तु केंद्रित विचार में विज्ञान को ज्ञान माना जिसमें नियमों को मानव निर्मित करने की बात कही गयी है। इसके विकल्प में सहअस्तित्व रुपी अस्तित्व मूलक मानव केंद्रित चिंतन ज्ञान के अनुसार अस्तित्व स्थिर, विकास और जागृति निश्चित संपूर्ण नियम प्राकृतिक होना, रहना प्रतिपादित है।

7. अस्तित्व केवल भौतिक रासायनिक न होकर भौतिक रासायनिक एवं जीवन वस्तुएं व्यापक वस्तु में अविभाज्य वर्तमान है यही "मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद" शास्त्र सूत्र है।

सत्यापन

8. मैंने जहाँ से शरीर यात्रा शुरू किया वहाँ मेरे पूर्वज वेदमूर्ति कहलाते रहे। घर-गाँव में वेद व वेद विचार संबंधित वेदान्त, उपनिषद तथा दर्शन ही भाषा ध्वनि-धुन के रूप में सुनने में आते रहे। परिवार परंपरा में वेदसम्मत उपासना, आराधना, अर्चना, स्तवन कार्य संपन्न होता रहा।

9. हमारे परिवार परंपरा में शीर्ष कोटि के विद्वान सेवाभावी तथा श्रमशील व्यवहाराभ्यास एवं कर्माभ्यास सहज रहा जिसमें से श्रमशीलता एवं सेवा प्रवृत्तियाँ मुझको स्वीकार हुआ। विद्वता पक्ष में प्रश्नचिन्ह रहे।

10. प्रथम प्रश्न उभरा कि -

    ब्रह्म सत्य से जगत व जीव का उत्पत्ति मिथ्या कैसे?

    दूसरा प्रश्न -

    ब्रह्म ही बंधन एवं मोक्ष का कारण कैसे?

    तीसरा प्रश्न -

    शब्द प्रमाण या शब्द का धारक वाहक प्रमाण?

    आप्त वाक्य प्रमाण या आप्त वाक्य का उद्गाता प्रमाण?

    शास्त्र प्रमाण या प्रणेता प्रमाण?

समीचीन परिस्थिति में एक और प्रश्न उभरा

चौथा प्रश्न -

भारत में स्वतंत्रता के बाद संविधान सभा गठित हुआ जिसमें राष्ट्र, राष्ट्रीयता, राष्ट्रीय चरित्र का सूत्र व्याख्या ना होते हुए जनप्रतिनिधि पात्र होने की स्वीकृति संविधान में होना।

वोट-नोट (धन) गठबंधन से जनादेश व जनप्रतिनिधि कैसा?

संविधान में धर्म निरपेक्षता - एक वाक्य एवं उसी के साथ अनेक जाति, संप्रदाय, समुदाय का उल्लेख होना।

संविधान में समानता - एक वाक्य, उसी के साथ आरक्षण का उल्लेख और संविधान में उसकी प्रक्रिया होना।

जनतंत्र - शासन में जनप्रतिनिधियों की निर्वाचन प्रक्रिया में वोट नोट का गठबंधन होना।

ये कैसा जनतंत्र है?

11. इन प्रश्नों के जंजाल से मुक्ति पाने को तत्कालीन विद्वान, वेदमूर्तियों, सम्माननीय ऋषि महर्षियों के सुझाव से -

(1) अज्ञात को ज्ञात करने के लिए समाधि एक मात्र रास्ता बताये जिसे मैंने स्वीकार किया।

(2) साधना के लिए अनुकूल स्थान के रूप में अमरकण्टक को स्वीकारा।

(3) सन् 1950 से साधना कर्म आरम्भ किया।

सन् 1960 के दशक में साधना में प्रौढ़ता आया।

(4) सन् 1970 में समाधि संपन्न होने की स्थिति स्वीकारने में आया। समाधि स्थिति में मेरे आशा विचार इच्छायें चुप रहीं। ऐसी स्थिति में अज्ञात को ज्ञात होने की घटना शून्य रही यह भी समझ में आया। यह स्थिति सहज साधना हर दिन बारह (12) से अट्ठारह (18) घंटे तक होता रहा।

समाधि, धारणा, ध्यान क्रम में संयम स्वयम् स्फूर्त प्रणाली मैंने स्वीकारा। दो वर्ष बाद संयम होने से समाधि होने का प्रमाण स्वीकारा। समाधि से संयम संपन्न होने की क्रिया में भी 12 घंटे से 18 घंटे लगते रहे। फलस्वरूप संपूर्ण अस्तित्व सहअस्तित्व सहज रूप में होना रहना मुझे अनुभव हुआ। जिसका वाङ्गमय "मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद" शास्त्र के रूप में प्रस्तुत हुआ।

12. सहअस्तित्व :- व्यापक वस्तु में संपूर्ण जड़ चैतन्य संपृक्त एवं नित्य वर्तमान होना समझ में आया।
सहअस्तित्व में ही :- परमाणु में विकासक्रम के रूप में भूखे एवं अजीर्ण परमाणु एवं परमाणु में ही विकास पूर्वक तृप्त परमाणुओं के रूप में 'जीवन' होना, रहना समझ में आया।
सहअस्तित्व में ही :- गठनपूर्ण परमाणु चैतन्य इकाई – 'जीवन' रूप में होना समझ में आया।
सहअस्तित्व में ही :- भूखे व अजीर्ण परमाणु अणु व प्राणकोषाओं से ही संपूर्ण भौतिक व रासायनिक प्राणावस्था रचनायें तथा परमाणु अणुओं से रचित धरती तथा अनेक धरतियों का रचना स्पष्ट होना समझ में आया।

13. अस्तित्व में भौतिक रचना रुपी धरती पर ही यौगिक विधि से रसायन तंत्र प्रक्रिया सहित प्राणकोषाओं से रचित रचनायें संपूर्ण वन-वनस्पतियों के रूप में समृद्ध होने के उपरांत प्राणकोषाओं से ही जीव शरीरों का रचना रचित होना और मानव शरीर का भी रचना संपन्न होना व परंपरा होना समझ में आया।

14. सहअस्तित्व में ही :- शरीर व जीवन के संयुक्त रुप में मानव परंपरा होना समझ में आया।
सहअस्तित्व में, से, के लिए :- सहअस्तित्व नित्य प्रभावी होना समझ में आया। यही नियतिक्रम होना समझ में आया।

15. नियति विधि :- सहअस्तित्व सहज विधि से ही :-

(i) अस्तित्व में चार अवस्थाएं

○ पदार्थ अवस्था

○ प्राण अवस्था

○ जीव अवस्था

○ ज्ञान अवस्था

और

(ii) अस्तित्व में चार पद

○ प्राणपद

○ भ्रांति पद

○ देव पद

○ दिव्य पद

(iii) और

- विकास क्रम, विकास
- जागृति क्रम, जागृति

तथा जागृति सहज मानव परंपरा ही मानवत्व सहित व्यवस्था समग्र व्यवस्था में भागीदारी नित्य वैभव होना समझ में आया। इसे मैंने सर्वशुभ सूत्र माना और सर्वमानव में शुभापेक्षा होना स्वीकारा फलस्वरूप चेतना विकास मूल्य शिक्षा, संविधान, आचरण व्यवस्था सहज सूत्र व्याख्या मानव सम्मुख प्रस्तुत किया हूँ।

भूमि स्वर्ग हो, मनुष्य देवता हो,
धर्म सफल हो, नित्य शुभ हो।

- ए. नागराज

इस ग्रंथ से

- भ्रमित स्थिति में मानवीयता के विपरीत जीवों के सदृश्य जीना देखने को मिलता है, जबकि मानव की मौलिकता मानवीयता ही है। जागृति सहज विधि से मानवीयता स्वयं-स्फूर्त विधि से प्रमाणित होती है।
- अनुभव (जागृति) के पश्चात् नैतिकता पूर्वक मानव व्यवस्था में भागीदारी को निर्वाह कर पाता है, चरित्रपूर्वक व्यवहार करता है और संबंध, मूल्य, मूल्यांकन, उभयतृप्तिपूर्वक जी पाता है। यही सुख, सुन्दर और समाधानपूर्वक जीने की कला का स्वरूप है।
- जागृति के अनन्तर हर व्यक्ति स्वाभाविक रूप में असंग्रह प्रतिष्ठा को समृद्धिपूर्वक, स्नेह प्रतिष्ठा को पूरकतापूर्वक, विद्या प्रतिष्ठा को जीवन विद्यापूर्वक, सरलता प्रतिष्ठा को सहअस्तित्व दर्शनपूर्वक, अभय प्रतिष्ठा को मानवीयतापूर्ण आचरणपूर्वक वैभवित होने के लिए कार्य करता हुआ देखने को मिलता है।
- जागृत जीवन ही ज्ञाता है, जीवन सहित सम्पूर्ण अस्तित्व ज्ञेय है और जागृत जीवन का परावर्तन क्रियाकलाप ही ज्ञान है।
- आशा बंधन इन्द्रियों द्वारा सुखी होने के रूप में, विचार बंधन व्यक्ति द्वारा अपने विचारों को श्रेष्ठ मानने के रूप में और इच्छा बन्धन रचना कार्य की श्रेष्ठता को स्पष्ट करने के रूप में होता है।
- जीवन नित्य होने के कारण अस्तित्व में ही वर्तमान रहता है। यही मानव शरीर यात्रा समय में मानव कहलाते हैं, शरीर त्यागने के उपरांत यही देवी, देवता, भूत-प्रेत कहलाते हैं।

अनुक्रमणिका

	अध्याय	पृष्ठ संख्या
1.	समीक्षा एवम् प्रस्ताव	1
2.	अनुभवात्मक अध्यात्मवाद : एक परिचय	5
3.	अनुभव सहज प्रामाणिकता सर्व मानव में, से, के लिए समान है	27
4.	आत्मा जीवन में अविभाज्य है	24
	सारणी - जागृत जीवन के 122 आचरण	44
5.	बन्धन और मुक्ति	65
6.	दृष्टा, कर्ता, भोक्ता	103
7.	जागृति कैवल्य	137

अध्याय - **1**

समीक्षा एवम् प्रस्ताव

सुदूर विगत से ही अध्यात्मवादी, अधिदैवीयवादी और अधिभौतिकवादी विचार मानव-मानस में स्मृति और श्रुति के रूप में हैं। कल्पनाओं-परिकल्पनाओं के आधार पर वाङ्गमय रचना बहुत सारा हुआ है। इसमें अनेकानेक मानव ने भागीदारी का निर्वाह किया घोर परिश्रम किया। इसी क्रम में घोर तप, योगाभ्यास, यज्ञ, दान के रूप में भी अपने-अपने आस्थाओं के साथ जीकर दिखाया अथवा करके दिखाया। इन्हीं सब कृत्यों को आदर्शवादी कृत्य भी मानते आये हैं। क्योंकि ये सब कृत्यों को सब नहीं कर पाते थे। न करने वाले के लिए, करने योग्य कृत्यों के रूप में सभी प्रकार के धर्म ग्रंथ बताते आये। ये सब करने के उपरांत भी अध्यात्म, देवता और ईश्वर ये सब रहस्य में ही रहे। रहस्य की परिभाषा है - हम मानव जो कुछ जानते नहीं है वह सब रहस्य होना समीक्षित हुआ। इस विधि से नहीं जानते हुए मनवाने के जितने भी प्रयास हुए वह सब आस्थावादी कार्यकलाप के रूप में गण्य हुआ। आस्था का परिभाषा ही है नहीं जानते हुए किसी के अस्तित्व को स्वीकार करना। यह सर्वविदित है।

ईश्वर, अध्यात्म और देवी-देवता के अधीनता में ही जीव जगत होना वाङ्गमयों में बताया गया है। अनजान घटनाओं की व्याख्या करने के क्रम में जीव-जगत अध्यात्म, देवी-देवता और ईश्वराधीन है इसके समर्थन में बहुत कुछ लिखा गया है। इन सभी प्रयासों का महिमा सहित अर्थात् बहुत सारे साधनों को नियोजित करने के उपरांत भी अध्ययन विधि से कोई प्रमाण, अनुभव विधि से कोई प्रमाण, प्रयोग विधि से कोई प्रमाण और व्यवहार विधि से कोई प्रमाण मिला नहीं। जबकि कोई मानव रहस्य को वरता नहीं। आस्था के आधार पर अपने कल्पनाशीलता के अनुरूप रहस्य को सजाने गया वही वाङ्गमय का स्वरूप बना। इसका आधार केवल मानव सहज कल्पनाशीलता-कर्म स्वतंत्रता ही है और मानव कर्म करते समय स्वतंत्र, फल भोगते समय परतंत्र रहा।

इस समीक्षा को यहाँ इसीलिये प्रस्तुत किये हैं कि हर मानव सत्य, समाधान, व्यवस्था, न्याय, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व को प्रमाणित करना चाहते हैं। हर मानव जन्म से ही सत्य वक्ता होता है इसलिए सत्य बोध होने की आवश्यकता है। भौतिकवादी और आदर्शवादी विधि से सत्यबोध होना मानव जाति के लिए प्रतीक्षित है। इसलिए सर्वतोमुखी समाधान और न्यायबोध होना अभी तक प्रतीक्षित है, अर्थात् 20वीं शताब्दी के दसवें दशक तक प्रतीक्षित है। विक्रम शताब्दी के अनुसार 2052 आषाढ़ मास तक प्रतीक्षित है। इसी

सर्वेक्षण, निरीक्षण और परीक्षण के आधार पर "अनुभवात्मक अध्यात्मवाद" की आवश्यकता को पहचाना गया।

रहस्यमय और सुन्दर कल्पना के आधार पर अर्थात् मनलुभावन विधि से वाङ्गमयों में मोक्ष और स्वर्ग की कल्पनाएँ प्रस्तुत की गई है। जहाँ तक मोक्ष की बात है अध्यात्म विधि से ऐसा बताया गया है कि जीवों के हृदय में आत्मा रहता है। वह आत्मा ब्रह्म में अथवा परमात्मा में विलय हो जाता है। इसके लिये ब्रह्म ज्ञान ही एकमात्र शरण स्थली बताया गया। कुछ प्रणेताओं का कहना है यह एकांत विधि से संभव है और कुछ प्रणेताओं का कहना है घोर तप से, कुछ प्रणेताओं का कहना है योगाभ्यास से, संघ के शरण में जाने से, और कुछ प्रणेताओं का कहना है योग और संयोग से, होता है। ये सब मोक्ष के संबंध में बताए गए उपायों के क्रम में इंगित कराया गया। इंगित कराने का तात्पर्य स्वीकारने योग्य तरीके से है। और भी कुछ प्रणेता लोगों का कहना है कि प्रलय काल में परिणाम मोक्ष के रूप में जीव-जगत, ब्रह्म में अथवा देवी, देवता में विलय हो जाता है। ('वह' का तात्पर्य ऊपर कहे गये अध्यात्म, ईश्वर, देवी, देवताएँ) सबका कल्याण करेगा तब तक ईश्वरीय नियमों के साथ-साथ जीना ही धर्म संविधान है। ऐसा बताया करते हैं।

जहाँ तक स्वर्ग की बात है इसे, इस धरती से भिन्न स्थली में संजोने का वाङ्गमयों में प्रयत्न किया। उन-उन लोक में कोई देवी-देवता का होना और उन्हीं के आधिपत्य में उनका सौन्दर्य और सुख रहने का विधि से बताया गया है। इन वाङ्गमयों में स्वर्ग को सर्वाधिक सम्मोहनात्मक और आकर्षक विधियों से सजा हुआ बताया गया है वहाँ पहुँचने के लिए जो ज्ञात स्थिति है वह पुण्य ही एक मात्र पूंजी बताई गई है। पुण्य को पाने के लिए स्वार्थी को परमार्थी होना आवश्यक बताया। अतिभोग-बहुभोगशीलता गलत है। इसी के साथ-साथ स्वर्ग की अर्हता को पूरा करने के लिए त्याग का उपदेश दिया गया। ज्यादा से ज्यादा सुख-सुविधावादी वस्तुओं का दान योग्य पात्रों को करने से स्वर्ग में अनंत गुणा सुख सुविधाएं मिलने का आश्वासन किताबों में लिखा गया। ध्यान, स्मरण, कृत्यों को पुण्य कमाने का स्त्रोत बताया गया। इसी के साथ-साथ अवतारी आचार्य, गुरू, सिद्ध, आश्वासन देने में समर्थ व्यक्तियों का सेवा, सुश्रुषा, उनके लिए अर्पित दान, स्तुति, कीर्तन ये सब पुण्य कमाने का विधि बताए। इसी के साथ-साथ परोपकार, जीव, जानवर, पशु पक्षीयों के साथ प्रेम, फूल-पत्ती, पेड़ के साथ दया करने को भी कहा। साथ ही मन को धोने और स्थिर करने की बातें बहुत-बहुत कही गयी है। इन सभी उपदेशों का भरमार रहते हुए भी भय, प्रलोभन और आस्थावादी कृत्यों से अधिक मानव परंपरा में इस समूची धरती में और कुछ होना देखने को नहीं मिला। अर्थात् उपदेश के रूप में जो बातें कहते आये हैं उसके अनुरूप कोई प्रमाण होता हुआ देखने को नहीं मिला। इसी समीक्षा के आधार पर ही "अनुभवात्मक अध्यात्मवाद" की परमावश्यकता को स्वीकारा गया।

दूसरे विधा से मानव सहज कल्पनाशीलता, कर्मस्वतंत्रता के आधार पर विचारों का उन्नयन हुआ, जिसको हम भौतिकवादी विचार कह रहे हैं। सम्पूर्ण कल्याण का आधार सुख-सुविधा और स्वर्ग का स्वरूप भौतिक वस्तु ही होना बताया गया। इसे अधिकांश लोकमानस में स्वीकारा भी गया। इस प्रकार अदृश्य के प्रति आस्थान्वित होना, दूसरे विधि से जो दृश्यमान वस्तुएँ है उसी को सम्पूर्ण सुख-सुविधा का आधार या विकास का आधार मान लेना देखा गया। भौतिकवाद भय और प्रलोभन के बीच झूलता हुआ संघर्षशील, संघर्षमय मानसिकता को तैयार करता हुआ देखा गया। भौतिकवाद का सार बात समीक्षा के रूप में यही मिलता है कि संघर्ष के लिए तैयार रहना परमाणु, अणु और अणु रचित पिण्डों का कार्यकलाप है। उसी क्रम में मानव भी एक रासायनिक-भौतिक वस्तुओं से रचित पिण्ड है। इनको सर्वाधिक संघर्ष करने का हक है। इसका प्रयोग करना ही प्रगति और विकास बताया गया है। यह भय, प्रलोभन निग्रह बिन्दुओं में फँसा हुआ आस्थाओं से टूटकर स्वर्ग में मिलने वाला सभी चीजें यहीं मिलने का संभावना बना। उसके लिए आवश्यकीय संघर्ष को जैसा-जैसा भौतिकवादी शिक्षा में शिक्षित हुए वैसे-वैसे अनेक तरीकों सहित संघर्ष करने के लिए प्रवृत्तियाँ बुलंद होते ही आया, अर्थात् बढ़ता ही आया। जबकि हर मानव भय और प्रलोभन रूपी भ्रमवश ही संघर्ष करता है। आदि काल से कबीला युग तक भी भय और प्रलोभन रहा।

प्राकृतिक प्रताड़ना से भयभीत रहा हुआ मानव जाति को राजा और गुरु ने मिलकर स्वर्ग और मोक्ष का, जान-माल की सुरक्षा का आश्वासन देते रहे। कबीला युग तक में संघर्षशीलता हाथ, पैर, नख, घूंसा, पत्थर, डंडा, तलवार तक पहुँच चुके थे। जैसे ही राजदरबार आया, समर शक्ति संचय विद्या में समुन्नत क्रिया के नाम से जो कुछ भी किया वह सब बन्दूक, बारूद, हथगोला, गुलेल प्रणाली, धनुष प्रणाली के साथ-साथ राडर प्रणाली जुड़कर वध, विध्वंसात्मक जैविक रासायनिक अणुबमों को दूर मार, मध्यम मार, निकट मार विधियों को विधिवत तकनीकी पूर्वक हासिल किया। इसमें भय स्वाभाविक रूप में बरकरार रहना पाया गया। प्रलोभन, छीना-झपटी, वंचना-प्रवंचना, द्रोह-विद्रोह पूर्वक और छल-कपट-दंभ-पाखंड पूर्वक परस्पर शोषण चरमोत्कर्ष रूप धारण किया। प्रलोभन के रूप में संग्रह-सुविधा उद्वेलित करता ही आया। इसका तात्पर्य यह हुआ आदिकाल में जो भय और प्रलोभन रहा है, उसे नर्क के प्रति भय और स्वर्ग के प्रति प्रलोभन के रूप में आदर्शवाद ने स्थापित किया, भौतिकवाद से सुविधा, संग्रह, भोग, अतिभोग में प्रलोभन, दूसरे का अपहरण, छीना-झपटी, लूट-खसोट करते समय सामने वाला कुछ कर जायेगा, इस भय के मारे दमनशील उपायों को अपनाने के आधार पर संघर्ष मानसिकताएँ सज गया। इसी में सर्वाधिक व्यक्तियों का मन प्रवृत्त रहना पाया जाता है। इसका पहला साक्ष्य संग्रह, द्वितीय साक्ष्य दमनकारी उपायों के प्रति पारंगत रहना ही है। ऐसे दमनकारी उपायों से लैस रहने के लिए व्यक्ति, परिवार और हर समुदाय अधिकाधिक सुसज्जित होने के लिए यत्न, प्रयत्न, कर्माभ्यास, युद्धाभ्यास करता हुआ समूची धरती में दिखाई

पड़ता है। इन्हीं गवाहियों के साथ आदिकालीन अर्थात् झाड़ के ऊपर, गुफा, कन्दराओं में झेलते हुए समय में जो मानव मानसिकता में भय सशंकता सर्वाधिक प्रकोप किया था वह यथावत् रहा है। उसके साथ प्रलोभन मानसिकताएँ धीरे-धीरे बढ़ते हुए समूचे धरती की सम्पदा का हर व्यक्ति अपने तिजोरी में बंद कर लेने की कल्पना करता हुआ स्थिति को सर्वेक्षित किया जा सकता है। इसका गवाही यही है संग्रह का तृप्ति बिन्दु नहीं है।

ऊपर कहे सम्पूर्ण विश्लेषण और समीक्षा के मूल में मानव मानसिकता ही अनुप्राणन वस्तु है। स्वर्ग-नर्क भय, प्रलोभन, सुविधा संग्रह भोग-अतिभोग इन खाकों में, इन कक्षों में, इन गतियों में मानव जाति का स्वरूप एक दूसरे के बीच विश्वास का सूत्र व्याख्या करने में असमर्थ रहा है। इसलिये सर्व मानव के परस्परता में भी सहअस्तित्व नित्य प्रभावी होने सहज सत्य को, यथार्थता को, वास्तविकता को शिक्षागम्य, लोकगम्य, लोकव्यापीकरण कार्यक्रमों सहित "अनुभवात्मक अध्यात्मवाद" मानवीयतापूर्ण मानव मानस के लिए अति आवश्यक समझा गया है। इसीलिये, अस्तित्व सहज सहअस्तित्व रूपी ध्रुव, मानव स्वीकृत प्रामाणिकता रूपी ध्रुव के मध्य में अनुभव सहज अनिवार्यता, आवश्यकता, प्रयोजन और उसकी निरंतरता को ज्ञान सम्मत विवेक सम्मत और विज्ञान सम्मत विधि से मैनें प्रस्तुत किया है।

अध्याय - 2

अनुभवात्मक अध्यात्मवाद : एक परिचय

सम्पूर्ण आदर्शवाद यथा अध्यात्मवाद, अधिदैवीवाद, अधिभौतिकवाद रहस्यमयता और कल्पनाशीलता के योगफल में वाङ्गमय रचित होता ही रहा। इन वाङ्गमयों का मूल आशय श्रेय के लिए आस्थावादी प्रवृत्ति में मानव मानस को परिवर्तित करना ही रहा। क्योंकि भय किसी को स्वीकृत रहता नहीं, प्रलोभन कल्पना के अनुरूप वस्तुओं को उपलब्ध करना संभव नहीं रहा। इसी आधार पर शरीर यात्रा के अनन्तर मोक्ष और स्वर्ग मिलने के आश्वासनों को आदर्शवादी विचार द्वारा विविध प्रकार से प्रस्तुत किया गया। यह स्वयं भी विविध समुदाय और उसकी अस्मिता का आधार बना। यह भी समुदायात्मक अस्मिता होने के आधार पर युद्ध से मुक्त नहीं हो पाया।

आस्थावादी मानसिकता से प्रेरित उक्त वाङ्गमय रहस्य से ही सम्पूर्ण आरंभ होना, रहस्य में सम्पूर्ण समा जाने की कल्पनामय विधि को प्रस्तुत किये। ये सब रहस्यमूलक, रहस्यमयी ईश्वर, अध्यात्म, देवताओं के आधार पर सृष्टि, स्थिति लय और स्वर्ग और मोक्षदाता के रूप में प्रतिपादित तत्कालीन रूप में एक आवश्यकता रही। उसी के अनुसार सम्माननीय लोग प्रस्तुत करते रहे अथवा प्रस्तुति के आधार पर सम्मानित हुए। इस दशक तक में और परिस्थितियाँ उत्पन्न हुई। भौतिकवादी विधि से मानव धरती को ही घायल करने के परिणाम स्वरूप धरती अपने शक्ल को जैसा बदलता गया भोग-मानसिकता के आधार पर जनसंख्या समस्या, पर्यावरण समस्या, आर्थिक और राजनैतिक समस्या इसी के साथ व्यापार और नौकरी की समस्या घर-घर, घाट-घाट, व्यक्ति-व्यक्ति में पीड़ा के रूप में देखने को मिली। ये दोनों (आदर्शवाद और भौतिकवाद) विचार मूलत: रहस्यमय ही है। इसके आधार पर ही यह सब समस्यात्मक कार्यक्रम को सुख या समाधान का स्त्रोत घोषित करता हुआ भ्रमित मानव परंपरा में से के लिए "अनुभवात्मक अध्यात्मवाद" को प्रस्तुत करना आवश्यक समझा गया।

अनुभव का आधार मूलत: सहअस्तित्व होना देखा गया है। सहअस्तित्व नित्य वर्तमान है। अस्तित्व न घटता है न बढ़ता है। अस्तित्व स्वयं ही सहअस्तित्व है। अस्तित्व में, से, के लिए सहअस्तित्व विधि से परमाणु में विकास, पूरकता विधि से होना देखा गया। इस विकासक्रम में जितने भी परमाणुएँ है वह सब भौतिक और रासायनिक कार्यकलापों में भागीदारी करता हुआ देखा गया है। परमाणु विकास पूर्वक गठनपूर्ण होना चैतन्य पद में संक्रमित होना पाया जाता है। यही चैतन्य इकाई "जीवन" आशा, विचार,

इच्छापूर्वक कार्यरत है। हर मानव, जीवन एवम् शरीर का संयुक्त रूप है। देखने का तात्पर्य समझना, समझने का तात्पर्य अनुभवमूलक विधि से संप्रेषित करना है। भौतिक-रासायनिक क्रियाकलापों में अनेक परमाणुओं से अणु रचना, अनेक अणुओं से छोटे-बड़े पिण्ड रचना का होना दिखाई पड़ता है। ऐसे पिण्डों के स्वरूप ग्रह, गोल, नक्षत्रादि वस्तुओं के रूप में प्रकाशमान है और इस धरती पर रासायनिक क्रियाकलापों अथवा रासायनिक उर्मि के आधार पर अनेक प्रजाति की वनस्पतियाँ, अनेकानेक नस्ल की जीव संसार दिखाई पड़ते है। इन सबके मूल में परमाणु ही नित्य क्रियाशील वस्तु के रूप में देखने को मिलता है। परमाणु में ही विकास होने का तथ्य हर परमाणु में विभिन्न संख्यात्मक परमाणु अंशों का होना ही आधार के रूप में देखा गया है। ऐसे परमाणु विकासक्रम से गुजरते हुए अस्तित्व में रासायनिक-भौतिक कार्यकलापों को निश्चित व्यवस्था के रूप में सम्पन्न करते हुए प्रकाशमान रहता हुआ मानव देख पाता है। प्रत्येक मानव इसे आंशिक रूप में देखा ही रहता है साथ ही सम्पूर्ण रूप में देखने की आवश्यकता बनी रहती है सम्भावना समीचीन रहती है। समझने के अर्थ में अर्थात् अनुभवमूलक विधि से संप्रेषित, प्रकाशित, अभिव्यक्त होने के विधि से सम्पूर्ण वस्तु को मानव समझना सहज है। इस क्रम में मानव का मूल अथवा सार्वभौम उद्देश्य समझदारी के साथ जीने की स्वीकृति आवश्यक है। इसी विधि से हर मानव में निष्ठा और जिम्मेदारी आवश्यक है। जिम्मेदारी का तात्पर्य दायित्व और कर्तव्यों को स्वयं-स्फूर्त विधि से निर्वाह करने से है और निष्ठा का तात्पर्य है उसकी निरंतरता को बनाये रखने वाली समझदारी से जुड़ी हुई सूत्र से है। ऐसे सूत्र अनुभव से ही जुड़ा हुआ देखा गया है। इस प्रकार अनुभवमूलक अभिव्यक्ति, संप्रेषणा, प्रकाशन विधि से सर्वमानव में निहित संपूर्णता को समझने, कल्पना, विचार और इच्छाओं का गम्य स्थली दिखाई पड़ती है।

अस्तित्व ही रासायनिक-भौतिक ग्रह, गोल, ब्रम्हाण्डों के रूप में मानव सहज कल्पना, विचार, इच्छा सम्पन्न, संवेदनाओं सहित होना पाया जाता है। मानव (जीवन व शरीर का संयुक्त रूप) अभी तक जितने भी आयाम को प्रमाणित करना संभव हुआ है वह केवल रूप और गुण को ही आंकलन करके। उसके आधार पर वांछित यांत्रिकी परिकल्पना जो सकारात्मक है, दूरश्रवण, दूरदर्शन, दूरगमन विधि से और आहार-आवास-अलंकार-द्रव्यों के रूप में प्राप्तियाँ दिखाई पड़ती है। यह मानव का परिभाषा में से मनाकार को साकार करने वाले परिकल्पनाओं अथवा चित्रण के अनुरूप अथवा इच्छाओं के अनुरूप ये सब प्राप्त हैं। दूसरा पक्ष जो मानव के लिए नकारात्मक है, सामरिक यंत्र-तंत्रों, उपकरणों को जितने भी जखीरे के रूप में इकट्ठा किये, नैसर्गिक, भौगोलिक, ब्रह्माण्डीय संगीत में सदा-सदा हस्तेक्षप करने वाला है। इसी में हर समुदाय की संघर्षशील प्रवृत्ति का होना देखा गया है। इससे यह भी पता लग गया कि संघर्षशीलतावश ही मानव धरती का शक्ल बिगाड़ा है। फलस्वरूप धरती और धरती का वातावरण बदलना भी है जिसके

आधार पर इस धरती पर रहने वाले मानव परंपरा का अस्तित्व रहेगी या नहीं रहेगी इस प्रश्न चिन्ह तक पहुँच चुके हैं। इस प्रश्न चिन्ह का सामान्य असर पूरे भूगोल पर ही दिखाई पड़ रही है। इसका विवरण आवश्यकीय स्थानों पर विस्तृत रूप में प्रस्तुत करेंगे।

चाहे आदर्शवादी विधि से हो अथवा भौतिकवादी विधि से हो मानव ने अभी तक जो यात्रा की है वह स्वस्थ जगह नहीं है। कल्पना और भ्रम के आधार पर ही आधारित रहना मुख्य रूप से देखा गया है। अस्तित्व में परमाणु में विकास नित्य प्रभावी है। अनुस्यूत क्रिया है। इसी क्रम में परमाणु में गठनपूर्णता एक अद्भुत संक्रमणिक घटना के रूप में होना अथवा मौलिक परिवर्तन के रूप में होना जीवन नित्य वर्तमान रहना देखा गया है। ऐसे गठनपूर्ण परमाणु जीवन के रूप में चैतन्य इकाई सहज रूप में नित्य विद्यमान रहना देखा गया है। साथ में सहअस्तित्व नित्य प्रकटन है, वर्तमान है। ऐसे जीवन ही अपने में अक्षय शक्ति, अक्षय बल सम्पन्नता सहित ही कार्यशील रहना पाया गया इसका प्रमाण अस्तित्व और अस्तित्व में अनुभव सहज शाश्वत् ध्रुवों के बीच विधिवत अध्ययन करने से हर व्यक्ति को यह समझ में आयेगा कि 'जीवन' एक गठनपूर्ण परमाणु का ही स्वरूप है, चैतन्य इकाई है यह परमाणु-अणुबन्धन, भार-बन्धन मुक्त आशा बन्धन से अपने से कार्यकारिता को प्रकाशित करता है। भ्रम से आशा, विचार और इच्छा बन्धन शरीर को जीवन समझने के आधार पर कार्यकारिता प्रकाशित होता है। इसके उपरान्त जागृतिशीलता की कार्यकारिता और जागृति और जागृतिपूर्ण कार्यकारिता से अस्तित्व में अध्ययनगम्य और अनुभवगम्य है। यही अनुभवात्मक अध्यात्मवाद का तात्पर्य है।

व्यापक वस्तु रूपी साम्य ऊर्जा में जड़-चैतन्य प्रकृति संपृक्त, क्रियाशील एवम् वर्तमान है। सहअस्तित्व में अनुभव दृष्टा, कर्ता, भोक्ता मानव ही है। मानव 'शरीर' और 'जीवन' का संयुक्त रूप है। इसे भली प्रकार से समझा गया है। शरीर का स्वरूप भौतिक-रासायनिक रचना के रूप में प्रमाणित है जो प्राण कोषा और रचना सूत्र के आधार पर विविध वंशों में शरीर रचना अपने-अपने मौलिक रूप में होना समझा गया है। इसका प्रमाण विविध रूप में रचना में होना, विविध शक्ल के जीव जानवर, मानव शरीर रचनाओं का वंशानुषंगीय विधि से सम्पन्न होता हुआ वर्तमान है। संपूर्ण प्रमाण वर्तमान में ही प्रमाणित होता है। इस प्रकार भौतिक-रासायनिक रचनाएं विविध स्वरूप में होना स्पष्ट हो जाता है। रचना की विविधता ही नस्ल का आधार होना स्वाभाविक है। जबकि जीवन हर नस्ल, हर रंग, हर देश, हर काल में समान रूप में होना देखा गया है। इसका प्रमाण कल्पनाशीलता, कर्मस्वतंत्रता हर देश, हर काल में स्थित हर मानव में वर्तमान होना सर्वेक्षित है। दूसरा हर मानव कर्म-स्वतंत्रता के साथ कार्यरत रहना देखने को मिलता है और फल भोगते समय में परतंत्र होना भी देखा गया है अथवा विवश होना भी देखा गया है। परतंत्रता और विवशता

का तात्पर्य वांछित, अपेक्षित फलन न होते हुए उसे भोगने में है। जैसे :- गन्दी हवा किसी को वांछित नहीं है। मानव स्वयं ही ऐसे कर्मों को कर गया है (केवल इसी 200 वर्ष में उसमें भी 100 वर्ष सर्वाधिक रूप में) कि धरती के सभी ओर बहने वाले विरल-तत्व रूपी प्राण वायु को बिगाड़ रखा है-इसको करते समय हर विज्ञानी स्वतंत्र रहा है। हर उद्योगपति पूंजी की अस्मितावश स्वतंत्र रहा है। इसे भोगने के लिए विवश है। इसी प्रकार विकिरणीय क्रियाकलापों के विसर्जित परिणामों से हवा, धरती और जल प्रदूषण की तकलीफ, अर्थात् जलवायु, धरती प्रदूषण की अस्वीकृतियाँ मानव में धीरे-धीरे बढ़ रही है। ऐसे संकट के पराकाष्ठा में मानव से ही इसका समाधान निकलना स्वाभाविक है। शरीर का दृष्टा भी जीवन ही है इसलिये जागृत मानव ही हर समस्या का समाधान और उसका निरन्तर स्रोत होना पाया गया है, देखा गया है।

मानव भ्रमवश शरीर को ही जीवन मानकर अपने सभी क्रियाकलापों को करता है-तभी वह सब किया गया का परिणाम समस्याओं के रूप में होती है। समस्याएँ मानव को स्वीकार नहीं है। विज्ञानियों के अनुसार शरीर ही जीवन होना बताया गया है। भ्रम का यही प्रधान बिन्दु है जबकि संज्ञानशीलता और संवेदनशीलता का संतुलन-संगीत परमावश्यक है। हर मानव में संवेदनशीलता, संज्ञानशीलता का होना पाया जाता है। जैसे ऊपर कहे गये उदाहरण के आधार पर स्पष्ट हो जाता है कि मानव अपने कर्म स्वतंत्रतावश विज्ञान, तकनीकी, प्रौद्योगिकी विधि से सामरिक दृष्टियों के और मानव में निहित सुविधा-संग्रह रूपी प्रलोभन की तुष्टि के लिये सम्पूर्ण पर्यावरण को दूषित कर दिया और धरती बीमार हो गई। यह विज्ञान सहज कर्म-स्वतंत्रता का फल है। पर्यावरण संतुलन सहज, संगीत सहज, अवधारणा और अनुभव होने के उपरान्त मानव अपने कर्म स्वतंत्रता को समस्याकारी कार्यों में नियोजित करना समाप्त हो जाता है। संज्ञानशीलता ही अनुभव सूत्र है-संवेदनशीलता ही कार्यसूत्र है। अनुभव ही ज्ञान-स्वरूप है। यह स्वयं नित्य समाधान और प्रामाणिकता है।

अनुभवमूलक सभी कार्यकलाप सत्य, समाधान और न्याय के रूप में प्रमाणित होता है। न्याय को हम नैसर्गिक और मानव संबंधों के साथ अनुभव किये हैं। इसे हर मानव अनुभव करने योग्य इकाई है, इसकी आवश्यकता सदा-सदा ही बना है। मानव परंपरा में अनुभवमूलक अभिव्यक्ति ही ज्ञानावस्था का सार्थक, आवश्यक, वांछित कार्य होना देखा गया है। इसी आधार पर अनुभवमूलक विचार के रूप में इस ग्रन्थ को प्रस्तुत करने की आवश्यकता निर्मित हुई।

ज्ञानावस्था सहज मानव में, से, के लिये अनुभव प्रामाणिकता के रूप में सर्वोपरि प्रमाण है। नियम, न्याय, धर्म, सत्य यह अनुभवमूलक विधि से ही प्रमाणित होना देखा गया। **अनुभव का मूल रूप (स्थिर बिन्दु) जानने-मानने का तृप्ति बिन्दु ही है।** जानने-मानने का जो मौलिक स्थिति कारण-गुण-गणित है वह केवल

मानव में ही होना पाया जाता है। यह कल्पनाशीलता और जागृति की सम्भावना के योगफल में गतित होना पाया जाता है। इसी प्रकार नियम, न्याय, धर्म, सत्य भी अध्ययन विधि से जानना, मानना बन जाता है। फलस्वरूप प्रामाणिक होने के लिये पहचानना, निर्वाह करना सम्भावना निर्मित होती है।

प्रामाणिकता का स्वरूप जानने-मानने की तृप्ति बिन्दु को अनुभव करना ही है। जानने का मूल तत्व सहअस्तित्व रूपी अस्तित्व ही है। अस्तित्व में ही जीवन और जागृति, अस्तित्व में ही विकास और रचना-विरचना होना देखा गया है। यही जानने का तात्पर्य है। इसी के आधार पर मानव का सम्पूर्ण कार्य-व्यवहार निर्धारित हो जाना ही, निर्धारित विधि से मानव परंपरा प्रमाणित होना ही अनुभव का तात्पर्य है। यह न्याय, धर्म, सत्य सहज अनुभव विधि से ही सार्थक होना देखा गया है।

ऊपर जानने, मानने, पहचानने, निर्वाह करने का शब्द प्रयोग किये हैं। इनमें से जानने की वस्तुएँ में से प्रधान वस्तु को सहअस्तित्व के रूप में बता चुके हैं। अस्तित्व ही सहअस्तित्व के रूप में नित्य वर्तमान है। सहअस्तित्व का स्वरूप अपने में सत्ता में संपृक्त प्रकृति है। क्यों और कैसे का उत्तर पा लेना ही जीवन जागृति क्रम सहज प्रवर्तन और जागृतिपूर्वक प्राप्ति है। हर प्रवर्तन में मानव प्राप्ति चाहता ही है। प्राप्ति ही मान्यता का आधार है। अस्तित्व में ही जीवन और जीवन जागृति का होना जानना है। अस्तित्व में ही विकास, रचना, विरचनाओं को जानना होता है। क्योंकि अस्तित्व नित्य वर्तमान है ही; अस्तित्व में 'जो कुछ' भी है यह 'सब कुछ' को मानव जानना चाहता है। इसे जानना सम्भव है इसको हम देख चुके हैं। मानव और नैसर्गिक परस्परता में संबंध रहता ही है क्योंकि सहअस्तित्व नित्य प्रभावी रहता ही है। इसे जानना जागृत मानव के लिये सहज है। इसी के साथ अर्थात् संबंध के साथ मूल्यों को जानना भी जागृत मानव के लिए परम सहज है। मानव ही अस्तित्व में अनुभव सहज प्रमाणों को प्रस्तुत करता है। अस्तित्व में मानव जागृतिपूर्वक ही व्यवस्था, उसकी सार्वभौमता, समाज और उसकी अखण्डता को जानता है।

जानने का फलन मानने के रूप में आता ही है। मानने का स्वरूप है :- "यह सत्य है इसे स्वीकारना है।" और सत्य सहज प्रयोजन स्वयं से या सबसे जुड़ी हुई स्थिति को और गति को स्वीकारना ही मानना है। इससे स्पष्ट होता है **हर स्थिति में वस्तु सहज वास्तविकताओं को जानना सहज है। इसी क्रम में उसके गति और प्रयोजन के साथ 'सहअस्तित्व' में, से, के लिए आवश्यकताओं को स्वीकारना ही मानना है** क्योंकि प्रयोजन हर व्यक्ति में एक आवश्यकता है। इसलिये जानने-मानने की क्रिया मानव में परम मौलिक है। अन्य प्रकृति में यांत्रिक रूप में ही पहचानने, निर्वाह करने की क्रियाकलापों को देखा जाता है।

मानव ही जानने-मानने के आधार पर पहचानने-निर्वाह करने में प्रयोजनशील होता **है। मानने का आधार प्रयोजन होना है। जानने का आधार क्यों और कैसे के उत्तर के रूप में है। साथ ही 'वस्तु' कैसा है** ? **यह**

भी जानने में आता है। वस्तु कैसा है ? यह जानने का स्वरूप है। इसी से क्यों और कैसे का उत्तर स्वयं-स्फूर्त विधि से निर्गमित होता है। मानने का तात्पर्य प्रयोजन पहचानने के अर्थ में सार्थक होता है। जैसे- अस्तित्व सहज नित्य स्थिति को जानना, सहअस्तित्व प्रयोजन सूत्र को पहचानना स्वाभाविक होना पाया गया।

अस्तित्व सहज सहअस्तित्व को पहचानने की क्रिया-स्वरूप ही निर्वाह करने के अर्थ को प्रमाणित कर देता है। इस प्रकार जानना, मानने के लिये उत्सव और उत्साह है; जानना-मानना, पहचानने के लिये उत्सव और उत्साह है; जानना-मानना-पहचानना, निर्वाह करने के लिये उत्सव और उत्साह है। यह सर्वमानव में हृदयंगम और स्वीकार्य योग्य सूत्र है।

पहले इस बात को भी स्मरण दिलाया गया है कि मानवेत्तर प्रकृति में भी पहचानने, निर्वाह करने की प्रक्रिया विधि नित्य वर्तमान है। इसी विधि सहज वैभव का प्रमाण पदार्थावस्था, प्राणावस्था, जीवावस्थाओं में देखने को मिलता है। देखने का तात्पर्य समझने से है। मानव ही अस्तित्व में दृष्टापद प्रतिष्ठा को प्रमाणित करता है, प्रमाणित करने योग्य है, प्रमाणित करने के लिये बाध्य है ही। समझना ही बाध्यता है।

जो कुछ भी समस्याएँ है उसे समाधान में परिणित कराने के लिये मानव सहज आवश्यकता प्रवर्तन हमें इस तथ्य पर ध्यानाकर्षित करता है कि हर मानव समाधान की ओर ही अपने को उन्मुख बनाये रखना चाहता है जबकि समाधान सर्वसुलभ हुआ नहीं रहता है। जैसा भ्रमित मानव परंपराओं में शरीर यात्रा को आरंभ किया हुआ हर मानव, न्याय की अपेक्षा करता ही है, सही कार्य-व्यवहार करना चाहता ही है, अपने से ही स्वयं-स्फूर्त विधि से सत्य वक्ता रहता ही है यह हर मानव संतान में सर्वेक्षित रहता ही है। इसे हर मानव सर्वेक्षित करता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि मानव परंपरा जागृत रहने की स्थिति में हर मानव संतान में सत्यबोध सहज अध्ययन वस्तु व प्रणाली, मानवीयतापूर्ण आचरणकारी प्रमाण सम्पन्न शिक्षण और संस्कार सहित व्यवहार में सामाजिक, व्यवसाय में स्वावलंबी होने की स्थिति समीचीन है। ऊपर बताये स्वरूप में परिणित करना जागृत मानव परंपरा का सहज क्रियाकलाप होना देखा गया है। यह परंपरा स्वयं जागृत न रहने की स्थिति में भी सत्यवक्ता होना, सही कार्य-व्यवहार करना, न्याय सहज आवश्यकता को स्वीकार करना हर मानव में देखने को मिलता है। यही इस सर्वेक्षण का अति उत्तम निष्कर्ष है। इस निष्कर्ष के आधार पर मानव परंपरा जागृतिपूर्ण परंपरा के रूप में प्रमाणित होने की आवश्यकता है ही। इसे प्रमाणित करने की आवश्यकता-आकांक्षा-आशा अथवा अभीप्सा के रूप में हर मानव में देखने को मिलता है। अभीप्सा का तात्पर्य अभ्युदय के लिए इच्छा से, अभ्युदय का तात्पर्य सर्वतोमुखी समाधान से है। आशा का तात्पर्य जीने की आशा सहित सुखी होने की आशा से है। आकांक्षा का तात्पर्य अपने स्वयं-

स्फूर्त आदतों के आधार पर सुखी होने की आशा से है और प्रयास से है। इच्छा का तात्पर्य समझदारी सहित निष्ठा को प्रमाणित करने की चित्रणो से है। इस प्रकार हर मानव में शुभेच्छा सतत् उद्गमशील है ही। शुभेच्छाओं को शुभ के रूप में प्रमाणित करने की स्थली तक की, जागृति की, बनाम अनुभव की अपेक्षा और अनुभवशीलता बना ही रहता है। ऐसे अनुभव परंपरा में स्थापित होने की अपेक्षा और अनुभवशीलता बना ही रहता है। ऐसे अनुभव परंपरा में स्थापित होने के उपरान्त सदा-सदा के लिये मानव परंपरा अनुभवमूलक प्रणाली से सर्वशुभ को प्रमाणित करता ही है। अनुभवमूलक प्रणाली-पद्धति स्वस्थ-सुन्दर समाधान पूर्ण नीतिपूर्वक यह देखा गया है कि –

(1) समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व, यह सर्वशुभ है। यह सर्वमानव में, से, के लिये नित्य अपेक्षा है। इसके लिये मानव प्रयोग, अनुसंधान, शोध में कार्यरत रहा आया।

(2) जीवन सहज शुभ सुख, शांति, संतोष, आनन्द है। ऐसे मानव सहज शुभ गति मानवीयता पूर्ण आचरण है। प्रत्येक व्यक्ति में शुभ, सुन्दर, समाधान रूप ही 'स्वायत्त मानव' है। समग्र परिवार शुभ ही चाहते हैं जो पुन: समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व है। यही अखण्ड समाज का सूत्र और व्याख्या है। यह अनुभवमूलक विधि से ही प्रमाणित होता है। अस्तित्व सहज सहअस्तित्व 'त्व' सहित व्यवस्था समग्र व्यवस्था में भागीदारी क्रम में परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था ही है। सहअस्तित्व, वर्तमान में विश्वास, समाधान, समृद्धि यह अनुभव का ही स्वरूप है। अनुभव करने योग्य वस्तु जीवन है।

मानव ही द्दष्टा पद में होने के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है मानव ही हर आयाम, कोण, दिशा, परिप्रेक्ष्य और सर्वदेश-काल में अस्तित्व सहज सहअस्तित्व में, सहअस्तित्व सहज संबंधों में, संबंध सहज मूल्यों में, मूल्य सहज अनुभवों में बनाम, मूल्यांकन में ओतप्रोत रहने का नित्य अवसर सर्व समीचीन है। यहाँ इस तथ्य को इंगित कराने का उद्देश्य यही है सर्वमानव अनुभवमूलक विधि से ही नियम-न्याय-समाधान सत्य में, से, के लिये प्रमाणित होना देखा गया। यह सर्वमानव में स्वीकृत है। इसी आधार पर अनुभवात्मक अध्यात्मवाद को प्रकाशित, संप्रेषित, अभिव्यक्त करने में पारंगत होने के आधार पर संप्रेषित की गई। इससे मानव में, से, के लिये अनुभवमूलक विधि से जीने की विधि को विज्ञान और विवेक सम्मत विधि से अध्ययन पूर्वक सम्पन्न करना सहज रहेगा। यही इस प्रस्तुति की शुभकामना है।

अनुभव ही हर मानव का ठोस प्रमाण है। व्यवहार में, प्रयोग में भी, मानव का अनुभव ही संप्रेषणा का आधार है न कि यंत्र या वाङ्गमय। अनुभवमूलक विधि में महिमा यही है हर मुद्दा वस्तु के रूप में सत्यापित होने और प्रबोधन, अध्यापनपूर्वक बोध सुलभ करने और व्यवहार में, प्रयोग में पारंगत होने की स्थिति स्वयं-स्फूर्त होती है। इसी क्रम में मानव, मानवीयता पूर्वक जीने की कला, विचार शैली और अनुभव बल को

संस्कारों के रूप में स्थापित करते ही रहना और सम्पूर्ण संस्कार और समझ अनुभवमूलक क्रम में जानने-मानने की तृप्ति बिन्दु को प्रमाणित करने में अभिव्यक्त होना सहज है। इसी विधि से प्रमाण परम अनुभव का धारक-वाहक होने हर मानव आतुर-कातुर और व्याकुल है। वह सार्थक होना सहज है।

मानव परंपरा तब तक भ्रमित रहना भावी है जब तक समुदाय और समुदायगत आवश्यकता की हठधर्मिता, सुविधा संग्रह की हठधर्मिता, भोग-अतिभोगवादी हठधर्मिता, आदमी को मूलत: दुखी मानने वाली हठधर्मिता, स्वार्थी, अज्ञानी और पापी मानने वाली हठधर्मिता, कोई एक समुदाय अपने को धर्मी अन्य को विधर्मी मानने की हठधर्मिता, द्रोह-विद्रोह-शोषण और युद्ध को एक आवश्यकता मानने वाली हठधर्मिता, व्यक्तिवादी (अहमतावादी) मानसिकता के लिये सभी हठधर्मिता रहेगी। इसका निराकरण जागृति ही है। जागृति पूर्ण परंपरा मे ही अर्थात् जागृत शिक्षा-संस्कार, जागृत न्याय व्यवस्था और जागृत उत्पादन-कार्य व्यवस्था, जागृत लाभ-हानि मुक्त विनिमय व्यवस्था और जागृत स्वास्थ्य संयम पीढ़ी से पीढ़ी को सुलभ होने से है। ऐसी जागृत पूर्ण परंपरा में पीढ़ी से पीढ़ी जागृत होते ही रहना एक अक्षुण्ण परंपरा है। ऐसी परंपरा में अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था सर्वसुलभ होने की कार्यप्रणाली, पद्धति, नीति क्रियाशील रहेगी फलत: विविध प्रकार से समुदायों को अपनाया हुआ भ्रम अपने आप विलय होना स्वाभाविक है। यह अनुभवमूलक जीने के क्रम में पाया जाने वाला वैभव है।

उक्त उदाहरण के क्रम में ही जागृत परंपरा में प्रवाहित मानव परंपरा के महिमावश सम्पूर्ण हठधर्मिताएँ विलय हो जाते हैं। जैसे-सही गणितीय ज्ञान के उपरान्त गणित में होने वाली कोई गलतियां शेष नहीं रहती हैं, इसी प्रकार जागृति सहज रूप में जीने के क्रम में सम्पूर्ण भ्रम विलय होता है। जैसा-संग्रह सुविधा रूपी हठधर्मिता और विवशताएँ समृद्धि पूर्ण होने के साथ-साथ विलय होना देखा गया है। भोग-अतिभोगवादी प्रवृत्ति और विषमताएँ तन, मन, धन रूपी अर्थ का उपयोग, सदुपयोग, प्रयोजन और प्रयोजनशील बनाने के प्रमाणों के साथ ही भ्रम विलय हो जाते हैं। धर्म गद्दी, राज गद्दी, व्यापार गद्दी और शिक्षा गद्दी जो अपने हठधर्मितावश मानव को पापी-अज्ञानी-मूर्ख, पिछड़ा, दलित दुखी रहना मानते हुए अपने अहमता, अहंकार को बढ़ाये रहते हैं। जागृत परंपरा सहज विधि से स्वायत्तता का प्रमाण, परिवार मानव सहज प्रमाण और परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था प्रमाण समाधान समृद्धि सहित प्रमाण के साथ ही ये सब हठधर्मिताएँ विलय हो जाते हैं। साथ ही इस जागृति का प्रमाण में अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था प्रमाणित होना स्वाभाविक होने के कारण सभी समुदायवादी एवं व्यक्तिवादी अस्मितायें अपने आप विलय को प्राप्त करेगें। भ्रमवश ही मानव परंपरा में विभिन्न समुदाय और उसकी अस्मितावश द्रोह-विद्रोह-शोषण और युद्ध को एक आवश्यकता मानते हुए छल, कपट, दंभ और पाखण्ड का वशीभूत हो गया है, ये सब तभी विलय हो जाते

हैं जिस मूहुर्त में इस धरती पर परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था जागृति के साथ स्थापित हो जाता है। इसी के साथ अखण्ड समाज का सहज रूप सर्वविदित और प्रमाणित हो जाता है।

हठधर्मिता जो व्यक्तिवादी (अहमतावादी) मानसिकता के लिये जिम्मेदार है उसके मूल में समाज विरोधी सूत्र सदा ही पनपते आई है। क्योंकि समाज, व्यवस्था और समग्र व्यवस्था जो अस्तित्व सहज है, इसे स्पष्टतया समझने के स्थिति में हम यह पाते हैं कि यह अस्तित्व सहज सहअस्तित्व सूत्र ही है। सहअस्तित्व सूत्र के आधार पर ही अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था हमें विदित हुआ है। इस तथ्य के आधार पर मानव जब तक जागृतिपूर्ण होता है तब तक भले ही ऊपर कहे हुए वितण्डावाद रहे आये। जैसे ही अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था परंपरा में प्रमाणित होते हैं, व्यक्तिवादी अहमताएँ अपने आप ही विलय को प्राप्त करते हैं।

व्यक्तिवादी अहमता को शक्ति केन्द्रित शासन, उसमें अधिकारों को वर्तने के लिये प्रावधानित अधिकारों को प्रयोग करता हुआ, जितने भी विसंगतियाँ अधिकारी मानस और जनमानस के बीच दूरी तैयार होती जाती है, यह सब समस्या का ही ताण्डव है। समस्या में ग्रसित होने के फलस्वरूप या विवश होने के फलस्वरूप ही व्यक्तिवादी होना पाया जाता है। जैसे - अधिकारवाद, भोगवाद, भक्तिवाद और विरक्तिवादी। ये सब व्यक्तिवादी अस्मिता के रूप में ही पूर्ववर्ती वाङ्गमयों में स्वीकारा गया है। इन चारों स्थितियों में पहला मुद्दा है अधिकारवाद। इसे विसंगतियों के अर्थ में स्पष्ट किया जा चुका है। इसी के आनुषंगिक स्पष्टीकरण के क्रम में ही शक्ति केन्द्रित शासन अनेक समुदायों के द्वारा किसी भूखण्ड के क्षेत्र में पनपता हुआ देखने को मिलता है। यह सर्वविदित तथ्य है। इसी को राष्ट्र और राज्य कहा जाता है। उस भू-क्षेत्र में रहने वाले उन संविधान को सम्मान करने वाले व्यक्ति समुदाय होना स्वाभाविक है। उनका भाषा-संस्कृति में समानता का भी अपेक्षा बनी रहती है। इसी क्रम में राष्ट्रभाषा का भी संविधान में एक प्रावधान बनी रहती है। प्रधान रूप में सभी संविधान अपने अपने धर्म, कर्म, उपासना, अभ्यास, संप्रदाय के स्वतंत्रता की घोषणा और गलती, अपराध और युद्ध को उसी-उसी प्रकार से रोकना प्रधान उद्देश्य रहता है। सही-गलती को बताने वाला राजा और गुरू के संयोग से होता रहा। अभी भी कहीं-कहीं ऐसा होता भी होगा। अधिकांश भू-भागों में अर्थात् राज्य-राष्ट्रों में जनप्रतिनिधियों के मानसिकता के अनुसार सही, गलती, अपराध और न्याय जो कुछ भी निर्णय के रूप में स्वीकारे रहते हैं - न कि 'वस्तु' वास्तविकता के रूप में।

सम्पूर्ण देश और राष्ट्रवासियों का कार्यकलाप इस प्रकार दिखाई पड़ती है - (1) शासन कार्यो में भागीदारी (अधिकारों की भागीदारी) करते हुए कुछ लोग होते है। (2) कुछ लोग शासन कार्यो में भागीदारी को निर्वाह नहीं करते - इन्हीं को आम जनता भी कहा जाता है।

आम जनता अपने आजीवीका के लिये स्वयं ही चिंतित रहते हुए प्रयत्न किये रहते है, कुछ लोग उत्साह से भी प्रयत्न करते हैं। इन्हीं आम लोगों के सुविधा को भी शासन कार्यों में एक मानवीयता के रूप में स्वीकारा हुआ रहता है। ऐसे सभी कार्य धन पर आधारित रहना देखा गया है। आम जनता के सुविधावादी क्रिया-कलापों को सड़क, चिकित्सालय, पानी, डाक, दूरभाष, शिक्षा-साक्षरता, आवास, दूरसंचार कार्यों के रूप में देखने को मिलता है। प्रधानत: इन्हीं को विकास कार्य कहते हैं।

शासन मानसिकता मानव में तब से पनपा जब मारपीट कार्यों में परकाष्ठा में पहुँच गये। अर्थात् हर दिन मारपीट, सशंकता, भय से पीड़ित जीने की स्थिति आरंभ हुई। इससे राहत दिलाने के लिये राजा और गुरू आश्वासन दिये, इसके लिये लोक सम्मति मिली। इसका गवाही है - राजा और गुरू स्थापित हुए। अभी तक राजगद्दी और धर्मगद्दी का वैभव होना देखने को मिलता ही है। इससे मुख्य रूप में उल्लेखनीय स्मरणीय तथ्य यही है कि आम मारपीट को रोकने के लिये उससे ज्यादा अर्थात् आम लोगों में जो मार-पीट का तौर तरीका था, उससे ज्यादा प्रभावशाली तौर-तरीके को अपनाते हुए प्रयास किये। इस चित्रण से यही समझ में आता है कि मार-पीट को मारपीट से रोकना जरूरी समझा गया। आज के संविधान में भी यही ध्वनित होता है। जबकि मारपीट से पुन: मारपीट ही हाथ आता रहा, युद्ध के अनंतर पुन: युद्ध की तैयारी होता ही आया। इस विधि से शांति का कोई रास्ता मिला नहीं। इसी के साथ हर धर्म गद्दी शांति के समर्थक रहा है, अभी भी है। इसके बावजूद धर्म में अपना पराया, राज्य में अपना पराया मानसिकता पनपता रहा। इसी से पता लगता है इन दोनों के अथक प्रयासों में अंतरविरोध पनपती रही। बाह्य विरोध तो रहा ही। राज्य परंपरा में करने में और होने में दूरी होती रही है। धर्म गद्दी में कहने-होने में दूरी रहे आयी। यही मानव समुदायों में अन्तर्विरोध का कारण रहा। बाह्य विरोध अपना-पराया के रूप में रहा ही। इस प्रकार धर्म और राज्य के मूल में मानसिकता का स्वरूप स्पष्ट है।

मानव परंपरा में यह विदित है कि मानव क्रियाकलाप के मूल में मानसिकता का रहना अत्यावश्यक है। मानसिकता विहीन मानव को मृतक या बेहोश घोषित किया जाता है। विकृत मानसिकता (मान्य, सामान्य मानसिकता के विपरीत) वाले मानव को पागल, असंतुलित अथवा रोगी के नाम से घोषणा की जाती है। यह सभी क्रियाकलाप वांछित, इच्छित और आवश्यकीय मानसिकता हर क्षण, हर पल, हर दिन शरीर यात्रा पर्यन्त प्रभावित होने के क्रम में ही राज्य मानसिकता, धर्म मानसिकता, व्यापार मानसिकता, अधिकार

मानसिकता, भोग मानसिकता, सुविधा-संग्रह मानसिकता समीक्षित होता है। न्याय मानसिकता, धर्म (समाधान) मानसिकता, नियम मानसिकता, प्रामाणिकता पूर्ण मानसिकता, समृद्धि मानसिकता, सहअस्तित्व मानसिकता, वर्तमान में विश्वास मानसिकता, परिवार मानसिकता, स्वायत्त मानसिकता, समाज मानसिकता, व्यवस्था मानसिकता, मानवीय शिक्षा-संस्कार मानसिकता, स्वास्थ्य संयम मानसिकता का मूल्यांकन किया जाना जागृत परंपरा में संभव होता है। अनुभवमूलक विधि से किया गया कार्य-व्यवहार, विचार, अर्पण-समर्पण, संबंध-मूल्य-मूल्यांकन-उभयतृप्ति, परिवार सहज आवश्यकता से अधिक उत्पादन, लाभ-हानि मुक्त विनिमय, प्रामाणिकता पूर्ण प्रबोधन (समझे हुए को समझाने, किये हुए को कराने, सीखे हुए को सिखाने) से ही ये सब सकारात्मक उपलब्धियाँ मानव परंपरा में सहज-सुलभ होना पाया जाता है। यह सम्पूर्ण वैभव मानव परंपरा में अनुभवात्मक अभिव्यक्ति एवं मानसिकताएँ है।

आदर्शवाद और भौतिकवाद के स्थान पर **अस्तित्वमूलक मानव केन्द्रित चिन्तन बनाम मध्यस्थ दर्शन, सहअस्तित्ववाद** क्रम में ऊपर कहे गये सभी सकारात्मक पक्षों का सहज समाधान और उसकी निरंतरता की समीचीनता प्रस्तावित रहता ही है। यही अनुभवात्मक आदर्शवादिता का 'पूरक गुण' होना देखा गया।

मूलत: अनुभव अनुक्रम से ही होता है मानव कुल में जीवन जागृति सहज विधि से सभी सकारात्मक पक्ष प्रमाणित होना देखा गया है। इसके विपरीत भ्रमबंधन वश ही अर्थात् भ्रम में ग्रसित मानसिकता वश ही मानव अनेक समुदाय, राज्य, धर्म, जाति, पंथ, सम्प्रदाय, धन, पद और सामारिक बल के आधार पर अपने को विकसित-अविकसित भी मान लेते हैं, कह लेते हैं। प्रयोजन के रूप में कुछ भी नहीं निकलता है। यथा सहअस्तित्व, समाधान, अभय, समृद्धि मानव कुल में प्रमाणित नहीं हो पायी। इससे यह स्पष्ट हो गई कि जागृति में मानव मानसिकताएँ सकारात्मक, अमानवीयता में नकारात्मक पक्षों में कार्य करता है। नकारात्मक कार्य में भ्रमवश अनर्थ एवं सकारात्मक पक्ष में जागृतिपूर्णता पूर्वक सार्थक होना, मूल्यांकित होना, समीक्षित होना, फलित होना देखा जाता है।

भ्रमित परंपरा में ही शक्ति केन्द्रित शासन मानसिकता स्पष्ट हो चुकी है। यह भी साथ में झलक मिल चुकी है कि समाधान केन्द्रित परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था ही सर्वशुभ कार्यक्रम हैं।

इस दशक तक अधिकारों की होड़ रही है। अधिकार सर्वप्रथम शासन और शासन के स्वरूप में भागीदारी की मानसिकता पर आधारित होना स्पष्ट है। शासन मानसिकता स्वयं भ्रमित होने के आधार पर भागीदारी की तैयारी भ्रम ही होना, भ्रमवश ही होना, भ्रमित अपेक्षाओं के साथ ही होना पाया जाता है। सुविधा संग्रह के लिये ही अधिकार मानसिकता बना रहता है। अधिकार मानसिकता में, अधिकार को पाया हुआ मानसिकता में, और अधिकार प्रवर्तन की मानसिकता में जो भ्रम अपने श्रेष्ठता, अन्य की नेष्ठता को बनाये

रखा रहता है वही कार्यरूप में अन्य को क्षति ग्रस्त होना ही प्रायोजित हुआ रहता है। जैसा - 'दासवाद' को समर्पित शासनाधिकार में स्वयं को सर्वश्रेष्ठ, शासन में जो नहीं रहते है उनसे अपने आप को श्रेष्ठ मानते हुए सभी प्रकार से निर्णय लिये रहना अर्थात् संवाद के पहले से ही निर्णय लिये रहना देखा गया है। इसका साक्ष्य अभी तक शासन मानसिकता लोक मानसिकता से मिलन बिन्दु स्थापित नहीं हुई है। जबकि धर्मशासन विधि से आचरण पद्धति के रूप में एक आचार संहिता प्रस्तुत किये रहते हैं। ईश्वरीय नियम के रूप में संध्या-उपासना-प्रार्थना अभ्यास भाषा के रूप में बताया करते हैं। हर धर्म गद्दी में बैठा हुआ व्यक्ति अपने को सर्वश्रेष्ठ बाकी सब अज्ञानी-पापी-स्वार्थी के रूप में गणना करते हुए भाषा, लहजा मुद्रा, भंगिमाओं को प्रस्तुत करते हैं जबकि यह सर्वथा भ्रम का ही द्योतक है। क्योंकि भ्रमित धर्म, भ्रमित राज्य के वशीभूत जन-मानस भ्रमित रहना स्वाभाविक है इसलिए धर्म, राज्य और जनमानसिकता का तालमेल में संगीत, समाधान प्रतिपादित नहीं हुआ। ये तीनों दिशाविहीन, अंतर्विहीन, अर्थविहीन रूप से ही अंत होते है। नामत: इसे समस्या कहा जाता है। इस प्रकार बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक तक धर्म गद्दी, राज्य गद्दी की अस्मिता स्पष्ट है। प्रस्ताव के रूप में अर्थात् समाधान केन्द्रित सार्वभौम व्यवस्था अखण्ड समाज के अर्थ में "अनुभवात्मक अध्यात्मवाद" बनाम अनुभवात्मक आदर्शवाद को प्रस्तुत किया है।

भ्रमात्मक धर्म और राज्य परंपरा में परिकल्पित अधिकारों का प्रवर्तन संग्रह, सुविधा और भोग के अर्थ में ही अंत होना देखा गया। आज की स्थिति में शक्ति केन्द्रित शासन प्रयोग में अधिकार पाया हुआ व्यक्ति की सफलता का स्वरूप इस प्रकार दिखाई पड़ता है कि देशवासियों को कड़ी मेहनत, ईमानदारी का नारा और पाठ सुनाते रहे और अपने संग्रह कोष को स्वदेश के अतिरिक्त विदेश में मजबूत बनाते रहे। इसी प्रकार सफल धर्म में अधिकार प्राप्त व्यक्ति (सिद्धि प्राप्त व्यक्ति) का स्वरूप देखने पर यही पता लगता है कि संसार में त्याग और वैराग्य का पाठ पढ़ावे और अपने कोष व्यवस्था को स्वदेश में अधिकतम मजबूत बनाये रखे।

इस तरह राज्याधिकार, धर्माधिकार सफल व्यक्ति का स्वरूप इस बीसवीं शताब्दी का अंतिम दशक में देखने को मिल रहा है। यही भ्रमात्मक धर्म, भ्रमात्मक राज्य का गवाही है। जबकि 'मानव धर्म' अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था के स्वरूप में ही सार्थक और सर्वसुलभ होना पाया जाता है। इस विधि से सम्पूर्ण मानव के सम्मुख सर्वमानव सुखी होने का सूत्र "अनुभवात्मक अध्यात्मवाद" प्रस्तुत है।

पहला मुद्दा - शक्ति केन्द्रित शासन चाहिये या समाधान केन्द्रित व्यवस्था चाहिये ?

दूसरा मुद्दा - संग्रह सुविधा चाहिये या न्याय, समाधान और समृद्धि चाहिये ?

तीसरा मुद्दा - इसके लिये लाभोन्मादी अर्थशास्त्र, भोगोन्मादी समाज शास्त्र, कामोन्मादी मनोविज्ञान शिक्षा की वस्तु के रूप में चाहिये या आवर्तनशील अर्थशास्त्र, व्यवहारवादी समाजशास्त्र और मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान शिक्षा की वस्तु के रूप में चाहिये ?

चौथा मुद्दा - विखण्डनवादी (प्राकृतिक असंतुलनवादी) विज्ञान चाहिये या सहअस्तित्ववादी (प्राकृतिक संतुलनवादी) विज्ञान चाहिये ?

इन्हीं सकारात्मक-नकारात्मक अर्थात् अभी तक किया गया शिक्षा स्वरूप को नकारता हुआ और सकारात्मक पक्ष को प्रस्तावित किया हुआ का समर्थन में समाधानात्मक भौतिकवाद, व्यवहारात्मक जनवाद और अनुभवात्मक अध्यात्मवाद (सहअस्तित्ववाद) चाहिये या द्वन्दात्मक भौतिकवाद, संघर्षात्मक जनवाद, रहस्यात्मक अध्यात्मवाद (आदर्शवाद) चाहिए।

रहस्यमूलक ईश्वर केन्द्रित चिन्तन और अस्थिरता अनिश्चयता मूलक वस्तु केन्द्रित चिन्तन चाहिये या अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिन्तन चाहिये ?

यही मानव कुल को निश्चय करने का अवसर समीचीन हुआ है। इसे नकारने-सकारने के पक्ष में कही गई विश्व दृष्टिकोण, विचार शैली, शास्त्र प्रणालियों में से प्रभावित का परिचय अधिकांश लोगों के पास जाँच पड़ताल सहित धारक-वाहकता के रूप में प्रस्तुत है। और प्रस्तावित दर्शन बनाम चिन्तन, विचार शैली का नाम, प्रस्तावित शास्त्रों का नाम मानव के सम्मुख प्रस्तुत हुआ। इस स्थली में, यहाँ इस "अनुभवात्मक अध्यात्मवाद" को अध्ययन करता हुआ मेधावियों के स्मरण में इस बात को ला रहे हैं कि प्रस्तावित चिन्तन-दर्शन, मध्यस्थ दर्शन, सहअस्तित्ववाद के नाम से तीनों वाद तीनों शास्त्र वाङ्मय के रूप में प्रतिपादित, सूत्रित, व्याख्यायित विधि से प्रस्तुत कर चुके हैं। अतएव मानसिकता के आधार के रूप में भ्रमात्मक विधि से इस दशक तक मानव जो भुगत चुका है और प्रस्ताव के रूप में जागृति और अनुभव प्रमाण सहित जीने की आवश्यकता, उसकी सफलता के लिये सुयोजित मार्ग को प्रशस्त करना सर्वसुलभ करना ही हमारे प्रयासों का आशय है।

भ्रमित राज्य और धर्म के साथ व्यापार शोषणाधीन हो चुका है। व्यापार मानसिकता में शोषण का ही एकमात्र बुलंद आवाज है, उसमें सभी छल-कपट-दंभ-पाखण्ड समाया हुआ है। इसी क्रम में मानवेत्तर वस्तु व्यापार, मानव व्यापार, देह-व्यापार, धर्म व्यापार, ज्ञान व्यापार, तकनीकी व्यापार में अधिकाधिक व्यक्ति प्रवृत हो चुके हैं। इसका मूल कारण भ्रमित सामुदायिक परंपराएँ ही हैं। व्यापार विधि से हर मानव किसी न किसी का शोषण करता ही है। राज्य विधा में द्रोह-विद्रोह होता ही है। धर्म विधा में अपना पराया

बना रहता है। इस शताब्दी के मध्यावधि से अभी तक सर्वधर्म सम्मेलन के नाम से अनेकानेक भाषण करने वाले विभूतियों को देखा गया है। सब अपने-अपने धर्म को श्रेष्ठ बताते हैं। कभी-कभी एक दूसरे को सराहते भी हैं। इसके बावजूद कौमी मजहबी संघर्ष, दूसरे विधि से कौमी मजहबी मानसिकता के आधार पर राज्यों के साथ संघर्ष, सत्ता हथियाने, दमन करने, तंग करने का प्रयास देखा गया है। जबकि मानव जाति एक है, धर्म एक है फलस्वरूप अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था, शांति, न्याय, सुरक्षा, समृद्धि, समाधान, सहअस्तित्व, वर्तमान में विश्वास जागृति सहज विधि से नित्य समीचीन है ही। यही अनुभवमूलक आदर्शवाद मानवीयता सहज समाधानात्मक भौतिकवाद का स्वरूप है। अनुभवमूलक विधि से ही जागृति का प्रमाण होना देखा गया है।

भ्रम पर्यन्त अधिकारों के प्रति पागल होने के अनंतर कम से कम कुछ लोगों को घायल किये बिना रहा नहीं जा सकता। मूलत: अधिकार तंग करने के अर्थ में ही ख्यात है। कुछ लोग तंग होने के लिये अर्थात् शोषित होने के लिये तैयार भी बैठे रहते हैं। मानव पुरूष हो या स्त्री हो वह सदा-सदा शरीर यात्रा काल में पाँच कोटि में ही गण्य होता है। वह क्रम में जागृति पूर्ण मानव ही दिव्यमानव, जागृत मानव ही देवमानव और मानव, अजागृत पशु मानव व राक्षस मानव के अर्थ में अमानव गण्य होना देखा गया है। जीवन में ही दृष्टि, स्वभाव और प्रवृत्तियाँ होना अध्ययन गम्य है और स्वयं में अनुभव किया गया है, हर व्यक्ति अनुभव कर सकता है। अतएव मानव ही सत्यापित करने के लिये मानव से ही सत्यापित होने के लिये मानव में ही सम्पूर्ण सत्यापन उद्गमित होना देखा गया है। यही सत्यापन अभिव्यक्ति संप्रेषणा के अर्थ में गण्य होता है। अस्तित्व सहज पदार्थावस्था, प्राणावस्था और जीवावस्थाएँ अपने-अपने 'त्व' सहित व्यवस्था के अर्थ में परंपरा के रूप में प्रकाशमान है ही।

अस्तित्व सहज सभी अवस्थाओं का दृष्टा, मानवीयता पूर्ण क्रियाकलापों का कर्ता, मानवापेक्षा सहज समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व का भोक्ता केवल मानव ही है। अस्तित्व में अनुभव सहज अभिव्यक्ति ही यह सत्यापन और सत्यापन विधि होना पाया गया है। यही मानव परंपरा का मौलिक वैभव है। यह सर्वसुलभ होने के लिये परंपरा ही जागृत होना अति अनिवार्य है। इस बीसवीं शताब्दी की दसवें दशक तक इस धरती के मानव विविध प्रकार से अथवा उक्त दोनों प्रकार से यथा भौतिकवादी और आदर्शवादी विधि से मानव को भुलावा देकर ही सारे धरती का शक्ल बिगाड़ दिया। और दूसरे विधि से मरणोपरांत स्वर्ग और मोक्ष के आश्वासन में लटकाया। जबकि मानव शरीर यात्रा के अवधि में ही जागृति अनुभवमूलक प्रमाण, प्रामाणिकता मानव के लिये एक मात्र शांति पूर्ण समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व सहज आनन्दित होना देखा गया है। यही जागृति सहज प्रमाण है। आडम्बर मूलत: भ्रमवश

ही घटित होना देखा गया है। सम्पूर्ण भ्रम का पोषण राजगद्दी एवं धर्मगद्दी करता है। इसका स्रोत शिक्षा-गद्दी है। इस प्रकार शिक्षा गद्दी को जागृत होना आवश्यक है। इसके फलन में मानव धर्म ही अखण्ड समाज के अर्थ में सर्वमानव में, से, के लिये आश्वस्त और विश्वस्त होना नित्य समीचीन है। इससे सम्पूर्ण समुदायों जो अपने को समाज कहते है उनका विलय होगा ही। दूसरा परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था सहज विधि से अनेक राज्यों की परिकल्पना तिरोभावित होगी। इस प्रकार धरती की अखण्डता अपने में सम्पूर्णता के साथ स्वस्थ होने का शुभ दिशा प्रशस्त होगा। इसी के साथ मानव कुल में वांछित संयमता, प्रदूषणविहीन प्रौद्योगिकी, ऋतु संतुलन, जनसंख्या नियंत्रण सहित स्वस्थ मानसिकतापूर्ण मानव इकाई इस धरती के ऊपरी सतह में सहज रूप में निष्पन्न होती रहेगी। उसी के साथ सहअस्तित्व विधि से सदा-सदा के लिये पीढ़ी से पीढ़ी समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व पूर्वक जीने की कला, विचार शैली, अनुभव बल सम्पन्न होगा। यही समृद्ध मानव परंपरा का स्वरूप होना स्पष्टतया समझा गया है।

यह समझदारी अस्तित्व में अनुभवमूलक विधि से स्पष्ट हुआ है। यही मूलतः अस्तित्वमूलक मानव केन्द्रित चिन्तन की अभिव्यक्ति है।

अनुभवमूलक विधि से शिक्षा का स्वरूप अपने आप से जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान, मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान सहज विधि से शिक्षा-संस्कार सम्पन्न करने का उपक्रम सहज होना देखा गया है। इसे सर्व सुलभ करना सम्भव है। इस तथ्य को भी परिशीलन कर चुके हैं। ऐसी शिक्षा-संस्कार को मानवीय शिक्षा-संस्कार का नाम दिया है। यह शिक्षा का स्रोत सहअस्तित्व सहज है। इस बात को सत्यापित किये हैं। अस्तित्व में नित्य व्यवस्था है न कि शासन। शासन को व्यवस्था मानना ही पूर्ववर्ती दोनों विचारधारा भटकने का एक बिन्दु रहा है। दूसरा प्रधान बिन्दु अस्तित्व को समझने में असमर्थ रहा है या अड़चन रहा है अथवा भ्रम से पीड़ित रहे हैं। इन्हीं कारणों से दोनों प्रकार के विचारधाराएँ अस्तित्व सहज यर्थाथिता, वास्तविकता, सत्यता को स्थिति सत्य, वस्तु स्थिति सत्य, वस्तुगत सत्य के रूप में अनुभव करने में वंचित रहे हैं या अनुभव हुआ किन्तु अभिव्यक्ति संप्रेषणा में प्रमाणित होना संभव नहीं हो पाया है। जबकि हमें अस्तित्व में अनुभव के अनंतर अभिव्यक्ति, संप्रेषणा, प्रकाशन में कोई अड़चन उत्पन्न नहीं हुई। अब यह भी सर्वेक्षण, निरीक्षण, परीक्षण की बेला समीचीन है कि यह संप्रेषणा मानव कुल में, से, के लिये आवश्यकता के रूप में विदित होगा या नहीं। हमें इस पर पूर्ण भरोसा है - मानव में, से, के लिये अस्तित्व में अनुभव एक आवश्यकता के रूप में स्वीकार्य हुआ हो ऐसी स्थिति में यह अभिव्यक्ति, संप्रेषणाएँ स्वाभाविक रूप में बोधगम्य, हृदयंगम पूर्वक सहअस्तित्ववादी मार्ग को प्रशस्त करेगा क्योंकि अस्तित्व ही सहअस्तित्व के रूप में नित्य विद्यमान है।

इस दशक तक दंडाधिकार, दमनाधिकार, पूंजी का अधिकार, धरती का अधिकार, मानव पर अधिकार, जीवों पर अधिकार, वनों पर अधिकार, खनिजों पर अधिकार, प्रौद्योगिकी पर अधिकार, व्यापार अधिकार, राज्याधिकार, समुद्र और आकाश पर अधिकार, धर्माधिकार और बौद्धिक संपदाओं पर अधिकारों का चर्चा, अधिकारों की सीमा और मर्यादाओं पर भी ध्यान दिया जाना देखा गया। इन सभी मुद्दों के संबंध में कई समुदायों अथवा सभी समुदायों का सम्मिलित अथवा समुदाय प्रतिनिधियों का सम्मिलित गोष्ठी, विचारपूर्वक गोष्ठी, विचार पूर्वक निर्णयों को स्वीकारा गया। अब ऐसी सभी स्वीकार्यताएं महिमामय दस्तावेजों के रूप में माने गये हैं। महिमा सम्पन्न दस्तावेज का तात्पर्य जिस स्वीकृतियों का हेराफेरी होने से उसके लिये डरावनी सबक सीखने के लिये स्वीकृतियाँ बनी रहती हैं। या इसको मर्यादा माना जाता है। ये सब ऐसे मौलिक दस्तावेजों का मूल तात्पर्य सभी अपने-अपने देश में शांतिपूर्वक जी सके इसी मानसिकता से उक्त सभी बातों पर एक समझौता किया जाता है। जबकि अभी तक पूर्ववर्ती किसी भी चिन्तन के अनुसार, कोई भी वाङ्गमय जो मानव सम्मुख प्रस्तुत हुई है उसमें सार्वभौम शांति का कोई परिभाषा, प्रतिपादन, उसका व्याख्या संप्रेषित नहीं हो पाया। साथ ही सुख शांति की अपेक्षा हर मानव में होना पाया जाता है।

उक्त मुद्दों पर स्वीकृत अधिकारों के आधार पर किये गये समझौते बारंबार बदलते भी रहते है। इसी के साथ इस शताब्दी के अंतिम दशक तक में यह भी देखा गया जिस देश के पास सर्वाधिक समर शक्ति हाथ लगी है वह किसी के अधिकारों को भी हथिया लिया है और अपने अधिकार के रूप में स्वीकार कर लिया गया है। इस शताब्दी के पहले भी इस प्रकार के नजीरें उपनिवेश के रूप में घटित होना ख्यात हो चुकी है। इस प्रकार कोई भी अपने सामरिक कूटनीतिक (अन्तःकलह को पैदा करो-राज करो) मानसिकता से ही पहले भी जो अपना देश नहीं है ऐसे देशों पर अधिकार पाने का प्रयोग किया है। यह राज्याधिकार मानसिकता मूलतः अपने स्वजनों, स्वजातियों और स्वदेशियों के सुविधा के लिये अन्य देश की सम्पदाओं को अपहरण कर, शोषण कर अपने देश में उपयोग करने के रूप में प्रयास करना देखा गया है। आदिकाल से ही सामरिक शक्ति सम्पन्न राज्य को विकसित राज्य, उस देश में निवास करने वालों को विकसित जनजाति होना मान्यता के रूप में लोकव्यापीकरण हुआ है जबकि युद्ध न तो विकास का आधार है, न कड़ी है, न प्रक्रिया है। क्योंकि इससे अखण्ड समाज का एक भी सूत्र-व्याख्या, प्रयोजन प्रमाणित नहीं होता। जबकि मानवीयतापूर्ण पद्धति, प्रणाली, नीति से अखण्ड समाज का ही सूत्र रचना, व्याख्या व प्रयोजन नित्य समीचीन है। इससे वंचित होने का एक ही कारण है, भ्रमात्मक मानसिकता अथवा भय, प्रलोभन, आस्थाओं से ग्रसित मानसिकता ही है। अभी तक जितने भी झीना-झपटी युद्ध, विश्वयुद्ध हुए हैं, वे सब उक्त तीनों आधारों पर ही सम्पन्न हुए हैं। अतएव अनुभवमूलक विधि से ही मानवीयतापूर्ण पद्धति प्रणाली नीतिपूर्वक है। अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था, मानवीयतापूर्ण शिक्षा-संस्कार सुलभता, न्याय-सुरक्षा

सुलभता, उत्पदान-कार्य सुलभता, विनिमय-कोष सुलभता, स्वास्थ्य संयम सुलभता नित्य वैभव के रूप में इसी धरती पर वैभवित होना सहज है, नियति है, एक अपरिहार्यता है। ऐसी ऐश्वर्य सम्पन्न मानव परंपरा महिमा से ही अनेक राज्य, समुदाय सम्बन्धी अधिकारोन्माद समापन होना स्वाभाविक है। इसका समापन और मानवीयता का उदय अर्थात् जागृति ही मानव परंपरा में, से, के लिये मौलिक संक्रमण और परिवर्तन है।

मानव जाति, मानव धर्म एक ही है और धरती एक है। इस आधार पर अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था मानव परंपरा में वैभवित होना सहज है। इसी के साथ राज्याधिकार उन्माद समापन होने के साथ-साथ सामुदायिक धर्मोन्माद, बनाम संप्रदाय-मत-पंथों का भ्रम और उन्माद अपने-आप दूर होता है। अखण्ड समाज विधि से सहज होने के कारण, सर्वसुलभ होने के कारण मानव परंपरा में सुख-शांति का सूत्र अपने-आप प्रभावशील होने लगता है। सुख-शांति के लिये विविध धर्म कहलाने वाले अथवा सामुदायिक धर्म कहलाने वाले संप्रदायों का आशय रूप में जो सुख शांति की अपेक्षा और आश्वासन के बीच ये सभी गद्दियाँ अपने को सम्मानशील बनाये रखे हैं। सभी मानव इनकी आवश्यकता को मूल्यांकन करने योग्य होता है फलस्वरूप ये सब भ्रम अपने आप दूर होने की व्यवस्था समीचीन है।

उत्पादन सुलभता अर्थात् परिवार में जितने भी परिवार मानव रहते हैं उन सबकी आवश्यकता से अधिक उत्पादन कार्य होना परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था क्रम में सहज और सुलभ है। इस विधि से हर परिवार समृद्ध होने सहज समीचीनता सुलभ रहता ही है। इसी के साथ श्रम मूल्य के आधार पर विनिमय प्रणाली सर्वसुलभ होता ही है। इस विधि से लाभ-हानि मुक्त विनिमय सम्पन्न होना सहज है। फलस्वरूप लाभ से होने वाली अहमता (अहंकार) और हानि से होने वाली पीड़ा से मुक्त होना स्वाभाविक रहता ही है। समाधान, समृद्धि, शांति और सुख का सूत्र होना और न्याय सुलभता के साथ ही वर्तमान में विश्वास होना देखा गया है। बीसवीं शताब्दी के दसवें दशक तक यह प्रणाली मानव कुल में प्रभावी नहीं हुई है। इस स्थिति में भी यह अनुभव किया गया है स्वायत्त विधि से किया गया उत्पादन कार्य से समृद्धि का और संबंध, मूल्य, मूल्यांकन, उभय तृप्ति विधि से न्याय का प्रमाण हमें सुलभ हो चुका है। अब रहा विनिमय प्रणाली अभी तक प्रचलित लाभोन्मादी के अर्न्तगत ही हम लेन-देन जैसा उत्पादन और विनिमय मुद्रा के आधार पर करते हुए भी समृद्धि का अनुभव किया। इसलिये और कहा जा सकता है कि लाभ-हानि मुक्त विनिमय प्रणाली प्रत्येक परिवार में, से, के लिये शांति कारक सूत्र होना देखा गया।

स्वास्थ्य-संयम जागृति विधि से अर्थात् अनुभव विधि से स्वायत्त होना सहज है। संबंध-मूल्य-मूल्यांकन-उभयतृप्तिकारी मानसिकता स्वयं का प्रमाण है और स्वास्थ्य समाधान, सहअस्तित्व, वर्तमान में विश्वास,

परिवार सहज आवश्यकता से अधिक उत्पादन-कार्य, न्याय-सुरक्षा में भागीदारी उसकी निरंतरता को बनाये रखने योग्य शरीर को संतुलित किये रहना स्वायत्तता के रूप में हर व्यक्ति में प्रमाणित होना समीचीन है। जीवन जागृति को मानव परंपरा में प्रमाणित करने के लिये शरीर की आवश्यकता और इसका उपयोग, सदुपयोग और प्रयोजनों के संबंध में हर व्यक्ति जागृत रहना आवश्यक होना है क्योंकि अनुभव की महिमा जागृति ही है। इसी सत्यतावश मानवीयतापूर्ण शिक्षा-संस्कारपूर्वक ही अथवा सुलभता से ही स्वायत्तता अपने आप संस्कारित होना पाया जाता है। स्वायत्त मानव ही परिवार मानव होना, परिवार मानव ही अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था का धारक-वाहक होना, अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था ही मानव में, से, के लिये परम सौभाग्य स्थिति, गति होना, फलस्वरूप मानव सहज सर्वशुभ, जीवन सहज नित्य शुभ, हर मानव में, से, के लिये प्रमाणित होता है।

जागृति विधि से ही संग्रह, सुविधा, पूंजी पर अधिकार की निरर्थकता स्पष्ट होती है और आकाश, खनिज, वन, समुद्र धरती पर अधिकार कल्पनाएँ भ्रामक सिद्ध हो जाती हैं। इसी क्रम में शरीर व्यापार, ज्ञान व्यापार, धर्म व्यापार, विचार व्यापार, मानव का व्यापार, बौद्धिक सम्पदा का व्यापार सम्बन्धी सभी प्रयास, प्रक्रिया, परिणाम का व्यर्थता हर मानव को समझ में आता है। यही अनुभव और जागृति सहज महिमा है। ऐसी जागृति का पहला प्रमाण स्वायत्त मानव ही होना देखा गया है।

स्वायत्त मानव का प्रमाण रूप मानवीयतापूर्ण शिक्षा-संस्कार ही है। इसकी महिमा को स्वयं के प्रति विश्वास, श्रेष्ठता के प्रति सम्मान, प्रतिभा और व्यक्तित्व में संतुलन और व्यवहार में सामाजिक, व्यवसाय में स्वालंबन है। ऐसे स्वायत्त मानव ही परिवार मानव के रूप में प्रमाणित होना पाया जाता है। हर परिवार मानव परस्परता में संबंधों की पहचान, मूल्यों का निर्वाह, मूल्यांकन और उभय तृप्ति को पाना देखा गया है। परिवार मानव ही परिवार सहज आवश्यकता के अनुसार अपनाया गया उत्पादन कार्य में एक दूसरे के पूरक होते हैं, भागीदारी का निर्वाह करते हैं, फलस्वरूप परिवार सहज आवश्यकता से अधिक उत्पादन होना देखा गया है। यही समृद्धि, समाधान, न्याय सूत्र होना देखा जाता है। परिवार में समाधान और समृद्धि संबंधों के आधार पर पाये गये उभय तृप्ति सहज न्यायपूर्वक व्यवस्था में जीना सहज होता हुआ देखा गया है। इन्हीं सहजता की पुष्टि में आवश्यकता से अधिक उत्पादन समृद्धि को प्रमाणित कर देता है। व्यवस्था में जीना ही समाधान का प्रमाण है और वर्तमान में विश्वास है। अतएव स्वायत्त मानव स्वरूप अनुभवमूलक होना देखा गया है। फलस्वरूप परिवार मानव, समाज मानव और व्यवस्था मानव के रूप में होना नियति सहज अभ्युदय (सर्वतोमुखी समाधान) और प्रामाणिकता (अनुभव और पूर्ण जागृति) सहज मानव में सार्थक होना देखा गया है। इसी आधार पर यह "अनुभवात्मक अध्यात्मवाद" लोक मानस के लिये प्रस्ताव के रूप

में प्रस्तुत है। मानव ही ज्ञानावस्था की इकाई होने के कारण जागृति और सर्वतोमुखी समाधान को स्वीकारता ही है। यह अनुभवमूलक विधि से ही सर्वसुलभ होता है। ऐसे अनुभव और जागृति विधि से ही इस धरती को सुरक्षित बनाये रखने में मानव की भागीदारी अपेक्षा रूप में स्वीकार हो चुकी है।

भ्रम का कार्य रूप अतिव्याप्ति, अनाव्याप्ति, अव्याप्ति दोष ही है। यही अधिमूल्यन, अवमूल्यन, निर्मूल्यन क्रियाओं के रूप में देखने को मिलता है। इसका (भ्रम का) मूल रूप बन्धन है। बन्धन स्वयं में जागृति क्रम है। उसके पहले जीवनी क्रम है। मूलतः जीवन ही है। जीवन अपने में गठनपूर्ण परमाणु चैतन्य इकाई है। जीवन परमाणु भार और अणुबन्धन से मुक्त रहता है और आशा बन्धन से कार्यप्रणाली आरंभ होता है। जीवन में आशा, विचार, इच्छा, ऋतम्भरा और अनुभव प्रमाण जैसी शक्तियाँ और मन, वृत्ति, चित्त, बुद्धि और आत्मा रूपी बल अविरत रूप में विद्यमान रहता है। बल और शक्ति अविभाज्य रूप में रहते हैं। यह प्रकृति सहज प्रत्येक इकाई में प्रकाशित महिमा है। गठनपूर्ण परमाणु ही जीवन के रूप में कार्य करता हुआ समझ में आता है। गठनपूर्ण होने के पहले सभी परमाणु भौतिक-रासायनिक कार्यकलापों में भागीदारी निर्वाह करने में, देखने में आता है। रासायनिक और भौतिक संसार में जो कुछ दिखाई पड़ता है वह सब अनेक परमाणु से अणु, अनेक अणु से रचनाएँ वर्तमानित है।

भौतिक संसार के रूप में पदार्थावस्था और प्राणावस्था के रूप में वनस्पति संसार एवं सभी जीव शरीर तथा मानव शरीर रचना अर्थात् रासायनिक संसार होना दिखाई पड़ता है। यहाँ संसार का तात्पर्य सार रूप में अर्थात् प्रयोजन रूप में रचनाओं को प्रस्तुत करना ही है। इसका प्रमाण भौतिक-रासायनिक संसार में प्रत्येक इकाईयाँ अपने-अपने 'त्व' सहित व्यवस्था के रूप में ही हैं। बीसवीं शताब्दी के दसवें दशक तक मानव अपने 'मानवत्व' सहित व्यवस्था होने में प्रतीक्षारत है। प्रतीक्षारत रहना भ्रम मुक्ति की ओर गति अथवा दिशा सहज अपेक्षा का द्योतक है। भ्रमित रहना बंधन की प्रगाढ़ता का द्योतक है। इन दोनों स्थिति में अमानवीयता ही प्रचलित रहते हुए, बंधन की पीड़ावश अथवा भ्रम सहज कुण्ठावश जागृति की प्रतीक्षा होना देखा जाता है। प्रगाढ़ रूप में भ्रमित व्यक्ति, समुदाय अथ से इति तक शरीर को जीवन मानने-मनाने के लिये कटिबद्ध रहता है। यही जीवन सहज अनुभव और जागृति का निर्मूल्यन बिन्दु है। जीवन के स्थान पर शरीर को ही जीवन मान लेना प्रगाढ़ भ्रम का गवाही है। इसी भ्रमवश ही मानव जितने भी भ्रमात्मक क्रियाकलापों को कर पाता है वह सब समस्या में ही परिणित हो जाते हैं। जैसे, विज्ञान संसार की महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ दूरसंचार के रूप में और दूसरा उत्पादन कार्यों में गति के रूप में यंत्रों को प्रमाण के रूप में प्रस्तुत किया है। यह अपने में उपलब्धियाँ होते हुए मानव में जागृति, अनुभव परंपरा न होने के कारण

इनके उपयोग, सदुपयोग, प्रयोजनशीलता के स्थान पर सुविधा-भोग-अतिभोग का साधन बनकर रह गया है।

आशा, विचार, इच्छा रूप में बन्धनों को देखा जाता है। जीवन में ही आशा, विचार, इच्छाएँ क्रियाशील रहती हैं। आशापूर्ति, विचारपूर्ति एवं इच्छापूर्ति ही बन्धन का स्वरूप है। भ्रमवश सम्पूर्ण आशा, विचार, इच्छाओं को शरीर कार्य, शरीर सुविधा, शरीर भोगों के आपूर्ति के लिये दौड़ा लिया। मानव में कर्मस्वतंत्रतावश वैज्ञानिक उपलब्धियों के रूप में यांत्रिकता प्रमाणित हो गई। इन यंत्रों को सदुपयोग करने के स्थान पर अपव्यय करना मानव परंपरा में बाध्यता के रूप में देखा गया, आवश्यकता माना गया है। इसी के परिणामस्वरूप धरती का स्वस्थ मुद्रा अस्वस्थ मुद्रा के रूप में परिणित हो गया है। साथ ही जितने भी जीवन अनुभवमूलक विधि से जागृति होने के लिए उम्मीदें लेकर मानव परंपरा में मानव शरीर को संचालित करने के लिये तत्पर रहते हैं उन सबका जीवन आशा अथवा जीवन अपेक्षा ध्वस्त हो जाता है। इसके मूल में भ्रमित मानव परंपरा ही कारक तत्व है। इस प्रकार से भटकता हुआ जीवन संतुष्टि स्वाभाविक रूप में भोग मानसिकता को न्याय मानसिकता में, संग्रह मानसिकता को समृद्धि मानसिकता में, संघर्ष मानसिकता को समाधान मानसिकता में, द्रोह मानसिकता को पूरक मानसिकता में, विद्रोह मानसिकता को धीरता रूपी मानसिकता में, शोषण मानसिकता को विनियम मानसिकता में, युद्ध मानसिकता को सहअस्तित्व मानसिकता में, शासन मानसिकता को सार्वभौम व्यवस्था मानसिकता में, समुदाय मानसिकता को अखण्ड समाज मानसिकता में प्रयोजित होना अनुभवमूलक विधि से सहज संभावना है। यह निरंतर समीचीन है। यही "अनुभवात्मक अध्यात्मवाद" (आदर्शवाद) का तात्पर्य है। आदर्श किसका है, भ्रमित मानव का।

ऊपर कहे सम्पूर्ण परिवर्तन बिन्दुएँ सकारात्मक होने के कारण जीवन सहज रूप में स्वीकार है। यह सब नियम, नियंत्रण, संतुलन, न्याय, धर्म, सत्य से ही सूत्रित वैभव है। दृष्टा पद प्रतिष्ठा जीवन में ही निहित है न कि शरीर में। इस तथ्य को पहले इंगित करा ही चुके हैं। इसलिये "अनुभवात्मक अध्यात्मवाद" परिचय विधि से ही आवश्यकता को उद्गमित करता है।

अनुभवमूलक विधि से ही जीवन सहज सभी कार्यकलाप जैसे अनुभव और प्रामाणिकता के अनुरूप बोध और संकल्प, अनुभवमूलक विधि से प्राप्त बोध और संकल्प के अनुरूप चिंतन और चित्रण, ऐसे चिन्तन और चित्रण के अनुरूप तुलन और विश्लेषण तथा आस्वादन चयन है। यही अनुभव समुच्चय का तात्पर्य है। अनुभवमूलक विधि से शरीर संचालन विधि स्वयं 'त्व' सहित व्यवस्था, समग्र व्यवस्था में भागीदारी को प्रमाणित कर देता है। हर मानव व्यवस्था चाहता ही है। ऐसी व्यवस्था के लिये परंपरा स्वयं अनुभवमूलक विधि से जागृति सहज प्रमाण होना परमावश्यक है। इस क्रम में जीवन तथा शरीर का संयुक्त रूप में ही

जीवन्त मानव के रूप में हर मानव प्रमाणित/मूल्यांकित होता है। शरीर में जीवन्तता अर्थात् ज्ञानेन्द्रियों का क्रियाकलाप पूर्णतया जीवन का ही वैभव होना देखा गया, जीवन ही अस्तित्व में अनुभूत होना देखा गया है। अनुभवमूलक क्रम में जागृत जीवन क्रियाकलाप स्वाभाविक होना समझा गया। जलवायु, वन सहित जो धरती का शक्ल बिगड़ चुका है, जिसे विज्ञान जगत के मेधावी प्रतिभाएँ भले प्रकार से समझ चुके हैं। अनुभवमूलक पद्धति, प्रणाली, नीति को मानव परंपरा में अपनाना ही होगा, तभी धरती के ऐश्वर्य सहित मुद्रा-भंगिमाएं सुधरने की अर्थात् धरती अपने समृद्धि सहित यथास्थिति को बनाए रखने योग्य पुनः हो पायेगी। मानव सहज सुधार और उसकी यथा स्थिति का प्रमाण अनुभवमूलक प्रणाली है। भ्रम का तात्पर्य ही बिगड़ा रहना है। मानव कुल ही कर्म स्वतंत्रतावश सम्पूर्ण गलती-अपराध करने के लिये विवश हुआ है। जैसे स्वनाश सहित धरती के नाश को निमंत्रित करने का एकमात्र इकाई मानव ही है।

मानव के अतिरिक्त सम्पूर्ण प्रकृति में इस प्रकार का कोई उद्यम करता हुआ दिखता नहीं साथ ही मानव के अतिरिक्त सम्पूर्ण प्रकृति अपने-अपने 'त्व' सहित व्यवस्था सहित वैभवित होना दिखता है। इसी साक्ष्य के आधार पर मानव अपने कर्मस्वतंत्रता कल्पनाशीलता का विवेक सहित उपयोग, सदुपयोग, प्रयोजनशीलता को जानना-मानना-पहचानना-निर्वाह करना एक अनिवार्यता बन चुका है। इसका मतलब यही है मानव सुधर के ही रहे अन्यथा मानव सहित जीव और वन-वनस्पति संसार संप्राणित जीवित रहता हुआ इस धरती पर दिखेगा नहीं यही धरती का शक्ल बिगड़ने का विकराल परिणाम है।

धरती के शक्ल को बिगाड़ने के लिये मानव का कर्म स्वतंत्रता का दुरूपयोग ही मूल कारण है। **"जो जिसको अपव्यय करेगा उससे वह वंचित हो जायेगा"** के सिद्धान्त के अनुसार धरती का अपव्ययतावश ही मानव में, से, के लिये इस सौभाग्यशाली धरती से वंचित होने का कारण बन चुका है। इसलिए आवश्यकीय सम्पूर्ण परिवर्तन अर्थात् अनुभव और जागृति सहज सम्पूर्ण आयाम, कोण, दिशा, परिपेक्ष्य और देश-काल में परंपरा के रूप में अनुभवमूलक विधि को अपना लेना ही सुख-सुन्दर-समाधानपूर्ण होगा। इसके लिए जागृतिपूर्ण मानव परंपरा ही एकमात्र उपाय है। जागृति सहज अधिकार सर्वमानव में, से, के लिये समान होना देखा गया है। इसके मूल में जीवन में देखा गया प्रत्येक जीवन रचना, शक्ति, बल और लक्ष्य समान है। इसे भले प्रकार से समझा गया है।

"**भ्रम ही बंधन है एवं बंधन मुक्ति ही जीवन जागृति है।"** जीवन जागृति के लिये ही हर मानव आतुर-कातुर और आकुल-व्याकुल रहता है। अनुभव पूर्वक ही मानवापेक्षा-जीवनापेक्षा सफल होना देखा गया है। भ्रम बन्धन वश ही संग्रह सुविधा जैसी वितृष्णा में भटकना और शरीर यात्रा के अनन्तर स्वर्ग और मोक्ष के आश्वासन से ग्रसित रहना देखा गया है। इन दोनों स्थितियों में मानवापेक्षा और जीवनापेक्षा प्रमाणित नहीं

हो पाता है। देखा हुआ तथ्य यही है कि जीवनापेक्षा सफल होने की स्थिति में मानवापेक्षा और मानवापेक्षा सफल होने की स्थिति में जीवन-अपेक्षा सफल होता है। इस प्रकार जीवन और मानव अपेक्षा का संतुलन बिन्दु समझ में आया है। इन्हीं यथार्थतावश अनुभवमूलक विधि को मानव परंपरा अपनाना एक आवश्यकता है। इसलिये प्रस्ताव के रूप में यह "अनुभवात्मक अध्यात्मवाद" मानव के कर कमलों में अर्पित है।

जय हो ! मंगल हो !! कल्याण हो !!!

अध्याय - 3

अनुभव सहज प्रामाणिकता सर्व मानव में, से, के लिए समान है

इस ग्रंथ के पूर्व के अध्यायों में इस तथ्य और घटना को स्पष्ट किया है कि मानव का जब से इस धरती पर उदय हुआ है तब से बीसवीं शताब्दी के दसवें दशक तक व्यक्ति के रूप में, परिवार के रूप में, समुदायों के रूप में जो कुछ भी कर पाया, सोच पाया जिसके फलस्वरूप जो परिणाम आज की स्थिति में देखने को मिल रहा है उसे विविध प्रकार से हृदयंगम कराया गया है वह - (1) जो कुछ भी सोच पाया जिसको अधिकांश लोग अथवा समुदाय के अधिकांश लोग मान्यतापूर्वक आस्था रखते रहे हैं। वह रहस्यमय अध्यात्मवादी विचार, रहस्यमयी अधिदैवीय विचार और रहस्यमयी अधिभौतिक विचार बनाम आदर्शवाद एवं (2) अस्थिरता-अनिश्चयतामूलक वस्तुवाद बनाम भौतिकवाद है।

इस प्रकार भय, प्रलोभन, आस्थावादी विचारों के साथ ही मानव कुल अपना गति बनाये रखने में अभ्यास करता रहा। पहले विचार के मूल प्रतिपादन में ईश्वर से सब पैदा होता है। इसमें प्रमुख तथ्य आँखों में दिखने वाली वस्तुओं को माया कहा गया। दूसरे विचार के अनुसार ईश्वरीयता गौण हो गया, वस्तु प्रधान हो गया। वस्तुवादी मूल प्रतिपादन में वस्तु से चेतना पैदा होने की बात कही। उसका सूत्र रचना के साथ जोड़ा गया। रचना के अनुसार चेतना पैदा होने की बात कही। यही भौतिकवाद का मूल प्रतिपादन है। विविध रचनाएँ मानव के सम्मुख देखने को मिलता ही रहा। इसी के साथ-साथ शरीरवाही यानों, वस्तुवाही वाहनों, शब्दवाही, दृश्यवाही यंत्रों-उपकरणों को मानव के सम्मुख प्रस्तुत किया। इसके प्रति सामान्य लोगों की भी आस्था जुड़ी। इसलिये इस ओर सर्वाधिक लोगों का ध्यान गया, स्वीकारा गया। इसी के साथ-साथ उत्पादन कार्यों में सहायक यंत्रोपकरणों को निर्मित किया गया। रचना के आधार पर ही वस्तुएँ काम किया रहता है। सम्पूर्ण रचनाओं को यंत्र के रूप में पहचानने के लिये प्रयत्न किया, कोशिश किया। कुछ को स्वीकार पाये, कुछ को नहीं स्वीकार पाये। जहाँ तक पदार्थावस्था की रचनाएँ हैं उनके उपयोग से ही सर्वाधिक अथवा सम्पूर्ण यंत्र निर्मित होते आया। हर यंत्र ईंधन संयोग से चलता रहा। विज्ञान के कथन के अनुसार रचना के अनुसार काम करता है जबकि ईंधन संयोग के बिना कोई यंत्र काम नहीं किया। वनस्पति एवं शरीर को यंत्र रचना के रूप में मानते हुए अंततोगत्वा हड्डी के आधार पर सम्पूर्ण रचना, सम्पूर्ण जीव शरीर, सम्पूर्ण मानव शरीर को मानते हुए नृतत्व (मानव तत्व) को उन्हीं किसी हड्डी में होने के अन्दाज पर

खोजते आ रहे हैं। इसी के साथ प्रयोग दर प्रयोग के परिणिति को अंतिम सत्यता मानते हुए अबाध गति से प्रयोगों को बुलंद किये रहते हैं।

इन दोनों की समीक्षा यही है कि चेतना से पदार्थ और पदार्थ से चेतना इस दशक तक प्रमाणित नहीं हुआ। भक्ति-विरक्ति प्रयोगों का अबाध गति, इन दोनों क्रम में सत्य सहज सुलभ होने का कोई मार्ग प्रशस्त नहीं हुआ। वस्तुवादी, यंत्रों को प्रमाण मानते हैं; आदर्शवादी, आदर्श व्यक्तियों को प्रमाण मानते आये है। आदर्श व्यक्तियों के पहचान का पृष्ठभूमि भक्ति-विरक्ति ही है। यंत्र प्रमाण मानने की पृष्ठभूमि प्रयोगशाला ही है - वह भी स्वयं यंत्रोपकरण ही है। आदर्श व्यक्तियों को 'आप्त पुरूष' नाम दिया है उनके वचनों को प्रमाण माना गया है। जबकि वस्तुवादी विधि से पारंगत यंत्रों को प्रमाण माना, प्रयोगों, नियमों को प्रमाण माना और आदर्शवादियों ने व्यक्ति का सम्मान किया।

इन दोनों प्रकार के मानव बहुसंख्या में इस धरती पर प्रसिद्ध हुए हैं। प्रसिद्ध होने का तात्पर्य है बहुत सारे लोगों को ज्ञात हुआ है। अभी भी दोनों विधा से ख्यात व्यक्ति इस दशक में भी देखने को मिलते हैं। इसी शताब्दी के अर्ध शतक से देखते भी आये हैं।

इन्हीं दो प्रकार से बताए गये मनीषीयों के प्रेरणा से ही इस धरती के सभी सामान्य लोग कार्य-व्यवहार-विचार करते आये हैं। इसका परिणाम आज की स्थिति में अर्थात् बीसवीं शताब्दी के दसवें दशक में मानव-मानव के साथ संघर्षशील, प्रदूषणरूपी विकृत पर्यावरण वश पीड़ा, संकट, रोग, बढ़ती हुई जनसंख्या, बेरोजगारी, अनानुपाती सुविधा-संग्रह का होना, हर दिन कल के लिए अधिक मुद्रा की आवश्यकता, स्त्रोत की क्षीणता, धरती का शक्ल बिगाड़ना, पानी का संकट, सामान्य सुविधाएं सर्वदेश सभी लोगों के लिए सुलभ नहीं हो पाना, शोषण का अनुपात बढ़ते जाना, मानव-मानव का शोषण, प्राकृतिक संपदाओं का शोषण, बिगड़ा हुआ पर्यावरण और बिगड़ने की संभावना बढ़ते जा रही है। फलस्वरूप विविध प्रकार से सभी लोग कुण्ठाग्रसित रहते हैं।

शिक्षा की विडम्बना यही है कि विज्ञान विधा से, विशेषज्ञता से प्रभावित है। विशेषज्ञता किसी विधा के किसी अंश में अपने को प्रतिष्ठित करने के प्रत्यत्नों में कार्यरत होना पाया जाता है। पुन: उसका अंश और उसके अंश के रूप में प्रयासों का उदय देखने को मिल रहा है। फलस्वरूप विशेषज्ञता प्रयोजनविहीन काला-दीवाल के सम्मुख सभी विधाओं में आ चुके हैं। जैसे - मात्रा विज्ञान अस्थिरता-अनिश्चयता के काला दीवाल के सम्मुख है। इसके विशेषज्ञ अपना मूल्यांकन करने में निरीह देखा गया है। दूसरा वंशानुषंगीय विज्ञान यह मानव को अध्ययन कराने में विश्लेषित करने में सर्वथा असमर्थ होकर काला दीवाल के सम्मुख होना देखा गया। तीसरा सापेक्षवाद अपने कल्पना को अज्ञात घटना के साथ वर्णित करने के रूप में विशेषज्ञों

को देखा गया है। इन तीनों विधा के लिये अथवा इन विधाओं को पहचानने के लिये ऊर्जा की आवश्यकता को विज्ञान संसार में स्वीकारा गया है। यह अपने से गति ऊर्जा कहना आरम्भ करते हैं यथा चुम्बकीय धारा को विद्युत गति के रूप में परिणत करना इस गति को और गति विधा में चलकर तरंग का नाम लेते हैं। ऐसी तरंग वस्तु है या अवस्तु है इस तथ्य को उद्घाटित करने के लिये अभी भी प्रयोग करते जा रहे हैं। जो प्रयोग परिणीतियाँ आती है उसे अंतिम सत्य नहीं मानते हुए प्रयोगों के लिए मार्ग प्रशस्त किये रहते हैं। इस विधा में अनिश्चयता बनी ही है - वस्तु है या अवस्तु है।

इसी अनिश्चयता के स्थिति पर मानव अपने को समझा हूँ, नहीं समझा हूँ इस बात को लेकर कुंठित हो चुके हैं। इन्हीं सिद्धांतों के शाखा-प्रशाखा होने के कारण और अलग-अलग से समीक्षीत करने की आवश्यकता नहीं है। अतएव विज्ञान संसार में लगे हुए जितने भी मानव हैं वे अपने को समझदार सत्यापित करने में असमर्थ हैं क्योंकि विशेषज्ञता का चक्कर विचार के शुरुआत से काला दीवाल तक चलता है। दूसरी ओर शिक्षा के कला पक्ष के विशेषज्ञ कहलाने वाले, विविध समुदाय में पनपी हुई रुढ़ी-आदतों को शादी-विवाह, नाच-गाना, उत्सवों को मनाने के तरीकों को संस्कृति मानते हुए समाजशास्त्र के नाम से पढ़ाया करते हैं। वे विशेषज्ञ जिसको पढ़ाते हैं उसमें विश्वास नहीं रखते हैं। उससे भिन्न रुढ़ी, भिन्न आदतों के साथ भिन्न मानसिकता को बनाए रखते हुए दिखते हैं। अंतिम बात वर्तमान समाज एक संघर्षशील मानव समुदाय है। संघर्ष का आधार व्यक्ति-व्यक्ति में मानसिक मतभेद रूढ़ी-रूढ़ी के बीच आलोचना, नशा-पानी, नाच-गाने में विविधता, प्रतिस्पर्धा के रूप में होना देखा गया है। इसी प्रकार खेल-कूद, भाषण-प्रतियोगिताएँ-प्रतिस्पर्धा के आधार पर पहचानने की परंपरा अभी तक है। प्रतिस्पर्धाएँ विरोध, द्वेष जैसी संकटों को झेलता हुआ घटना होना देखा गया है। धर्म और राज्य में संघर्ष है ही और यह भी कलात्मक शिक्षा प्रणाली पद्धति में गण्य है। इसका समीक्षा यही है विज्ञान विधा से यंत्र प्रमाण के आधार पर अनिश्चियता-अस्थिरता का काला दीवाल और कलात्मक शिक्षा विधा से विरोध, विद्रोह-द्वेष जैसी अवांछनीय काला दीवालें अथवा स्वीकृतियाँ मानव परंपरा को भ्रमित करने का आधार सूत्र के रूप में बनी। सारे लोग प्रयत्न करते हुए भी सही मार्ग प्रशस्त नहीं हुआ। अतएव अनुभवमूलक व्यवहार प्रमाण प्रस्ताव का अनिवार्यता बना ही रहा। इसलिये अभी प्रस्तावित होकर मानव स्वीकृत होना संभव हो गया।

यह प्रस्ताव मूलत: समानता के आधार पर प्रस्तुत है। समानता, निश्चयता और स्थिरता का प्रमाण है।

स्थिरता और निश्चयता का स्वरूपों को अध्ययन करने के लिये (1) अस्तित्व (2) परमाणु में विकास (3) परमाणु ही व्यवस्था का आधार (4) सहअस्तित्व में व्यवस्था (5) व्यवस्था सूत्र ("त्व" सहित व्यवस्था) (6) पूरकता-उदात्तीकरण, रचना-विरचना (7) पूरकता-उदात्तीकरण और संक्रमण (8) परमाणु ही

गठनपूर्णतापूर्वक जीवन पद (चैतन्य पद) में वैभवित होना (9) जीवन में जीवनी क्रम (10) बंधन सहित जीवन का कार्यक्रम और जागृतिक्रम (11) जीवन ही जागृति पूर्वक क्रियापूर्णता में संक्रमण (12) जीवन ही जागृतिपूर्णता पूर्वक आचरणपूर्णता में संक्रमण, प्रधान बिन्दु है।

इसमें से कोई भी बिन्दु यंत्र प्रमाण से प्रमाणित नहीं हो पाती जबकि हर मानव इसको समझ सकता है और व्यवहार में प्रमाणित कर सकता है। आदर्शवाद, जिसका आधार आप्त पुरुषों के वचन हैं, के आधार पर भी ये बारह बिन्दुओं में से कोई भी बिन्दु अध्ययन, बोध और प्रमाणगम्य नहीं हो पाते।

इसलिये अनुभवमूलक जागृतिपूर्ण विधि से सभी दिशा, कोण, परिप्रेक्ष्य, आयामों में व्यवहार प्रमाण मानव कुल में अति आवश्यक है। अनुभव व्यवहार में प्रमाणित होना अपरिहार्य है और हर प्रयोग व्यवहार में सार्थक होना उतना ही अनिवार्य है। इस प्रकार अनुभवमूलक जागृति विधि पूर्ण प्रमाण सूत्रों पर आधारित विचारों और विचार सूत्रों पर आधारित संप्रेषणा और वाङ्मय शैलियों से इंगित 'वस्तु' के रूप में अर्थों-प्रयोजनों के सार्थकता के रूप में व्यवहार, उत्पादन, व्यवहार-न्याय, व्यवहार और न्यायिक विनिमय, व्यवहारिक स्वास्थ्य-संयम और व्यवहारिक शिक्षा-संस्कार परंपरा की आवश्यकता है। और उसकी आपूर्ति ही स्वाभाविक रूप में अग्रिम पीढ़ियों के सहस्त्राबदियों तक इस धरती पर मानव परंपरा सहज वैभव और उसकी सार्थकता रूपी जागृति और व्यवस्था को प्रमाणित कर सकते हैं। यह हर व्यक्ति के लिये सहज सुलभ हो सकता है। सार्थक रूप में जीने की कला अर्थात् जीने की हर तरीकों का जागृतिसूत्र के अनुरूप मूल्यांकित होना संभव है। हर मानव में जागृति और मानवत्व प्रमाणित होने का अनुमान विद्यमान है ही।

मानवत्व के रूप में प्रमाणित होने के लिये मानवीयतापूर्ण स्वभाव यथा धीरता, वीरता, उदारता, दया, कृपा, करुणा सहज विधि से पुत्रेषणा, वित्तेषणा और लोकेषणा और जागृतिपूर्वक प्रमाणित होने में प्रवृत्ति सहित न्याय, धर्म, सत्य को प्रामाणिकता के रूप में प्रस्तुत करना/होना ही, मानवीयतापूर्ण मानव का स्वरूप है। **दूसरे विधि** से स्वायत्त मानव, परिवार मानव और अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी निर्वाह करता हुआ स्थिति में, गति में, मानवीयता का वैभव अखण्ड, सार्वभौम, अक्षुण्ण प्रतिष्ठा के रूप में देखने को मिलता है। **तीसरे विधि** में मानवीयतापूर्ण मानव मानव का परिभाषा सहज सार्थकता को प्रमाणित करने वाला है। यह समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व के रूप में प्रमाणित करना होता है क्योंकि मानव का परिभाषा "मनाकार को साकार करने वाला मनःस्वस्थता का आशावादी और इसे प्रमाणित करने वाला है।" इसीलिये व्यवहार में सामाजिक, फलतः सर्वतोमुखी समाधान, व्यवसाय में स्वावलंबन जिसका प्रमाण परिवार सहज आवश्यकता से अधिक उत्पादन से समृद्धि होना पाया जाता है। इस प्रकार हर परिवार

समाधान, समृद्धिपूर्वक प्रमाणित होना मानवत्व का प्रमाण है। इसी विधि से हर परिवार का जीना ही इसका लोकव्यापीकरण है। यही अखण्ड समाज और सार्वभौम व्यवस्था है।

'मानवत्व' सर्वमानव में, सर्वदेश में, सर्वकाल में वांछित प्रज्ञा, विचार, प्रबोधन, संबोधन, आचरण, व्यवहार, व्यवस्था में भागीदारी है।

प्रज्ञा का सार्थक स्वरूप 'जीवन ज्ञान', 'अस्तित्व दर्शन ज्ञान' का संयुक्त रूप है। जीवन सहज ज्ञान सहअस्तित्व सहज अस्तित्व में ही होना पाया गया है क्योंकि व्यापक सत्ता में संपृक्त अनंत प्रकृति सहअस्तित्व के रूप में नित्य वर्तमान है। सत्ता स्वयं व्यापक, पारदर्शी, पारगामी, स्थिति पूर्ण होने के कारण इनमें गति दबाव न होते हुए नित्य वैभव होना दिखाई पड़ता है। हर दो इकाई के मध्य में, परस्परता में, सभी ओर में सत्ता दिखाई पड़ता है। वस्तु विहीन हर स्थली सत्तामय स्वरूप ही है। इसी नित्य साक्ष्य के आधार पर हर वस्तु सत्ता में ही होना सुस्पष्ट है। सत्ता में होने के आधार पर हर वस्तु सत्ता में डूबा, भीगा, घिरा दिखाई पड़ता है। ऐसे दिखने वाली वस्तु में स्वयं-स्फूर्त विधि से क्रियाशीलता वर्तमान है यह क्रियाशीलता गति, दबाव, प्रभाव के रूप में देखने को मिलता है। दूसरे विधि से सत्ता में संपृक्त प्रकृति ही स्थिति-गति, परस्परता में दबाव, तरंगपूर्वक आदान-प्रदान सहज विधि से पूरकता, उदात्तीकरण, रचना-विरचना के रूप में होना देखने को मिलता है। और परमाणु में विकास, परमाणु में गठनपूर्णता, चैतन्य पद में संक्रमण जीवन पद प्रतिष्ठा का होना देखा गया है। इस प्रकार जीवन पद और जीवन व रासायनिक-भौतिक पदों के लिये परमाणु ही मूल तत्व होना समझ में आता है।

सत्ता में संपृक्त जड़-चैतन्य प्रकृति में व्यवस्था के मूल तत्व के रूप में परमाणु को देखा जाता है। जबकि अस्तित्व ही सम्पूर्ण अभिव्यक्ति या प्रकटन है। यहाँ मूलतः यह तथ्य ध्यान में रहना आवश्यक है कि सत्ता में संपृक्त प्रकृति अविभाज्य है। यह अविभाज्यता निरंतर है। इसीलिये सत्ता में संपृक्त प्रकृति नित्य वर्तमान ही है। अस्तित्व स्वयं भाग-विभाग नहीं होता है इसीलिये अस्तित्व अखण्ड अक्षत होना समझ में आता है। प्रमुख अनुभव यही है कि सत्ता में संपृक्त प्रकृति अनन्त रूप में दिखाई पड़ती है ये सब भाग-विभाग के रूप में ही सत्ता में दिखाई पड़ती हैं। इसे सटीक इस प्रकार देखा गया है व्यवस्था का भाग-विभाग होता नहीं। अस्तित्व ही व्यवस्था का स्वरूप है।

आदिकाल से अभी तक के अथक प्रयास से भाग-विभाग को लेकर जितने भी अनुसंधान, प्रयोग और अनुमान किये हैं उन सब का समीक्षा इतना ही है कि किसी एक वस्तु को विखण्डन पूर्वक तिरोभाव किया नहीं जा सकता। यह गणित विधि से भी सुस्पष्ट है। गणितीय विधि से ही विखण्डन अनेक होने की क्रिया है।

मूलभाव बनाम अस्तित्व नित्य वर्तमान ही है। अस्तित्व स्वयं में व्यवस्था सहज स्वरूप में होने के कारण और व्यवस्था ही नित्य भाव होना स्पष्ट है, शाश्वत् है। यही प्रधान-मुद्दा है। इसे हर मानव समझना चाहता है और हम समझा सकते हैं। अस्तित्व ही वर्तमान सहज होने के कारण जीवन सहज रूप में हर मानव अस्तित्व को स्वीकारा ही रहता है बनाम व्यवस्था को स्वीकारा ही रहता है। इस संक्षेप विधि से ही अस्तित्व सहज स्वीकृति सर्वेक्षित होता है और सत्यापनवादी सर्वेक्षण विधि से हर मानव व्यवस्था को वरना पाया गया है। साथ ही इस दशक में शरीर यात्रा करता हुआ मानव को यह पूछने पर कि आप क्या व्यवस्था को जानते है ? उत्तर नकारात्मक मिलता है। अन्ततोगत्वा अनिश्चियता और अस्थिरता का जनमानस में समावेश होते ही आया है। अस्थिरता, अनिश्चिततावश ही मानव आतुर-कातुर होना, सुविधा संग्रह के लिये और पीड़ित होना भी देखा गया है।

अनुभव जीवन में होता है या शरीर में होता है यही मुख्य बिन्दु है - यह तथ्य विदित हो चुका है - जीवन ही शरीर को जीवन्त बनाए रखता है। जीवन्त शरीर ही जीवन से संचालित होता है। इसी तथ्य-पुष्टि के क्रम में शरीर अपने-आप में कैसा है ? कैसे रचित और विरचित होता है इसे मानव आदिकाल से देखते आ रहा है। मुख्य मुद्दा - परमाणु में विकास, पूरकता, गठनपूर्णता, संक्रमण इन तथ्यों को भले प्रकार से समझ चुके हैं। अतएव इसे समझना हर व्यक्ति के लिये आवश्यक है। चैतन्य प्रकृति, जड़ प्रकृति यह प्रकृति समुच्चय है। जड़ प्रकृति रासायनिक-भौतिक वस्तु व द्रव्यों से संरचित रहते हैं। यह रचना-विरचना का स्रोत यह धरती ही है। स्वयं धरती भी एक रचना है। इस धरती पर जब तक विकास दिखती रहती है तब तक इसके स्वस्थता में कोई शंका नहीं है। विकास और उसकी निरंतरता की व्यवस्था अस्तित्व सहज रूप में विद्यमान है। पदार्थावस्था और प्राणावस्था की सम्पूर्ण रचना-विरचनाएँ परिणाम और बीज के आधार पर परंपरा के रूप में तत्पर रहना देखा जाता है। इसी आधार पर हर मानव अस्तित्व में अनुभूत होने की सूत्र जुड़ी हुई हैं।

मानव शरीर द्वारा जीवन सहज पूर्ण जागृति प्रमाणित होने की व्यवस्था, आवश्यकता अस्तित्व सहज रूप में ही निहित है क्योंकि अस्तित्व स्थिर है, विकास एवम् जागृति निश्चित है। जागृति को प्रमाणित करना जीवनापेक्षा है। जागृति सुख, शांति, संतोष, आनन्द है। इसे भले प्रकार से देखा गया है। इसकी जीवन सहज निरंतरता होती है क्योंकि जीवन नित्य है। जीवन सहज जागृति अक्षुण्ण होना भावी है। ऐसी जागृति और जागृति की अक्षुण्णता की प्यास हर व्यक्ति में निहित है। अतएव जीवन जागृति प्रणाली को परंपरा में अपनाना एक अनिवार्यता हैं।

जीवन अपने में अनुभव, बोध, चिन्तन (साक्षात्कार) सहित ही किया गया चित्रण, विश्लेषण, तुलन, चयन और आस्वादन स्वाभाविक रूप में न्यायिक समाधानपूर्ण और प्रामाणिकता सहज अभिव्यक्ति, संप्रेषणा, प्रकाशन सहज कार्य-व्यवहार होना देखा गया है। यही "अनुभवात्मक अध्यात्मवाद" की आवश्यकता, उपयोगिता, सदुपयोगिता और प्रयोजनीयता को पहचानने और व्यक्त होने का आधार हुआ।

मूलत: इस अनुसंधान के मूल में रूढ़ियों के प्रति अविश्वास, कट्टरपंथ के प्रति अविश्वास रहा है। सार रूप में, वेदान्त रूप में "मोक्ष और बंधन" पर जो कुछ भी वाङ्गमय उपलब्ध है इस पर हुई शंका। परिणामत: निदिध्यासन, समाधि, मनोनिरोध, दृष्टाविधि के लिये जो कुछ भी उपदेश है उसी के आधार पर प्रयत्न और अभ्यास किया गया। निर्विचार स्थिति को प्राप्त करने के बाद परंपरा जिसको समाधि, निदिध्यासन, पूर्णबोध निर्वाण जो कुछ भी नाम लिया है, इसी स्थली में मूल शंका का उत्तर नहीं मिल पाया। परिणामत: इसके विकल्प के लिये तत्पर हुए। पूर्ववर्ती इशारों के अनुसार 'संयम' का एक ध्वनि थी। उस ध्वनि को संयम में तत्परता को बनाया गया। आकाश (शून्य) में संयम किया। निर्विचार स्थिति में अस्तित्व स्वीकार/बोध सहित सभी ओर वस्तु सब आकाश में समायी हुई वस्तु दिखती रही इसलिये आकाश में संयम करने की तत्परता बनी। कुछ समय के उपरान्त ही अस्तित्व सहअस्तित्व रूप में यथावत् देखने को मिला। अस्तित्व में ही 'जीवन' को देखा गया। अस्तित्व में अनुभूत होकर जागृत हुए। ऐसे अनुभव के पश्चात् अस्तित्व सहज विधि से ही हर व्यक्ति अनुभव योग्य होना देखा गया। अनुभव करने वाले वस्तु को 'जीवन' रूप में देखा गया। इसी आधार पर "अनुभवात्मक अध्यात्मवाद" को प्रस्तुत करने में सत्य सहज प्रवृत्ति उद्गमित हुई। यह मानव सम्मुख प्रस्तुत है।

इसमें और एक भाग पर मेधावियों का जिज्ञासा हो सकता है आप पूर्ववर्ती पद्धतियों के आधार पर अभ्यास-विधि से पार पा गये, सबके लिये उन सभी विधियों को ओझिल क्यों कर रहे है ? उन अभ्यास विधाओं के प्रति प्रस्ताव क्यों प्रस्तुत नहीं कर रहे है ? उत्तर में अनुभव विधि से यही व्यवहार गम्य है। जागृति विधि से जागृत परंपरा, जागृत परंपरा विधि से मानवीय शिक्षा, मानवीय व्यवस्था में प्रमाणित होना इसके लिये आवश्यकीय व्यवहार कार्यों में पारंगत होना ही जागृत परंपरा होने का वैभव को देखा गया, समझा गया, प्रमाण के रूप में जीकर देखा गया। यह सटीक सिद्ध हुआ या इसकी सटीकता सिद्ध हुई अर्थात् अनुभव परंपरा की सटीकता सिद्ध हुई। आवश्यकता सुदूर विगत से ही होना रहा। अतएव जिस अभ्यास साधना परंपरा में चलकर समाधि स्थली में पहुँचने के उपरान्त भी स्वान्त: सुख में पहुँचने के उपरान्त भी सर्वशुभता का मार्ग प्रशस्त नहीं हुआ, समाधि के लिये अथवा निर्विकार स्थिति के लिये बोधपूर्ण होने के लिये, सत्य साक्षात्कार होने के लिये, आत्मसाक्षात्कार होने के लिये, देवसाक्षात्कार होने के लिये, संयोग से जागृत होने

के लिये (जागृत व्यक्ति को छूने से) भी परंपरा अपने-अपने ढंग से चल रहे हैं उन सभी में प्रकारान्तर से समाधि का ही लक्ष्य बताया गया है। उन सभी परंपरा के प्रति मेरा कृतज्ञता को अर्पित करते हुए, (क्योंकि उससे मुझे सहायता मिला है) सर्वशुभ मानव परंपरा में स्थापित होने का ज्ञान, दर्शन, आचरण, व्यवस्था, शिक्षा प्रवाह को स्थापित करना आवश्यक समझा गया है। इसका कारण मध्यस्थ दर्शन (सहअस्तित्ववाद) के अंगभूत "अनुभवात्मक अध्यात्मवाद" को प्रस्तुत करना एक आवश्यकता सदा-सदा से रही है। यह अवसर हमें प्राप्त होने का श्रेय, अथक प्रयास किया हुआ मानव परंपरा का ही देन है। **इसलिये विगत को धन्यवाद, वर्तमान में प्रस्ताव एवं भविष्य के लिये सर्वशुभ योजना प्रस्तुत है।**

यहाँ यह भी स्मरणार्थ प्रस्तुत कर रहे है कि 'समाधि' के उपरान्त भी सर्व शुभवादी कार्यक्रमों, उसके मूल में विचार शैली, उसके मूल में दर्शन, इन सबके धारक वाहक का ज्ञान को उद्घाटित करना संभव नहीं हो पाता है। समाधि और समाधि पर्यन्त मौन विधि साधना और सर्वाधिक मौन अवस्था को ही देखा गया है। क्योंकि निर्विचार स्थिति में शरीर, देश और काल का भास नहीं रहता है। इसमें अवश्य ही स्वान्त:सुख का आश्वासन पूरा होता है। उस स्थिति में यदि बोलना बनता है अर्थात् 10 घंटा, 15 घंटा, 20 घंटा समाधि के उपरान्त शरीर, देश, काल का बोध होने की स्थिति में बोलने पर यही लगता है जो कुछ भी रहस्यवादी वाङ्मय लिखा गया है उसी को दोहराया जा सकता है और सर्व शुभ का कामना ही बन पाती है। समाधि के लिये एक व्यक्ति जितना साधना-अभ्यास किया उतना सभी को करने की बात होती है। इसी के साथ यह भी देखा गया है समाधि हर व्यक्ति को एक ही शरीर-यात्रा में सफल हो पायेगा या नहीं इसे निश्चय करना सम्भव नहीं है। इस अनिश्चयता का मूल कारण इस प्रकार पहचाना गया है कि जीवन एक अनूस्युत क्रिया है। आशा, विचार, इच्छा, ऋतम्भरा, प्रमाण जैसी शक्तियाँ अनुभव पश्चात् सदा-सदा शरीर के माध्यम से अपने को प्रकाशित करता हुआ देखा गया है। मौन विधि साधना पूर्णतया जीवन विरोधी प्रणाली है। प्रकृति में जीवन क्रियाकलाप कभी समाप्त नहीं होती। जीवन नित्य है, शरीर जीवन प्रकाशन के लिये एक घटना के रूप में समीचीन रहता है। शरीर रचना के बारे में वंशानुक्रमीय विधि से गर्भाशय में रचित होना देखा गया। इसलिये शरीर में आकार-प्रकार-रंग-रूप में विभिन्नता होना देखा गया है। जीवन रचना में परमाणु में गठनपूर्णता समान होना देखा गया है।

जीवन रचना समानता का तात्पर्य जीवन क्रियाकलाप के लिये जितने भी अंशों का परमाणु गठन में समाना आवश्यक रहता है वह सब इसमें समाये रहने के फलस्वरूप जीवन रचना में समानता को विधिवत् देखा गया है, समझा गया है। जीवन में होने वाली सामान्य क्रियाएँ शक्ति और बल के रूप में अध्ययन से बोध और निश्चयन होती है। हरेक व्यक्ति अपने "स्व" जीवन क्रियाकलाप को अध्ययनपूर्वक बोध सम्पन्न हो

जाते हैं उसी क्षण में यह निश्चयन होती है कि जीवन क्रियाएँ सभी जीवन में समान होना पाया जाता है। जीवन शक्ति और बल भी अपने में अक्षय होना जीवन क्रिया और उसकी अक्षुण्णता समझ में आते ही उसकी अक्षुण्णता का बोध होता है। अवधारणा सुदृढ़ हो जाती है। इसी तथ्य वश जीवन शक्तियों और बलों की अक्षयता इनको कितने भी उपयोग, सदुपयोग, प्रयोजनशीलता विधि से नियोजित करने के उपरांत भी जीवन शक्ति और बल यथावत रहना स्वयं में, से के लिए अनुभूत होता है। अनुभूत होना ही जागृत होना है। जीवन ज्ञान सहित ही अस्तित्व में अनुभूत होना स्वाभाविक होता है। फलस्वरूप जीवन सहज जागृति मानव सहज जीवन लक्ष्य समान होना विदित होता है। इस प्रकार जीवन लक्ष्य, जीवन शक्तियाँ, जीवन बल, जीवन सहज क्रियाकलाप और जीवन रचना प्रत्येक जीवन में समान होना अनुभव होता है। फलस्वरूप सहअस्तित्व में विश्वास होना, अनुभव होना स्वाभाविक है। फलस्वरूप सर्वशुभ में, से, के लिए जीना स्वाभाविक प्रक्रिया बनती है। यही सार्वभौम व्यवस्था और अखण्ड समाज का मूल सूत्र होना पाया जाता है न कि शरीर रचना की विविधता।

जागृत जीवन विधि से ही मानव परंपरा में अनुभव प्रमाण और प्रयोग प्रमाण व्यवहार में सार्थक विधि से प्रमाणित होता है। यही अनुभवमूलक जागृति सहज जीने की कला, उसकी महिमा है।

अस्तित्व में दो ध्रुव पहले स्पष्ट किये जा चुके हैं - अस्तित्व स्थिर, विकास और जागृति निश्चित। इन्हीं दो ध्रुवों के मध्य में मानव संचेतना और व्यवहार देखने को मिला है क्योंकि अस्तित्व में ही मानव परंपरा अविभाज्य वर्तमान है। अतएव मानव अपने जीवन सहज जागृतिपूर्वक समाधानित और समृद्धि सम्पन्न होना पाया जाता है।

अस्तित्व में अनुभव ही जागृति का परम प्रमाण है। यह व्यवहार में ही सार्थक एवं परंपरा सहज प्रयोजन सार्थक होना पाया जाता है। परंपरा सहज जागृति सर्वशुभ का सूत्र और स्त्रोत होना देखा गया है।

परंपरा अपने में पीढ़ी से पीढ़ी के लिए सूत्र है ही-भले ही समुदाय विधि से हो या अखण्ड समाज विधि से हो। अखण्ड समाज विधि जागृति का द्योतक है एवं समुदाय विधि भ्रम का द्योतक है यह स्पष्ट है। समुदाय विधि से मानव स्वायत्त होना नहीं हो पाता है पराधीनता बना ही रहता है। अखण्ड समाज विधि से ही मानव में स्वायत्तता परंपरा शिक्षा-संस्कार विधि से संपन्न होता है। इसका प्रमाण अर्थात् स्वायत्तता का प्रमाण परिवार में होना देखा गया। परिवार मानव में सहअस्तित्व सूत्र से स्वायत्तता का प्रमाण सिद्ध हो जाता है। यह प्रचलित होने के लिये परंपरा की आवश्यकता है। दूसरे भाषा से सर्वसुलभ होने के लिए अथवा लोकव्यापीकरण होने के लिए परंपरा की आवश्यकता है।

परंपराएँ अस्तित्व सहज है। अस्तित्व स्वयं सहअस्तित्व होना ही परंपरा होने का नित्य सूत्र है। सहअस्तित्व स्वयं नित्य विकास और परंपरा है। इस प्रकार देखा गया है कि परमाणुओं में अपने प्रजाति की परंपरा है। परमाणु में परमाणु अंशों की संख्या रचना विधि सहजता सहित प्रकाशमान है। अनेक परमाणु का सहअस्तित्व में अणु रचना, उसमें निहित परमाणु संख्या और परमाणुओं में अंशों के संख्या में दूसरे प्रजाति सहित अणु प्रजातियाँ परंपरा के रूप में होना स्पष्ट है। अणुरचित रचनाओं में अनेक अणु प्रजाति और अणुओं का अनुपात के आधार पर ही रासायनिक-भौतिक रचनाएँ सम्पन्न होते हुए देखने को मिलता है। इसी क्रम में पदार्थावस्था प्राणावस्था जड़ प्रकृति के रूप में, जीवावस्था और ज्ञानावस्था चैतन्य प्रकृति के रूप में सहअस्तित्व सहज विधि से प्रकाशित है। चैतन्य प्रकृति में जीवन और शरीर का सहअस्तित्व होना देखा जाता है। जीवन अपने में गठनपूर्णता पद में संक्रमित चैतन्य इकाई है। यही चैतन्य प्रकृति है। जीवन सहित शरीर परंपरा ही दूसरे भाषा में जीवन से जीवंत शरीर परंपरा ही जड़-चैतन्य प्रकृति के संयुक्त रूप में गण्य होना पाया जाता है। अस्तित्व में सहअस्तित्व नित्य प्रभावी होने के कारण जड़-चैतन्य प्रकृति का सहअस्तित्व होना सहज है। जीवन सहज वांछा (आशा, विचार, इच्छा के रूप में देखने को मिलता है) जीने की आशा, जीवन में ऐश्वर्य होने के कारण अपना महिमा होने के कारण सहअस्तित्व में ही जीने का प्रमाण प्रस्तुत करना ही चैतन्य प्रकृति का कार्यकलाप होना देखा गया है।

सहअस्तित्व में अनुभव ही परम सत्य प्रकाशन है और अस्तित्व ही सहअस्तित्व है। फलस्वरूप परस्परता पहचान, निर्वाह सहज विधि है। इसी क्रम में चैतन्य प्रकृति भी अस्तित्व सहज है। परमाणु रचना कार्य और परिणाम भी सहअस्तित्व सहज है। क्योंकि हर परमाणु में एक से अधिक परमाणु अंशों का होना पाया जाता है। यह परमाणु अंश ही स्वयं-स्फूर्त विधि से परमाणु गठन और निश्चित कार्य को प्रकाशित करते हैं। एक-दूसरे के साथ परमाणु अंश भी निश्चित कार्य करने के लिये तत्पर रहते हैं। मानव का हस्तक्षेप विहीन स्थिति में इनमें कोई बाधाएँ होती नहीं है। परमाणु में अंशों का आदान-प्रदान क्रिया जो सम्पन्न होता है वह भी सहअस्तित्व विधि सूत्र के अनुसार है। सहअस्तित्व ही स्वयं-स्फूर्त प्रकटन व्यवस्था होना उक्त प्रकार से सम्पूर्ण प्रकृति का मूलरूप साम्य ऊर्जा सम्पन्न परमाणु के रूप में व्यवस्था और व्यवस्था का स्रोत दिखाई पड़ता है। ऐसे स्वयं-स्फूर्त परमाणु अंश व्यवस्था के रूप में व्यक्त होने में तत्परता सहित हर परमाणु रचना-गठन-क्रिया सम्पादित होते हुए देखने को मिलता है। इसी क्रिया के आधार पर श्रम, गति, परिणाम प्रकाशित है। अतएव इन्हीं की तृप्ति क्रम में तृप्ति के अर्थ में विकासक्रम, विकास और जागृति प्रकाशित है और अभिव्यक्त है।

अस्तित्व में जागृति निश्चित होने के प्रमाण में ज्ञानावस्था की अभिव्यक्ति है। ज्ञानावस्था में मानव ही गण्य है। मानव परंपरा संज्ञानशीलता और संवेदनशीलता के संयुक्त रूप में तृप्त होना पाया जाता है। ज्ञान का मूल स्वरूप जीवन ज्ञान और अस्तित्व सहज सहअस्तित्व रूपी व्यवस्था का ज्ञान है। जीवन ज्ञान मानव स्वयं अपने जीवन सहज क्रियाकलापों के आधार पर विश्वास करना बन पाता है। यह मूलत: अनुभव सहज क्रिया है। इसको जानना-मानना एक आवश्यकता है ही। जीवन को जानने-मानने के क्रम में शरीर रचना और शरीर सीमाओं के संदर्भ में भले प्रकार से पारंगत होना एक आवश्यकता है। जीवन और शरीर के संयुक्त रूप में ही ज्ञानावस्था प्रकाशमान होने के आधार पर ही मानव सहज विधि से ही (1) अपना ही कल्पनाशीलता, कर्मस्वतंत्रता शरीर से भिन्न तरंग के रूप में अनुभव करना बनता है। (2) आशा, विचार, इच्छाएँ जीवन सहज क्रिया होने के रूप में स्वयं से, स्वयं के लिये परीक्षण-निरीक्षण कर सकता है। (3) आस्वादन, तुलन, चिन्तन, बोध क्रम में अध्ययन विधि से जो अनुभूतियाँ प्रतीत होते हैं या भास-आभास होते हैं इसका परीक्षण स्वयं ही हर मानव, हर काल में, हर देश में किया जाना समीचीन है। इन क्रियाकलापों के निरीक्षण से पता लगता है कि जीवन्त मानव में आस्वादन का अनुभव भास; न्याय, धर्म, सत्यरूपी नित्य वस्तु का भास होना, हर व्यक्ति अपने से निश्चय कर सकता है। चिन्तन में ही न्याय, धर्म, सत्य का आभास होना और प्रतीति होना प्रमाणित होता है।

साक्षात्कार अपने में प्रयोजनों का निश्चयन सहित तृप्ति के लिये स्रोत रूप में अध्ययन विधि से पहचान लेता है। फलस्वरूप बोधपूर्वक अनुभव में सार्थकता सहित न्याय, धर्म, सत्य सहज स्वीकृति ही संस्कार और अनुभव बोध रूप में जीवन में अविभाज्य क्रिया रूपी बुद्धि में स्थापित हो जाता है। यही अध्ययन पूर्वक होने वाली अद्भुत उपलब्धि है। न्याय सहज साक्षात्कार सहअस्तित्व सहज संबंधों का साक्षात्कार सहित मूल्यों का साक्षात्कार होना पाया जाता है। यही मुख्य बिन्दु है। सहअस्तित्व सहज संबंधों को पहचानने में भ्रम रह जाता है यही बन्धन का प्रमाण है। यही जीवन को शरीर समझने का घटना है।

बन्धन को जीवन क्रियाकलाप में जाँचा जाना एक आवश्यकता है। बन्धन का स्रोत भ्रमित जीवन क्रिया से ही समीचीन रहता है। यह प्रिय, हित, लाभ दृष्टियों के रूप में आहारादि विषय-प्रवृत्तियों व दीनता, हीनता, क्रूरतावादी मानसिकता सहित प्रकाशित होती है। ऐसे क्रियाकलाप पर्यन्त जीवन भ्रमित रहना स्पष्ट होता है। जीवन अपने को भ्रमित स्वीकारना बनता नहीं, निर्भ्रम होने की चाहत जीवन में बना ही रहता है। यही भ्रम-मुक्ति का सूत्र बनता है। अतएव भ्रमवादी जितने भी क्रियाकलापों को फैलाए रहते हैं उसकी निरर्थकता का आंकलन होता है, सार्थकता के लिये प्रयासोदय होता है। यही जागृति क्रम में होने वाली सहअस्तित्व सहज वैभवशाली कार्य है।

मानव चैतन्य प्रकृति के ज्ञानावस्था सहज अस्तित्व और परंपरा है। ज्ञानावस्था स्वयं इसी बात को ध्वनित करता है। जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान, मानवीयता पूर्ण आचरण ज्ञान सम्पन्नता ही ज्ञानावस्था की ध्वनि का अर्थ है और सार्थकता है। यह भी देखने को मिलता है कि हर मानव निर्भ्रम और जागृत होना चाहता है। एकता-अखण्डता जागृति सहज अभिव्यक्ति है। भ्रमवश ही विखण्डता, अनेकता में विवश होना देखने को मिला है। न्याय, धर्म, सत्यरूपी परम ज्ञान, दर्शन, आचरण, व्यवस्था में एकरूपता को पाते हैं। इसी को अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था का नाम दिया है। **एकता सार्वभौम व्यवस्था सहज विधि से होता है। अखण्डता नियम और न्याय विधि से सम्पन्न होता है।** समाज और व्यवस्था अविभाज्य होना स्पष्ट हो चुकी हैं। अस्तित्व में सहअस्तित्व विधि से ही मानव जागृत परंपरा के रूप में वैभवशील हो सकता है। जागृत मानव परंपरा में सम्पूर्ण वैभव का नित्य प्रमाण समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व सहज प्रमाण वर्तमान परंपरा ही है। यही जागृति सहज परंपरा का फलन है।

परस्पर पहचानना-निर्वाह करना शाश्वत् नियम है। उपयोगिता सहित पूरक होना शाश्वत् नियम है। पूरकता का तात्पर्य विकास और जागृति में प्रमाण सहित प्रेरक पूरक होने से है। विकास और जागृति में स्व शक्तियों का अर्पण समर्पण है। जड़ प्रकृति में पूरकता किसी एक के अंश को स्वयं-स्फूर्त विधि से विस्थापित कर देने के रूप में ही है। मानव में समाधानपूर्वक समृद्ध होने की विधियों को देखा जाता है। यही पुन: जड़ प्रकृति में रचना-विरचना में भी देखने को मिलता है कि रचनाविधि में पूरकता, विरचनाएं पुनःरचना के लिये पूरकता के रूप में प्रस्तुत होना देखा जाता है। इस प्रकार पूरकता जड़ प्रकृति में भी देखने को मिलता है। परस्पर पूरक है इस तथ्य का साक्ष्य पदार्थावस्था से प्राणावस्था, प्राणावस्था से जीवावस्था और जीवावस्था से ज्ञानावस्था विकसित स्थिति में वर्तमान रहना ही है। सभी जीव संसार जीने की आशा से ही वंशानुषंगीय कार्य में तत्पर रहना पाया जाता है। ज्ञानावस्था के मानव उसी का अनुकरण-अनुसरण करने के जितने भी कार्यकलापों को अपनाया स्वपीड़ा-परपीड़ा, स्वशोषण-परशोषण, स्वयं के साथ वंचना और अन्य के साथ प्रवंचना और इन सबका सारभूत बात स्वयं के साथ समस्या और उसकी पीड़ा से पीड़ित रहना, अन्य को पीड़ित करना रहा। यही भ्रमित मानव परंपरा रूपी समुदायों में देखने को मिला। यही शिक्षा, संस्कार, संविधान और व्यवस्था इस दशक तक मानी जा रही है। ये सब समस्याकारी है। समस्या स्वयं पीड़ा के रूप में प्रभावित होना देखा गया। इसका निराकरण जागृति, उसका प्रमाण रूप में समाधान ही है।

अनुभव, व्यवहार और प्रयोग इन तीनों प्रकार से मानव सहज विधि से प्रमाणों की आवश्यकता, सदा-सदा ही बनी रहती है। यही निरन्तर मानव कुल में अपेक्षा, प्रयास और प्रमाणों के स्थितियों में देखने में आता है। आदि काल से समाधान की अपेक्षा रही है। इस शताब्दी के उत्तरार्ध के तीन दशक में मानव में

समाधान सहज अपेक्षा बलवती हुई। यह मानवाधिकार रूपी आवाज से आरंभ हुआ। यही अपेक्षा से पीड़ा तक पहुँचने का साक्ष्य देखने को मिला। मानवाधिकार, अपने विचार के अनुसार हर व्यक्ति को सामान्य सुविधा पहुँचना चाहिये, विपदाओं में सहायता और रक्षा होना चाहिये जैसे - भूकम्प, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, अकाल से पीड़ित लोगों को राहत पहुँचाना चाहिये। दण्ड के रूप में बहुत सारे दण्ड प्रणालियों को बंद करना चाहिये। दण्ड विधि में सुधार होना चाहिये। युद्ध मानसिकता को बदलना चाहिये। ये सब आवाज के रूप में होना देखा जाता है। कार्यरूप में बीसवीं शताब्दी के दसवें दशक तक आवश्यकता के अनुसार रोगग्रस्त स्थिति में दवाई, विपदाग्रस्त स्थिति में खाना-कपड़ा-सुरक्षित स्थान यही सब प्रधानत: सहायता के अर्थ में सुलभ करने के कार्य को किया जाना देखा गया। यद्यपि सुदूर विगत से हर राजगद्दी विपदाओं में ग्रसित लोगों को राहत देने के हित कोष और कार्यों को बनाए रखते रहे हैं। इनमें नया क्या हुआ पूछा जाय तो - इतना ही अंतर है कि राजदरबार की सभी सहायताएँ राजा के कृपावश होता था। मानवाधिकार संस्था का इस विधा में परिवर्तन स्वयं-स्फूर्त विधि से प्रस्तुत है। इनके कार्यकलापों का मूल्यांकन कर्तव्यों, दायित्वों के रूप में मूल्यांकित किया जाता है। इसलिये इसे मानवाधिकार विचारों का धारक-वाहक मानवों में विपदाग्रसित व्यक्ति पीड़ित होकर ही ऐसे संस्था को संचालित किया गया है, कहा गया है। इसके बावजूद इसमें शुभ का भाग अर्थात् सहायता भाग ही सार्थकता है।

सम्पूर्ण प्रयोगों को उत्पादन कार्य प्रयोग, औषधि कार्य प्रयोग के रूप में सकारात्मक पक्ष में होना पाते हैं। सकारात्मक पक्ष का तात्पर्य है - नित्य समाधान के अर्थ में सूत्रित होने से है। ऐसे नित्य समाधान जागृतिपूर्ण मानव परंपरा में ही लोकव्यापीकरण सर्वशुभ होना स्पष्ट है। जागृति पूर्ण विधि से भ्रमजन्य जितने भी योजना कार्यकलाप है समाधान के अर्थ में परिवर्तित होना पाया जाता है।

उत्पादन वस्तुएँ सामान्याकांक्षा, महत्वाकांक्षा में प्रयोजित होना स्पष्ट किया जा चुका है। इन्हीं विधाओं में हर औषधि और उत्पादन प्रयोग क्रियाएँ व्यवहार में प्रमाणित हो जाती है। व्यवहार में प्रमाणित होने का स्वरूप इन दोनों विधा का उपयोग, सदुपयोग, प्रयोजनशीलता का साक्ष्य ही है।

युद्ध, शोषण और उनका प्रभाव विलय अथवा समाप्त होता है क्योंकि शोषण और युद्ध उन्माद और भ्रमित कार्यकलाप होना सिद्ध हो चुकी है। अनुभव प्रमाण हर व्यक्ति में समान रूप में होने का वैभव ही है समाधान व्यवहार में प्रमाणित हो जाता है। अनुभव का महिमा ही है सर्वतोमुखी समाधान। समाधान का तात्पर्य ही है क्यों, कैसे का उत्तर। ऐसी उत्तर में निष्ठा और उसकी अक्षुण्णता। अतएव व्यवहार में प्रयोग और अनुभव प्रमाणित होने की मर्यादा ही सार्वभौम व्यवस्था-अखण्ड समाज का स्वरूप है।

अध्याय - 4

आत्मा जीवन में अविभाज्य है

'जीवन' का स्वरूप विकासपूर्णता के फलन में चैतन्य पद प्रतिष्ठा सहज एक परमाणु है जो भारबन्धन और अणुबन्धन से मुक्त है। यही 'जीवन' के नाम से सम्बोधित है। भ्रम बन्धन से मुक्त होना मोक्ष है यही जागृति सहज प्रमाण है।

जीवन में मन, वृत्ति, चित्त, बुद्धि और आत्मा अविभाज्य रूप में क्रियाशील है। ये सब निश्चित क्रियाओं के नाम है। 'वस्तु' के रूप में मध्यांश सहित चार परिवेशों के रूप में क्रियाशील इकाई है। इस प्रकार 'जीवन' अपने में चैतन्य पद प्रतिष्ठा सहित मानव परंपरा में समझदारी सहित परावर्तन-प्रत्यावर्तन पूर्वक जीवन सहज क्रियाओं को प्रकाशित करता ही रहता है। यही जागृति है।

व्यवस्था की मूल वस्तु अस्तित्व में केवल परमाणु ही होना पाया गया है। सत्ता में संपृक्त प्रकृति ही जड़-चैतन्य के रूप में वैभवित हैं। इनमें से जड़ प्रकृति भारबन्धन और अणुबन्धन के फलस्वरूप भौतिक-रासायनिक रचनाओं में भागीदारी करता हुआ देखने को मिलता है। यही प्रत्येक जड़ परमाणु अपने में व्यवस्था और रचना सहज समग्र व्यवस्था में भागीदारी का साक्ष्य प्रस्तुत करता है। जबकि चैतन्य इकाईयाँ भारबन्धन और अणुबन्धन से मुक्त, आशा बन्धन से युक्त, 'आशानुरूप कार्य गति पथ' सहित मनोवेग के अनुपात में गतिशील रहना पाया जाता है। 'जीवन' अपने में गठनपूर्णता के उपरान्त अक्षय शक्ति, अक्षय बल सम्पन्न होना देखा गया है। यह 'परिणाम के अमरत्व' प्रतिष्ठा का फलन ही है।

आशा बन्धन से 'जीवनी क्रम' परंपरा को आरंभ किया हुआ जीवन, आशा से विचार, विचार से इच्छा बन्धन तक भ्रमित विधि से मानव कार्यकलापों को प्रस्तुत करता है। इच्छाएँ चित्रण कार्य को, विचार विश्लेषण कार्य को और आशा चयन क्रिया को सम्पादित करता हुआ मानव परंपरा में भय, प्रलोभन और आस्था में जीता रहता है। प्रिय, हित, लाभ संबंधी संग्रह-सुविधा-भोग द्वारा प्रलोभन के अर्थ को; युद्ध, शोषण, द्रोह-विद्रोह-संघर्ष ये सब भय को और भक्ति-विरक्ति पूर्वक आस्था त्याग-वैराग्य को मानव ने प्रकाशित किया है। यह परंपरा सहज विधि से ही होना पाया जाता है। परंपरा में इसी के लिये शिक्षा-संस्कार, उपदेश, शासन-पद्धति, संविधान भी स्थापित रही है। इसी क्रम में सामान्य आकांक्षा और महत्वाकांक्षा संबंधी और सामरिक सामग्रियों के रूप में अनेकानेक चित्रण कार्य सम्पन्न हुआ। ऐसे कुछ यंत्र संचार के लिये मार्ग

और सेतु का चित्रण हुआ। इसी से सम्बन्धित अनेकानेक वस्तु, सामग्री, यंत्रों का चित्रण मानव ने किया है।

जीवनी क्रम जीवों में वंशानुषंगीय स्वीकृति के रूप में देखने को मिलता है। यही आशा बन्धन का कार्यकलाप है। वंशानुषंगीय कार्य में उस-उस वंश का कार्यकलाप निश्चित रहता है। तभी जीवावस्था व्यवस्था के रूप में गण्य हो पाता है। ऐसे जीव शरीर जो वंशानुषंगीय निश्चित आचरण को प्रस्तुत करते हैं उनमें समृद्ध मेधस का होना पाया जाता है। ऐसी वंशानुषंगीय रचना क्रम में मानव शरीर भी स्थापित है। इसकी परंपरा भी देखने को मिलती है। उल्लेखनीय मुद्दा यही है, मानव परंपरा में निश्चित आचरण स्पष्ट नहीं हो पाया। इसका कारण मानव ने तीनों प्रकार के बंधन वश जीवों के सदृश्य जीने का प्रयत्न किया। जबकि मानव अपने मौलिक विधि से ही जीने की प्रेरणा बना रहा। इसी क्रम में आचरणों की विविधता, विचारों की विविधता, इच्छाओं की विविधता, अनेकता का कारण बना। इसलिये केवल **आशा, विचार, इच्छा से मानव में मानवीयता की स्थापना नहीं हो सकी।** अथक प्रयास अवश्य किया गया। 'जीवन' के और आयामों का प्रयुक्ति मानव परंपरा में अवश्यंभावी होने के आधार पर ही अनुभवमूलक विधि का स्थापित होना अनिवार्यतम स्थिति बन चुकी है।

मुख्यतः न्याय, धर्म, सत्य रूपी दृष्टियों की क्रियाशीलता वृत्ति में एवं फलन स्वरूप इनका साक्षात्कार चित्त में, बुद्धि में बोध और अनुभव की स्वीकृति, आत्मा में इनका अनुभव और अनुभव बोध तथा साक्षात्कार की पुष्टि चिंतन में सम्पन्न होना ही अनुभवमूलक जागृतिपूर्ण स्थिति गति होना स्पष्ट है। अतएव जीवन को विधिवत् चेतना विकास मूल्य शिक्षा विधि से मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद का अध्ययन एवं समझ लेना जीवन ज्ञान का तात्पर्य है। जीवन ही दृष्टा पद में होने के कारण अस्तित्व सहज सम्पूर्ण दृश्य का दृष्टा होना सहज है। इस प्रकार अनुभव करने वाली वस्तु जीवन है। अनुभव करने योग्य वस्तु अस्तित्व सहज सहअस्तित्व है। प्रमाणित करने योग्य वस्तु हरेक मानव है। प्रमाणित होने के लिये वस्तु अखण्ड समाज और सार्वभौम व्यवस्था है। **अस्तित्व सहज सहअस्तित्व में अनुभव ही परम सत्य में अनुभव।**

जीवन रचना (चैतन्य पद) + जीवन क्रियाकलापों का निरीक्षण, परीक्षण, सर्वेक्षण = जीवन ज्ञान।

जीवन ज्ञान के संबंध में निर्भ्रम और जागृत होने के पहले बुद्धिजीवी, विद्वान कहलाने वाले व्यक्तियों में यह शंका होना, उनकी अवस्था के अनुसार स्वाभाविक है कि जीवन ही जीवन को कैसे देख पायेगा और इसका प्रमाण क्या होगा ? इसके उत्तर में यह देखा गया है कि जीवन रचना अपने स्वरूप में गठनपूर्ण परमाणु में परमाणु के रूप में चार परिवेशीय और केन्द्रीय अंशों सहित एक निश्चित और सार्थक रचना है। इसमें हर परिवेश और केन्द्रीय अंश सभी क्रियाशील रहते हैं। इस तथ्य के रूप में नाम के लिए मध्यांश (केन्द्रीय

अंश) को 'आत्मा', प्रथम परिवेशीय अंशों को 'बुद्धि', द्वितीय परिवेशीय अंशों को 'चित्त', तृतीय परिवेशीय अंशों को 'वृत्ति' और चतुर्थ परिवेशीय अंशों को 'मन' नाम दिया है। अस्तित्व सहज रूप में ये सब वस्तुएँ जो सदा सदा वास्तविकता को प्रकाशित किया करते हैं। जीवन अस्तित्व सहज वस्तु है। जीवन रचना-सूत्र भी सहअस्तित्व सहज विधि से ही रचित रहना देखा गया है और हर व्यक्ति अध्ययन पूर्वक समझ सकता है। देखने का तात्पर्य समझना ही है।

जागृत मानव में ही (चार परिवेशीय और केन्द्रीय अंश सहज विधि से रचित रचना स्वरूप में) क्रम से मन वृत्ति में, वृत्ति चित्त में, चित्त बुद्धि में, बुद्धि आत्मा में और आत्मा सहअस्तित्व में अनुभूत होना देखा गया है। अनुभूत होना ही समझदारी की परिपूर्णता और उसकी निरंतरता है।

बंधन-भय पर्यन्त मन शरीर के आकार में सम्मोहन विधि से प्रभावित रहता है। ऐसे भ्रमित मन के पक्ष में ही विचार, इच्छा साथ ही तुलन में से प्रिय, हित, लाभ प्रवृत्त हो जाता है। फलत: भ्रम और भय का पुष्टि होकर, हर शरीर यात्रा में प्रभावित होता है। इसको हर व्यक्ति सर्वेक्षण पूर्वक प्रमाणित कर सकता है। उक्त विधि से शरीर केन्द्रित मानसिकता और उसके अनुरूप जीने की आशा और उसके समर्थन में जीवन शक्तियों में से मन के समर्थन में होने के फलस्वरूप स्वर्ग, नर्क, पाप, पुण्य की कल्पना को स्वीकारा गया। जिसके आधार पर भय और प्रलोभन को आवश्यक समझा गया। जिसकी सफलता के लिए आस्थावादी मानसिकता पर बल दिया गया। फलस्वरूप समुदाय परंपराओं में प्रकारान्तर से आस्थावादी मानसिकता पनपते आया। सर्वाधिक भय और प्रलोभन के आधार पर ही आस्थाएँ मानव में कार्यरत मनोकामना के रूप में अथवा मनमानी के रूप में रहना मिला। आस्थाएँ अधिकांश रहस्यमय रहा। अतएव आस्थाओं को व्यवहार में प्रमाणित करना संभव नहीं हुआ।

अनुभव सम्पन्न जीवन से ही जीवन सहज अभिव्यक्ति है। जबकि भ्रम भी 'जीवन-भ्रम' के आधार पर ही होना देखा गया है। अनुभव और जागृति, जीवन तृप्ति की अभिव्यक्ति होना पाया जाता है जबकि भ्रम अतृप्ति का ही द्योतक होना देखा गया। भ्रमित होने का, रहने का, कार्य करने का मूल रूप जीवन ही है। शरीर को जीवन समझने के आधार पर भ्रम है। जीवन को स्वत्व के रूप में समझ लेना और उसकी अभिव्यक्ति में जीवन जागृति प्रमाणित रहना ही अनुभव सहज प्रमाण एवम् जागृति है। अतएव यह स्पष्ट हुआ जीवन ही भ्रमित, जीवन ही जागृत होना नियति सहज क्रिया है।

भ्रमित स्थिति में मानवीयता के विपरीत, जीवों के सदृश्य (प्रिय, हित, लाभ प्रवृत्ति) जीना देखने को मिलता है। जबकि मानव सहज मौलिकता मानवीयता ही है। जागृति सहज विधि से मानवीयता स्वयं-स्फूर्त विधि से प्रमाणित होती है। यही जागृति और भ्रम मुक्ति सहज प्रमाण है। इसी के आधार पर मानवीयतापूर्वक

व्यवस्था में जीना बनता है, भ्रम पूर्वक अमानवीयता अर्थात् पशु मानव एवम् राक्षस मानव के रूप में जीना आंकलित होता है, जबकि हर व्यक्ति मानवीयता से परिपूर्ण होकर जीना चाहता है। इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर आते हैं परंपरा जागृत होने की आवश्यकता है क्योंकि हर मानव संतान किसी अभिभावक के कोख में होता ही है। इसके उपरांत किसी धर्म संस्थान, राज्य संस्थान और किसी शिक्षा संस्थान में अर्पित होता ही है। यही संस्थाएँ जागृति का धारक-वाहक होने पर जागृत परंपरा है अन्यथा भ्रमित परंपरा है ही। जागृति सबका वर है। जागृति का स्वरूप है स्वयं व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी, दूसरे विधि से मानवीयतापूर्ण आचरण जागृति है और तीसरे विधि से परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था में जीना जागृति है।

इंगित किये गये तथ्यों और उनके विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि जीवन ही भ्रमित रहता है, जीवन ही जागृत रहता है। जीवन जागृति और भ्रम का स्त्रोत प्रधानत: मानव परंपरा ही है। परंपरा स्वयं जागृत रहने की स्थिति में जागृति का लोकव्यापीकरण होता है। भ्रमित परंपरा होने की स्थिति में भ्रम का ही लोकव्यापीकरण होता है। इस दशक तक यही हाथ लगा है। ऐसे स्थिति में भी किसी न किसी मानव में अनुसंधानिक आवश्यकता उत्पन्न होकर स्वयं जागृत होने के उपरांत जागृत परंपरा के लिए स्त्रोत बन जाता है। भ्रमात्मक विधि से भी चित्रण-विश्लेषण के आधार पर बहुत अनुसंधान हुए हैं। जबकि जागृति सहज अनुसंधान मानव, मानव व्यवस्था मानव संचेतना सहज विधि से प्रस्तावित होना परंपरा में स्वीकृत होना, लोकव्यापीकरण होना एक आवश्यकीय स्थिति रही।

जीवन रचना के आधार पर जीवन में आत्मा अविभाज्य क्रिया होना स्पष्ट हो गई है। अस्तित्व में अनुभव ही आत्मा सहज क्रिया है। अनुभव ही दूसरे नाम से प्रत्यावर्तन क्रिया है और इसका परावर्तन क्रिया को प्रामाणिकता-प्रमाण नाम दिया है। अनुभवमूलकता आत्मा में होने वाली क्रिया है। यही जागृति है। यह जागृति सहअस्तित्व में अनुभवमूलकता आत्मा में होने वाली जागृति ही है। जागृति सहअस्तित्व में अनुभव हुई है। इसी जागृत स्थिति में होने वाली गति को प्रत्यावर्तन नाम दिया गया है। सम्पूर्ण प्रत्यावर्तन दर्शन और ज्ञान नाम से प्रतिष्ठित हैं। ज्ञान और दर्शन स्वाभाविक रूप में ओत-प्रोत रूप में वर्तमान है। सम्पूर्ण अस्तित्व सत्ता में संपृक्त जड़-चैतन्य प्रकृति ही सहअस्तित्व का मूल स्वरूप है। इसका सामान्य कल्पना हर मानव में होना संभव है। कल्पना का मूल स्त्रोत आशा, विचार, इच्छा का अस्पष्ट गति रूप है क्योंकि सम्पूर्ण कल्पनाएँ परावर्तन में कार्यरूप रहना देखा जाता है। मानव ही कल्पनाशीलता का प्रयोग करता है। इसे ऐसा भी कहा जा सकता है कि हर व्यक्ति प्रकारान्तर से कल्पनाशीलता का प्रयोग करता है। भ्रमित मानव द्वारा कल्पनाशीलता का सर्वाधिक प्रयोग शरीर और इन्द्रिय सन्निकर्ष के रूप में ही स्वाभाविक है। यह भ्रम विवशता है। यही कल्पनाएँ चिन्हित रूप में स्पष्ट होने के लिए तत्पर होते हैं। तभी विधिवत

जागृत जीवन के 122 आचरण

अक्षय बल की क्रियाएं (प्रत्यावर्तन)		अक्षय बल का नाम	जीवन का अवयव	अक्षय शक्ति का नाम	अक्षय शक्ति की क्रियाएं (परावर्तन)	
अनुभव		आत्मा	मध्यांश	प्रमाण	प्रामाणिकता	
आनन्द अस्तित्व	बोध	बुद्धि	प्रथम परिवेश	ऋतंभरा	संकल्प	धी धृति
1. श्रुति 2. मेधा 3. कांति 4. निरीक्षण 5. संतोष 6. प्रेम 7. वात्सल्य 8. श्रद्धा	चिंतन	चित्त	द्वितीय परिवेश	इच्छा	चित्रण	1. स्मृति 2. कला 3. रूप 4. गुण 5. श्री 6. अनन्यता 7. सहजता 8. पूज्यता
1. विद्या 2. कीर्ति 3. निश्चय 4. शांति 5. कृपा 6. दम 7. तत्परता 8. कृतज्ञता 9. गौरव 10. विश्वास 11. सत्य 12. न्याय 13. तादात्मता 14. संयम 15. वीरता 16. भाव 17. जाति 18. तुष्टि	तुलन	वृत्ति	तृतीय परिवेश	विचार	विश्लेषण	1. प्रज्ञा 2. वस्तु 3. धैर्य 4. दया 5. करुणा 6. क्षमा 7. उत्साह 8. सौम्यता 9. सरलता 10. सौजन्यता 11. धर्म 12. संवेदना 13. साहस 14. नियम 15. धीरता 16. संवेग 17. काल 18. पुष्टि

1. भक्ति						1. तन्मयता
2. ममता						2. उदारता
3. सम्मान						3. सौहार्द्र
4. स्नेह						4. निष्ठा
5. पुत्र-पुत्री						5. अनुराग
6. स्वामी/साथी						6. दायित्व
7. सेवक/सहयोगी						7. कर्तव्य
8. स्वायत्त						8. समृद्धि
9. हित						9. स्वास्थ्य
10. प्रिय						10. प्रवृत्तियाँ
11. उल्लास						11. हास
12. शील						12. संकोच
13. गुरु						13. प्रामाणिक
14. शिष्य						14. जिज्ञासु
15. भाई-मित्र						15. प्रगति
16. बहन						16. उन्नति
17. स्वीकृति	आस्वादन	मन	चतुर्थ परिवेश	आशा	चयन	17. स्वागत
18. रुचि						18. पहचान
19. सुख						19. स्फूर्ति
20. पति/पत्नी						20. यतीत्व/सतीत्व
21. माता						21. पोषण
22. पिता						22. संरक्षण
23. मृदु/कठोर						23. वहन/संवहन
24. शीत/उष्ण						24. पोषण
25. खट्टा						25. पोषण
26. मीठा						26. पोषण
27. चिरचिरा						27. पोषण
28. कड़ुआ						28. पोषण
29. कसैला						29. पोषण
30. खारा						30. पोषण
31. सुगंध/दुर्गंध						31. श्वसन/निःश्वसन
32. सुरूप/कुरूप						32. स्वागत/अस्वागत

मानवीय संविधान का चित्रण

व्यवहार	परिवार	संबंध मूल्य
व्यवहार	परिवार समूह	संबंध मूल्य
व्यवहार	ग्राम स्वराज्य परिवार	संबंध मूल्य
व्यवहार	ग्राम समूह परिवार	संबंध मूल्य
व्यवहार	ग्राम क्षेत्र परिवार	संबंध मूल्य
व्यवहार	मंडल परिवार	संबंध मूल्य
व्यवहार	मंडल समूह परिवार	संबंध मूल्य
व्यवहार	मुख्य राज्य परिवार	संबंध मूल्य
व्यवहार	प्रधान राज्य परिवार	संबंध मूल्य
व्यवहार	विश्व राज्य परिवार	अखंड समाज (संबंध मूल्य)
सार्वभौम व्यवस्था	विश्व राज्य सभा	भागीदारी
व्यवस्था	प्रधान राज्य सभा	भागीदारी
व्यवस्था	मुख्य राज्य सभा	भागीदारी
व्यवस्था	मंडल समूह राज्य सभा	भागीदारी
व्यवस्था	मंडल राज्य सभा	भागीदारी
व्यवस्था	ग्राम क्षेत्र राज्य सभा	भागीदारी
व्यवस्था	ग्राम समूह राज्य सभा	भागीदारी
व्यवस्था	ग्राम स्वराज्य सभा	भागीदारी
व्यवस्था	परिवार समूह सभा	भागीदारी
व्यवस्था	परिवार सभा	भागीदारी

अस्तित्व में परमाणु का विकास

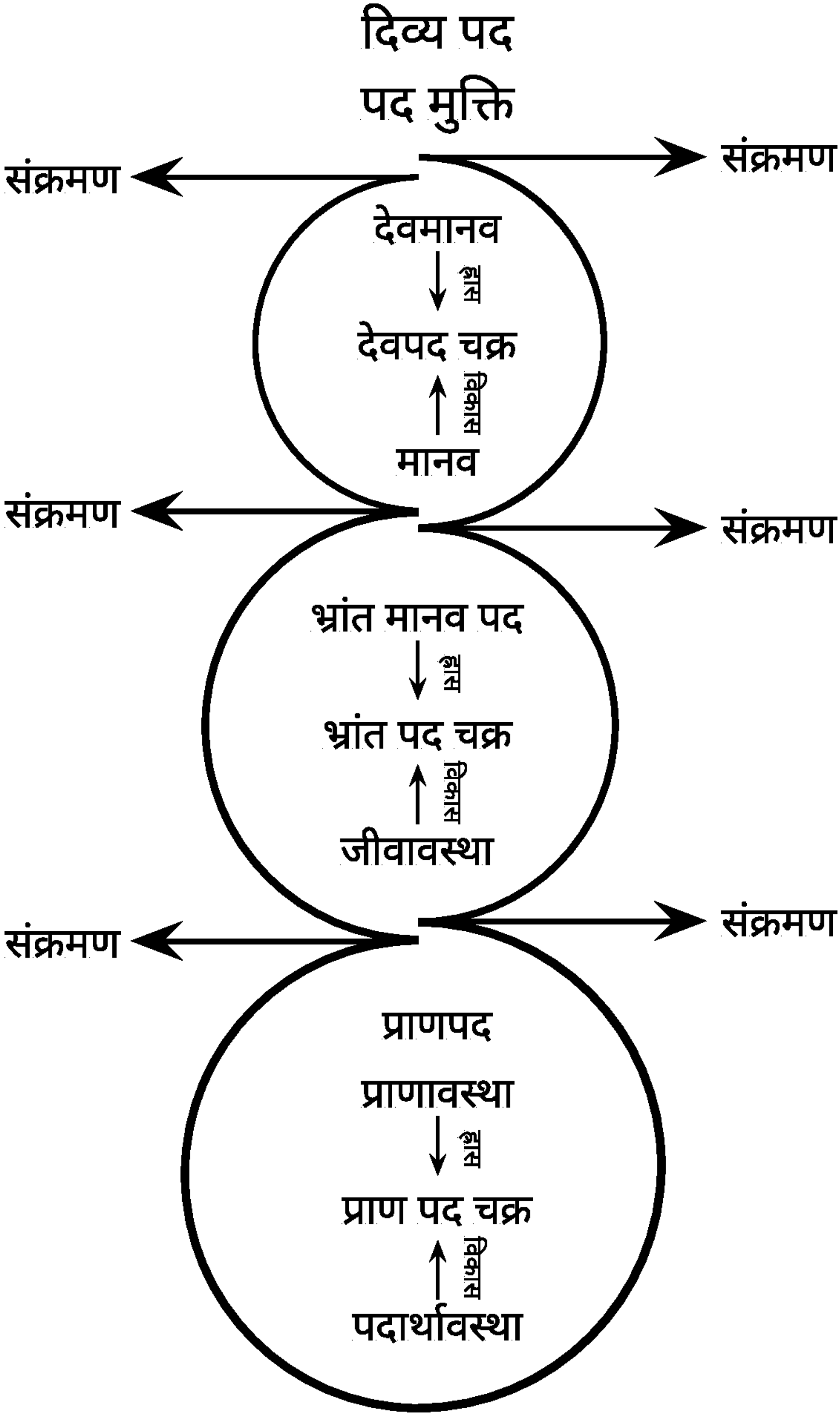

विश्लेषण और निश्चित चित्रण विचार रूप में सम्भावनाओं को स्वीकारना बनता है। संभावनाओं का लक्ष्य प्रिय, हित, लाभ सीमाओं में सीमित रहना पाया जाता है। यही भ्रमात्मक कार्य सीमा का अथ इति है।

जागृतिपूर्ण जीवन चित्रण में यह तथ्य सुस्पष्ट है कि न्याय, धर्म, सत्य उसका साक्षात्कार, बोध, अनुभव ही अध्ययन और अनुसंधान का लक्ष्य और कार्य है। इन्हीं कार्य रूप के आधार पर अस्तित्व और जीवन अवधारणा में स्थापित होना सफल अध्ययन का द्योतक और कसौटी भी है। इसी के आधार पर स्वायत्त मानव का सर्वेक्षण, निरीक्षण और परीक्षण होना स्पष्ट हो जाता है। स्वायत्त मानव ही अस्तित्व में अनुभव सहज जागृति का धारक-वाहक होना स्पष्ट है। इस प्रकार अध्ययन सहज रूप में जीवन और सहअस्तित्व में अनुभव बोध की अभिव्यक्ति और प्रमणित होने के क्रम में आत्मा अस्तित्व में अनुभूत होना, जीवन में केन्द्रीय होना, मध्यस्थ क्रिया और मध्यस्थ बल सम्पन्नता का स्वीकृत होना, परम तृप्त होना है। जीवन रचना मध्यांश सहज मध्यस्थ क्रिया, मध्यस्थ बल, मध्यस्थ शक्ति संतुलन के अर्थ में सदा-सदा प्रयुक्त रहता ही है। यही जागृत मानव परंपरा में प्रमाण है। मध्यस्थ क्रिया सम्मुच्चय क्रम से जीवनी क्रम और जीवन जागृति क्रम व्यक्त होता है। इसी क्रम में जागृत होना जीवन सहज प्रवृत्ति, प्रयास, आवश्यकता के योग-संयोग विधि से सम्पन्न होता है। यही अनुसंधान शोध और अध्ययन के लिए भी संयोजक तत्व है। यह तत्व सदा-सदा जीवन प्रतिष्ठा में कार्यरत रहता ही है। इसकी प्रखरता के आधार पर ही अनुसंधान, शोध, अध्ययन सहज हो जाता है। इस प्रकार यह सुस्पष्ट हो जाता है कि आत्मा अध्ययन विधि से अस्तित्व में अनुभूत होता है। दूसरा, अनुसंधान विधि से भी अस्तित्व में अनुभूत होना पाया जाता है।

अनुसंधान विधि से भी सर्वप्रथम अस्तित्व में बोध होना देखा गया है इसके उपरान्त ही आत्मा अस्तित्व में अनुभूत होना देखा गया है। अध्ययन विधि से भी यही स्थिति अर्थात् पहले बोध तदोपरांत अनुभव होना पाया जाता है। इन दोनों विधियों में से अध्ययन विधि लोकव्यापीकरण के लिए कम समय में बोध होने की स्थिति बनती है। अनुसंधान विधि में प्रवृत्त होने के लिए व्यक्ति में लक्ष्य सम्मत जिज्ञासा का होना अनिवार्य है। जब अध्ययन विधि से सम्पूर्ण प्रश्नों का उत्तर मिल जाता है। प्रश्न स्थली रिक्त होना, उसी स्थली में सम्पूर्ण उत्तर स्थापित होना, अध्ययन और अध्यापन का संयोग और फलन है। प्रश्न विहीन स्थिति में अनुसंधान का आधार नहीं बनता। इस प्रकार परंपरा में सभी प्रश्नों का उत्तर अध्ययन विधि से हर मानव में हर स्थिति, परिस्थितियों में सम्पूर्ण प्रश्नों का उत्तर सहअस्तित्व सहज विधि से समीचीन है।

अनुसंधान विधि एवं अध्ययन विधि से पहले बोध ही होता है, तदोपरांत "बोध" का आत्मा में अनुभव होता है। अनुभव के उपरान्त "अनुभव सहज बोध" अध्ययन एवं अनुसंधान विधि में एक जैसा होता है एवं एक ही होता है। इसमें मुख्य तथ्य यही है यथार्थता, वास्तविकता, सत्यतापूर्ण विधि से अध्यापन सामग्री, वस्तु,

प्रक्रिया परिपूर्ण रहना आवश्यक है। अनुसंधान के लिये अज्ञात प्रश्न चिन्ह अति आवश्यक है। हर अनुसंधान को अध्ययन और अध्यापन कार्य विधि से लोकव्यापीकरण होना सुगम हो जाता है। इस प्रकार अनुभव के अनन्तर ही अनुभव 'बोध' होना देखा गया है। यह हर व्यक्ति में होना समीचीन है।

जीवन सहज जागृतिपूर्ण प्रक्रिया में देखा गया है कि सहअस्तित्व रूपी अस्तित्व में आत्मा ही अनुभूत होता है। **फलस्वरूप आत्मा सहज मध्यस्थ क्रिया ही मध्यस्थ बल, मध्यस्थ शक्ति के रूप में प्रभाव क्षेत्र का होना देखा गया है। इसी प्रभाव क्षेत्र वश 'अनुभव' का बोध बुद्धि में 'अनुभव' का साक्षात्कार चित्त में 'अनुभव' का सार्थकता तुलन रूपी वृत्ति में (न्याय, धर्म, सत्य) और 'अनुभव' का आस्वादन (मूल्य रूप में) मन में प्रभावित और स्वीकृत होता है। उसी क्षण से 'निष्ठा' की निरन्तरता पायी जाती है। 'निष्ठा' का तात्पर्य अनुभव प्रभाव का निरंतरता में ही जीवन की सभी क्रियाएँ अभिभूत रहने से है।** अनुभव प्रभाव क्षेत्र स्वयं ही निरंतर होना पाया जाता है क्योंकि अस्तित्व में अनुभव से अधिक कुछ शेष नहीं है। सम्पूर्ण अस्तित्व ही अनुभव गम्य होने के आधार पर मध्यस्थ क्रिया का प्रभाव क्षेत्र सदा-सदा के लिए जीवन क्रिया रूपी समस्त परावर्तन-प्रत्यावर्तन क्रिया में संतुष्ट, तृप्त, समाधानित होना देखा गया है। यही जीवनापेक्षा सहज सुख, शांति, संतोष, आनंद से भी इंगित है।

जीवन जागृति सहज महिमा ही है मानवापेक्षाओं को परंपरा में साक्षित कर देता है। परंपरा में साक्षित करने का एक ही उपाय है - व्यवहार। मानव परंपरा में व्यवहार प्रमाण को प्रस्तुत करते समय शरीर का होना सहअस्तित्व सहज व्यवस्था है। इसीलिये जागृत जीवन परंपरा में ही अथवा जागृतिपूर्ण परंपरा में ही हर परिवार मानव समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व को साक्षित कर देता है, सत्यापित कर पाता है। हर व्यवहार में ऐसा सत्यापन मूल्यांकित होता है। इन तथ्यों के आधार पर जागृतिपूर्ण मानव परंपरा की आवश्यकता, उसकी संभावना और इन दोनों का संयोग विधि समीचीन है।

ऊपर कहे गये तथ्यों, विश्लेषणों, संप्रेषणा के अनुसार यह सुस्पष्ट है कि मानव कुल का शरण और रक्षा अनुभवमूलक परंपरा पर ही आधारित है। इसमें और चूकने की स्थिति में मानव का इस धरती पर होने के मुद्दे पर ही प्रश्न चिन्ह लग चुका है।

अनुभवमूलक परंपरा ही न्याय, धर्म (अखण्ड समाजिकता), सत्यपूर्ण प्रणाली, पद्धति, नीति सहित विधि से सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी होना स्वाभाविक है। मानव कुल में यह तीनों स्त्रोत अर्थात् न्याय, धर्म, सत्य अक्षुण्ण रूप में मध्यस्थ नित्य वैभव होना देखा गया है। अस्तित्व अक्षुण्ण रूप में मध्यस्थ विधि से ही कार्यरत है। इसीलिये अस्तित्व में अनुभव सहज फलन ही है मध्यस्थ क्रिया, मध्यस्थ बल, मध्यस्थ शक्तियों का प्रभावित होना। मूलत: मध्यस्थ प्रभाव क्या है? इसका उत्तर अस्तित्व में यही है सम-विषमात्मक

अतिरेकों को सामान्य बनाए रखने में नियोजित बल और शक्ति। बल और शक्ति अविभाज्य हैं। ऐसी बल और शक्ति क्रिया का ही स्वरूप होना देखा गया है।

सम और विषम का नियंत्रण अथवा अतिरेकों का नियंत्रण परमाणु में निहित नाभिकीय अंश का वैभव होना स्पष्ट है। हर परमाणु में परिवेशीय अंशों का निश्चित दूरी से अधिक या कम होना ही सम-विषम संज्ञा है। यह सदा-सदा नाभिकीय बल और शक्ति के प्रयोग विधि से संतुलित रहना दिखाई पड़ता है - समझ में आता है। यह संतुलन परमाणुगठन रूपी इकाई पर होने वाला 'प्रभाव' है। यही मध्यस्थ क्रिया, मध्यस्थ बल और मध्यस्थ शक्ति का परिचय और प्रमाण है। क्योंकि हर परमाणु संतुलित होने की स्थिति में ही स्वभाव गति के रूप में वर्तमान होना, फलस्वरूप उपयोगिता-पूरकता विधि से परस्परता में विकास, उदात्तीकरण, रासायनिक उर्मि और रचना-विरचनाएँ स्पष्ट हुई। हर विरचना भी पूरकता क्रम में ही होना और पुनःरचना के लिए पूरक होना देखा गया है। यह प्राणावस्था में बीजानुषंगीय विधि से स्पष्ट है।

भौतिक रचना में संतुलन का स्वरूप भार बंधन और अणुबन्धन के वैभववश अथवा वैभव के रूप में देखने को मिलता है। यही अणुएँ रासायनिक उर्मि सहित रासायनिक रचनाओं के रूप में प्रवृत्त रहना देखा गया है। ऊपर 'बंधन' का जो शब्द प्रयोग किया गया है यह चैतन्य प्रकृति में ही होने वाली भ्रम बन्धन के अनुरूप में नाम दिया गया है। नाम मानव ही देता है। किसी भी नाम का सृजेता मानव ही है। जबकि हर परमाणु स्वयंस्फूर्त विधि से अणु के रूप में, हर अणुएँ स्वयंस्फूर्त विधि से रचना के रूप में वैभवित रहना देखा गया है। परमाणुओं में स्वभाव गति अंशों का स्वयंस्फूर्त गठन (एक से अधिक अंश स्वयंस्फूर्त विधि से परस्पर अच्छी दूरी में रहकर कार्यशील रहना) उसके संतुलन सहित आंकलित होती है। स्वभाव गति का परिभाषा ही है यथास्थिति में संतुलन, विकास में प्रवृत्ति। यही भौतिक-रासायनिक संसार में सम्पूर्ण क्रियाकलाप देखने को मिलता है। यह हर रचना-विरचना में होने वाला अध्ययन है। और विरचना भी पूरकता क्रम में सार्थक होना देखा जाता है। यह पूरकता भौतिक-रासायनिक रचना-विरचना के संबंध में है। क्योंकि अणु और अणु रचित रचनाएँ सम्पूर्ण अस्तित्व में यह दो ही प्रकार के रचना-विरचना होना सुस्पष्ट है। परमाणु का नियंत्रण तत्व परमाणु में निहित है और अणु का नियंत्रण तत्व अणु में ही निहित रहता है। रचनाओं का नियंत्रण तत्व रचनाओं में ही निहित रहता है। पूरकता विधि परस्परता में प्रभावशील रहता ही है। नियम से रचना, नियम से विरचना होना सुस्पष्ट है। यह पूरकता नियम रचना-विरचना रत रासायनिक-भौतिक संसार में देखने को मिलता है। सहअस्तित्व नित्य प्रभावी है।

भौतिक-रासायनिक संसार क्रम में विकास क्रम को प्रकाशित करने के लिये सर्वाधिक पदार्थ रूपी द्रव्य और वस्तु प्रवृत्त रहना दिखाई पड़ता है। इसी क्रम में अत्यल्प वस्तु परमाणु भी गठनपूर्णता के लक्ष्य की

ओर होना अस्तित्व के साक्ष्य के आधार पर स्पष्ट होता है। गठनपूर्णता का महिमावश ही चैतन्य पद, चैतन्य इकाई के रूप में जीवन होना स्पष्ट हो चुका है।

रचनाओं में विकास (श्रेष्ठता) का व्याख्या इस धरती पर विविध स्वरूप में प्रमाणित हो चुकी है। यह सब रासायनिक ऊर्मी उत्सव सहज रचनाएँ अण्डज, पिण्डज और उद्भिज परंपरा के रूप में वर्तमानित है। यह सब रासायनिक संसार के रचना वैभव होना दिखाई पड़ती है। जबकि पदार्थावस्था की सभी रचनाएँ परिणामानुषंगीय विधि से सम्पन्न होते हुए देखने को मिलता है। परिणाम मूलतः परमाणु में ही अंशों के संख्या भेद से देखने को मिलता है। ऐसे परिणाम के आधार पर परमाणुओं की प्रजाति होना, फलस्वरूप रचनाएँ होना सुस्पष्ट है। इस विश्लेषण और अध्ययन से यह स्पष्ट हो गई कि स्वभाव-गति प्रतिष्ठा में ही रचना प्रवृत्ति होती है और विरचना प्रवृत्ति होती है। हर विरचनाएँ पुनःरचना की वस्तु रहता ही है। रचनाएँ विरचित वस्तुओं-द्रव्यों से रचित ही है। इस प्रकार से विरचनाएँ पूरकता विधि-नियम, कार्य, महिमा और प्रतिष्ठा को अस्तित्व सहज सहअस्तित्व में प्रकाशित किये हुए हैं। इसका द्दष्टा मानव ही है। आवेशित गति में विरचना प्रवृत्ति होती है, रचना प्रवृत्ति नहीं होती। इससे यह भी स्पष्ट हो गई कि हर विरचना प्रवृत्ति रचना प्रवृत्ति की पोषक होना पाया जाता है। यह आवश्यक भी है। सहअस्तित्व नियम के अनुसार, प्रभाव के अनुसार समृद्ध धरती, तभी स्वरूपित होती है अथवा समृद्धि के रूप में धरती जब सजती है, रचना, विरचना रूपी कार्य अनूस्युत विधि से एक-दूसरे के पूरक होते हुए समृद्ध होता हुआ और समृद्धि सहज यथा स्थिति को देखने में आता है। इस धरती में यह पूर्णतया प्रमाणित है ही क्योंकि भौतिक संसार की सम्पूर्ण रचनाएँ परिणामानुषंगीय विधि से, प्राणावस्था की सम्पूर्ण रचनाएँ बीजानुषंगीय विधि से और जीवावस्था और ज्ञानावस्था की शरीर रचनाएँ वंशानुषंगीय विधि से परंपरा के रूप में वैभवित रहना हर सामान्य व्यक्ति की समझ में आता है।

चैतन्य प्रकृति में गति प्रतिष्ठा जीवनी क्रम विधि से जीवसंसार में, वंशानुषंगीय कार्यकलापों को प्रमाणित करने के क्रम में सार्थक दिखाई पड़ती है। इसका तात्पर्य यही हुआ कि वंशानुषंगीय विधि से निश्चित कार्यकलाप को अनुमोदित करने वाला जीवन प्रवृत्ति ही जीने की आशा का स्वरूप होना स्पष्ट हुआ। वंशानुषंगीय शरीर पाँच ज्ञानेन्द्रियों, पाँच कर्मेन्द्रियों के रूप में रचित रहता ही है। उसी कार्य के प्रति अनुमोदन ही जीवनी क्रम और जीने की आशा सहज अपेक्षा और प्रतिबद्धता है। इसी विधि से जीवन और शरीर सहित जीव संसार के शरीरों का संयोग, सहअस्तित्व कार्यकलाप स्पष्टतया दिखाई पड़ता है। इस विधि से हम यह अध्ययन कर पाते हैं कि जीव शरीरों में वंशानुषंगीय क्रियाकलापों को प्रमाणित करने में, कार्यरत होने में कोई न कोई उसके योग्य जीवन अपने में स्वीकार लेता है। ऐसे स्वीकृति को प्रमाणित भी

कर देता है। अतएव जीवसंसार में जो वंशानुषंगीय विधि है उसके अनुसार जागृति की संभावना ही नहीं है न आवश्यकता है न ही प्रवृत्ति है फलत: प्रयासरत होने का प्रश्न नहीं है उत्तर नहीं है।

ज्ञानावस्था की इकाई सहअस्तित्व में केवल मानव है। ज्ञानावस्था का तात्पर्य ही है जीवन्त मानव शरीर रचना पाँच ज्ञानेन्द्रियों, पाँच कर्मेन्द्रियों सीमागत कार्यकलापों के अतिरिक्त तथ्य को उद्घाटित करना। मानव शरीर रचना गर्भाशय विधि से होना देखा गया है। गर्भाशय में भ्रूण रचना डिम्ब और शुक्र कीट संयोग विधि से होना भी ज्ञात हो चुका है। डिम्ब और शुक्रकीट मूलत: प्राण-कोषाओं में निहित प्राणसूत्रों का ही रचना है। इस रचना में अर्थात् उभय कीट रचना संयुक्त रूप में ही शरीर रचना सूत्र रूप में स्थापित रहती है। इसी कारण वश उभयलिंगी (स्त्री व पुरूष शरीर) क्रम बना ही रहता है। इसका गवाही उभयलिंगी शरीर रचना होती है। इस प्रकार वंशानुषंगीय रचना मूलत: उभय कीट में समायी हुई शरीर रचना सूत्र पर आधारित रहना स्पष्ट है। इसी क्रम में मानव शरीर का भी रचना सम्पन्न हुआ रहता है। मानव शरीर रचना में अंतर यही है समृद्धिपूर्ण मेधस रचना रहता है इसी के आधार पर जीवन, जीवनी क्रम से आगे जागृति क्रम में आरूढ़ होता है। आदिकालीन मानव से अभी तक किये गये कृत्यों और परम्पराओं को देखने से यह साक्षित होता है। जागृति क्रम में आरूढ़ होने का साक्ष्य, शरीर को जीवन समझते हुए भी शरीर कृत्यों से तृप्त न होना, अव्यवस्था की समझ से पीड़ा होना, अन्याय और समस्या की पीड़ा से पीड़ित होना। एक भाग इन पीड़ाओं से विस्मृत होने के लिये प्रलोभनों-आस्थाओं को अपनाता हुआ देखा गया।

परंपरा के रूप में मानव बहुमुखी प्रवृत्तियाँ, कल्पनाशीलता और कर्मस्वतंत्रता जैसी मौलिक स्वत्व के आधार पर फैलता ही गया। ऐसा विविध आयामों, दिशा, कोणों, परिप्रेक्ष्यों के क्रम में फैला हुआ परंपरा में, से, के लिये शिक्षा, संस्कार, संविधान, व्यवस्था दूसरे भाषा में समुदाय के संस्कृति, सभ्यता, विधि-व्यवस्था के रूपों में परंपराओं का होना देखा गया है।

मानव शरीर का संचालन भी जीवन ही सम्पन्न करने का तथ्य सुस्पष्ट है। मानव शरीर संचालन संस्कारानुषंगीय होने के अर्थ में ही बहुमुखी परंपराएँ देखने को मिला, यह केवल मानव परंपरा में ही मिला। इसमें यह भी देखने को मिला मानव ही अपने विभूतियों का सदुपयोग और दुरूपयोग कर सकता है। क्योंकि सम्पूर्ण मानव में शुभाकांक्षा उमड़ती ही रहती है। इन उमड़ती हुई शुभाकांक्षा ध्रुवीकृत होने के ओर ही सुदूर विगत से इस दशक तक किये गये प्रयास और अभिव्यक्तियों से इसी तथ्य की पुष्टि होती है। सर्वशुभ और उसकी प्रतिष्ठा सर्वसुलभ रूप में तभी संभव होना देखा गया है कि हर बच्चे-बड़े जागृति को प्रमाणित कर दे। ऐसी लोकव्यापीकृत जागृति, लोक व्यापीकृत सर्वशुभ प्रमाण योग्य जागृति, जागृत परंपरा में, से, के लिये होना भी सुस्पष्ट हो चुकी है। जागृत जीवन में मध्यस्थ क्रिया, मध्यस्थ शक्ति, मध्यस्थ बल

के स्वरूप को समझने की विधि सहित उसका कार्य, कार्य-स्वरूप और प्रयोजनों को ज्ञात कर लेना आवश्यक है। यही शिक्षा-संस्कार का प्रयोजन है। इससे लोकव्यापीकरण कार्यक्रम में सहज गति सुलभ होगा ही।

मध्यस्थ क्रिया को परमाणु के मध्यांश के रूप में पहचाना गया है। चैतन्य परमाणु में भी मध्यांश का होना स्वाभाविक है क्योंकि चैतन्य इकाई मूलत: एक गठनपूर्ण परमाणु ही है। इस परमाणु में विशेषता 'गठनपूर्णता' है। गठनपूर्णता की मौलिकता है - अणुबन्धन और भारबन्धन मुक्ति और आशा, विचार, इच्छा बन्धन का प्रकाशन और इसी क्रम में आशा, विचार, इच्छा बंधन मुक्ति ही जागृति का स्वरूप है। फलस्वरूप जागृत जीवन का निश्चित कार्यकलाप मानवीयता और मानवीयता पूर्ण परंपरा है। ऐसी चैतन्य इकाई में मध्यस्थ क्रिया का स्वरूप और कार्य भी यथा स्थिति को बनाए रखने और जीवनी क्रम, जागृति क्रम और जागृति को अक्षुण्ण बनाये रखते हुए नित्य वैभव को नियंत्रित किये रहना ही परंपरा के रूप में मध्यस्थ क्रिया सहज मौलिकता है।

अस्तित्व में विकासक्रम विधि से सम्पूर्ण भौतिक और रासायनिक वस्तुओं और द्रव्यों का रचना लक्ष्य उसके पुष्टि में विरचना कार्य; परंपरा के रूप में होना स्पष्ट किया जा चुका है। सम्पूर्ण रचना में अणु, अणु रचित और कोषा रचित रचनाओं में अपने-अपने 'त्व' सहित व्यवस्था के रूप में वंशानुषंगीय मध्यस्थ क्रिया को प्रकाशित, प्रमाणित करता हुआ देखने को मिला है। इसी क्रम में परिणामानुषंगीय, बीजानुषंगीय और वंशानुषंगीय रचना एवं कार्यों के रूप में स्पष्ट है। जीवनी क्रम में 'जीवन' वंशानुषंगीय संतुलन और 'त्व' सहित व्यवस्था अर्थात् वंशानुषंगीयता के 'त्व' सहित व्यवस्था को प्रमाणित करने के अर्थ को स्पष्ट हुआ है और अध्ययन गम्य है। यही संतुलन और व्यवस्था एवं समग्र व्यवस्था में भागीदारी का प्रमाण ही मध्यस्थ क्रिया का होना है। मूलत: जीवन सहज चैतन्य प्रकृति में से चैतन्य पद प्रतिष्ठा को संतुलित बनाये रखना तात्विक रूप में मध्यस्थ क्रिया है क्योंकि मध्यस्थ क्रिया मध्यांश या नाभिकीय क्रिया की महिमा होना पहले से स्पष्ट है। चैतन्य इकाई में मध्यस्थ क्रिया गठनपूर्णता और उसकी निरन्तरता को बनाये रखने में कार्यरत रहता है। इस संतुलन में आशा बन्धनरत सम्पूर्ण जीवन जो जीवनी क्रम में अपने को प्रमाणित करने में प्रवृत्त रहते हैं उनमें नियंत्रण सहित ही शरीर को जीवन्त रखने, आशानुरूप जीने की प्रतिष्ठा बनती है। यहाँ शरीर को जीवन्त बनाये रखने में 'मध्यस्थ क्रिया' व्यक्त होता है। जीवसंसार में यही मौलिकता है कि वंशानुषंगीयता से भिन्न और कोई कार्य एवं आचरण उस-उस शरीर को संचालित करते तक जीवन नहीं करता है अर्थात वंशानुरूप कार्य करता है। जबकि मानव संस्कारनुषंगी इकाई होने के कारण वंश विधि शरीर रचना तक ही सार्थक होना स्पष्टतया देखा गया है। अतएव मानव के संबंध में सम्पूर्ण अध्ययन जीवन

सहज और संस्कार सहज क्रम में ही होता है। तभी मानवत्व सहित व्यवस्था समग्र व्यवस्था में भागीदारी होता है।

मध्यस्थ क्रिया उसकी महिमा और उसकी अक्षुण्णता को जानना-मानना-पहचानना, तदनुसार निर्वाह करना मानव सहज मौलिकता है। मध्यस्थ क्रिया अपने आप में स्वभावगति का नित्य स्त्रोत होना सभी अवस्थाओं में पहचाना जाता है। इसी क्रम में ज्ञानावस्था में कार्यरत जीवन में भी स्वभावगति और आवेशित गति को पहचानना सहज है। इस सहजता को इस प्रकार पहचाना गया है कि मानवत्व सहित अभिव्यक्त और प्रकाशित होना मानव सहज स्वभाव गति है। अमानवीयता वादी प्रकाशन और कार्यकलाप आवेशित गति के रूप में दिखाई पड़ती है। अमानवीयतावादी प्रवृत्तियाँ संघर्ष, युद्ध, शोषण, द्रोह, विद्रोहरत रहना पाया जाता है जबकि मानवीयतापूर्ण आचरण, व्यवहार और व्यवस्था गतियाँ स्वभावगति समाधान के रूप में देखने को मिलता है।

जागृतिक्रम में आशा, विचार, इच्छा बन्धन रहते हुए मानव प्रिय, हित, लाभवादी कार्यकलापों में व्यस्त रहते हुए भी जीवन सहज नियंत्रण, शरीर को जीवंत और नियंत्रित बनाये रखने में 'मध्यस्थ क्रिया' कार्यरत रहता है। इसी के साथ-साथ अव्यवस्था की पीड़ा, व्यवस्था की भासपूर्वक आवश्यकता, और पाने की आशा 'मध्यस्थ क्रिया' के रूप में ही निर्गमित होती है। अतएव **जागृति की संभावना की ओर ध्यानाकर्षण होना 'मध्यस्थ क्रिया' की ही महिमा है।**

जागृति की आवश्यकता स्वयं 'मध्यस्थ क्रिया' का ही वैभव होना देखा गया है। आवश्यकता की आपूर्ति जीवन सहज अक्षय बल, अक्षय शक्ति सम्पन्नता सहित नियंत्रण रूपी 'मध्यस्थ क्रिया' में समाहित रहता है। इसका प्रमाणीकरण विधि और इसके उपयोग विधि और तृप्ति विधियां जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन सहज अध्ययन क्रम में लोकव्यापीकरण होना देखा गया।

जागृति क्रम तक 'मध्यस्थ क्रिया' की महिमा ही है जो जागृति के लिये आवश्यकता, अनिवार्यता को स्वयं-स्फूर्त विधि से स्पष्ट करता आया है। सबसे समीचीन और सुलभ तथ्य यही है पदार्थावस्था से ज्ञानावस्था तक ज्ञानावस्था में जागृतिपूर्णता तक मानव को अध्ययन करने का अवसर और स्वयं का मूल्यांकन करने का अर्हता ये दोनों ऐश्वर्य एक साथ सर्वमानव के लिये सुलभ हो गया है। जागृति में, से, के लिये अध्ययन और उसकी आवश्यकता एवं अनिवार्यता मानव सम्मुख हो चुकी है।

जागृतिपूर्वक ही न्याय एवं समाधान पूर्ण आचरण में हर व्यक्ति पारंगत होना सहज प्रमाण है। मानवीयता मानव का वांछित वस्तु है। इसी आधार पर जीवन जागृति के सभी आयामों को, विधियों को, कार्य प्रणाली

को पहले स्पष्ट किया जा चुका है जिसमें जीवन की रचना, कार्यरूप, उद्देश्य अथवा अंतिम उद्देश्य, अक्षय बल, अक्षय शक्ति, जीवन में पाँचों अवयव समुच्चय की अविभाज्यता, अस्तित्व में जीवन (चैतन्य प्रकृति) की अविभाज्यता, सहअस्तित्व में जड़-चैतन्य प्रकृति का सत्ता में संपृक्त जड़-चैतन्य प्रकृति के रूप में नित्य वर्तमान होना स्पष्ट किया गया है। यह भी स्पष्ट किया गया है अस्तित्व न तो घटता है न बढ़ता है।

मानव द्वारा ही भ्रमवश किये गये कार्यकलापों, कृत्यों के परिणाम स्वरूप धरती मानव निवास के लिये अयोग्य होने का क्रम आरंभ है। जागृत होने की आवश्यकता है और जीवन सहज रूप में हर व्यक्ति जागृति को स्वीकारता है। इन दोनों आवश्यकतावश जागृति और जागृति पूर्णता की ओर गतित होना अनिवार्य हुआ है। जागृत स्थिति में जीवन में कार्यरत मध्यस्थ क्रिया गठनपूर्णता सहज ऐश्वर्य को संतुलित रखते हुए न्यायपूर्ण विधि से व्यक्त होने के रूप में संतुलित, नियंत्रित और सार्वभौम व्यवस्था, अखण्ड समाज, सर्वतोमुखी समाधान में, से, के लिये भास, आभास, प्रतीति, अनुभूति के रूप में कार्यरत रहता है। इसी बिन्दु में सहअस्तित्व सहज विधि से वर्तमान में विश्वास होना मध्यस्थ क्रिया का वैभव होता है। संघर्ष का तिरोभाव, सहअस्तित्व में विश्वास होना मध्यस्थ क्रिया का प्रभाव है। ये सब प्रतीतियाँ अनुभव बोध रूप में होना देखा गया है। यह बोध जागृत परंपरापूर्वक सर्वसुलभ होता है। मध्यस्थ क्रिया सहज न्याय और धर्म (सर्वतोमुखी समाधान) व्यवहार में फलित होना स्वाभाविक होता है और प्रामाणिकता के लिये अपरिहार्यता निर्मित हो जाती है। 'क्रियापूर्णता' की स्थिति में 'मध्यस्थ क्रिया' की महिमा है। तात्विक रूप में इस को इस प्रकार से देखा गया है न्यायान्याय, धर्माधर्म, सत्यासत्य दृष्टियाँ भ्रम बन्धन से मुक्ति; श्रम का विश्राम; न्याय, धर्म, सत्यानुभूति प्रमाण बोध होते ही स्वाभाविक रूप में कार्य व्यवहार में प्रमाणित हो जाता है। इसी के साथ-साथ अनुभव का प्रयोजन अपने आप बलवती होता है। जीवन अपने में से व्यवस्था में भागीदारी सहज विधि को स्वीकार लेता है। यह सर्वदा के लिये परम्परा में संस्कार और उपकार के प्रयोजन बोध होना पाया जाता है। यही श्रम का विश्राम स्थिति है।

'आचरणपूर्णता' चैतन्य इकाई में व्यक्त होना, प्रमाणित होना नियति सहज अभिव्यक्ति होने के कारण ही है। परिणाम का अमरत्व, श्रम का विश्राम और गति का गंतव्य सहअस्तित्व सहज जागृति विधि सहित अभिव्यक्त होना, इसी धरती पर सुस्पष्ट हो जाता है। 'आचरणपूर्णता' स्थिति में मध्यस्थ क्रिया का जागृति पूर्णता सहज अर्थात् सहअस्तित्व में अनुभव सहित प्रभाव क्षेत्र में सम्पूर्ण जीवन अभिभूत हो जाता है। इसको ऐसा देखा गया है कि जागृतिपूर्ण होते ही अर्थात् अस्तित्व में अनुभव होते ही जीवन के सभी अवयव पूर्णतया अनुप्राणित हो जाते है अर्थात् अनुभव सहज विधि से अनुप्राणित हो जाते हैं। यही बुद्धि में 'सहज बोध', चित्त में 'सहज साक्षात्कार', वृत्ति में 'सहज तुलन' एवं मन में 'सहज आस्वादन' नित्य प्रतिष्ठा के

रूप में होना देखा गया है। इस जागृति प्रतिष्ठा सम्पन्न जीवन में चयन प्रक्रिया प्रामाणिकता से, विश्लेषण प्रक्रिया प्रामाणिकता से, चित्रण प्रक्रिया प्रामाणिकता से, संकल्प प्रक्रिया प्रामाणिकता से अभिभूत अनुप्राणित रहना देखा गया है। यही जागृति पूर्ण जीवन में मध्यस्थ क्रिया की महिमा है। जिसकी आवश्यकता, अनिवार्यता, प्रयोजनीयता कितना है, कहाँ तक है? यह हर व्यक्ति मूल्यांकन कर सकता है।

तात्विक रूप में 'आचरणपूर्णता' ही गंतव्य होने के कारण अस्तित्व ही नित्य वर्तमान और स्थिर होना अस्तित्व में अनुभव के फलन में सत्यापित होता है। यही सत्यापन सम्पूर्ण जीवन क्रियाकलापों में अनुप्राणन विधि में स्थापित हो जाता है अर्थात् आत्मा में हुई अनुभव से जीवन सहज सभी क्रियाएँ अनुप्राणित हो जाते हैं और अनुभव के फलन में तृप्ति अथवा आनन्द आत्मा में होना स्वाभाविक है। यही तृप्ति जीवन के सभी क्रियाओं में जैसे पाँचों शक्तियाँ और चारों बलों में तत्काल ही अनुप्राणित हो जाती है। इस प्रकार सम्पूर्ण जीवन ही अनुभव सहज प्रतिध्वनि बन जाता है। यही तृप्त जीवन, 'दिव्य जीवन', 'भ्रम मुक्त जीवन', 'जागृतिपूर्ण जीवन' होना देखा गया है, समझा गया है। अस्तु, **मध्यस्थ क्रिया के अनुरूप समूचा जीवन क्रियाकलाप होना ही जागृतिपूर्णता होना देखा गया है।** इसी महिमावश जीवन में सम-विषमात्मक कार्यकलाप शून्य हो जाता है। इसी के लिये हर जीवन आतुर-कातुर, आकुल-व्याकुल रहता है। अतएव, मानव परंपरा में क्रियापूर्णता, आचरणपूर्णता सहज परंपरा की आवश्यकता है।

अस्तित्व सहज सहअस्तित्व में जड़-चैतन्यात्मक प्रकृति नित्य वैभवित होने का स्वरूप, क्रिया श्रम-गति-परिणाम प्रकाशन सहज क्रियाकलाप और परिणाम का अमरत्व, श्रम का विश्राम, गति का गंतव्य सहज लक्ष्य निहित क्रिया, उपयोगिता पूरकता, उदात्तीकरण नियमों के अनुरूप सम्पूर्ण भौतिक-रासायनिक व जीवन रूपी प्रकृति में नित्य रचना-विरचना, 'त्व' सहित व्यवस्था और उसकी परंपरा भले प्रकार से बोध कराने की सहज क्रिया सम्पन्न किया जा चुका है। इसी क्रम में श्रम का विश्राम, गति का गंतव्य रूपी प्रमाणों को मानव परंपरा में प्रमाणित करने की आवश्यकता रहा है। इसे सर्वसुलभ लोकगम्य करने के लिए अध्ययनपूर्वक जागृति विधि और इसके प्रमाण में बोध प्रणाली को पहचाना गया। यह भी अनुभव किया गया है कि बोध होना समझदारी का ही दूसरा नाम है अथवा बोध का ही दूसरा नाम समझदारी है। ऐसे समझदारी अध्ययनमूलक प्रणाली से अवधारणा में स्थापति होना, ऐसी अनुभवमूलक अवधारणाओं को अभिव्यक्त संप्रेषित प्रकाशित करने के क्रम में अस्तित्व में अनुभव एक अवश्यंभावी प्रक्रिया के रूप में स्पष्ट हुई है। इस क्रम में अस्तित्व में अनुभव नित्य है। यही मानव का प्रयोजन है। जीवन नित्य है। अस्तित्व स्थिर है। इसी आधार पर अनुभव और अनुभव क्रम अभिव्यक्ति सहित जागृति सहज जीवन का गन्तव्य अर्थात् जीवन में जागृति पूर्णता ही जीवन गति का गंतव्य स्थली होना, उसकी निरन्तरता सदा-सदा

के लिये बना ही रहना देखा गया। इन्हीं आधारों पर 'अस्तित्व' सत्ता में संपृक्त जड़-चैतन्य प्रकृति के रूप में प्रतिपादित हुई, सहअस्तित्व विधि से व्याख्यायित हुई। यह महिमा जागृति पूर्ण जीवन सहज अभिव्यक्ति है।

अस्तित्व में सत्ता स्वयं ही मध्यस्थ है क्योंकि सम्पूर्ण प्रकृति सत्ता में संपृक्त विधि से ही नित्य वर्तमान है। इसी विधि से अस्तित्व सहज पूर्णता, सहअस्तित्व रूप में नित्य वर्तमान होना स्पष्ट है। सत्ता स्थिति पूर्ण होना देखा गया है। स्थिति पूर्णता का वैभव व्यापक पारगामी-पारदर्शिता के रूप में दृष्टव्य है। सम्पूर्ण प्रकृति में अर्थात् जड़-चैतन्य प्रकृति में स्थिति पूर्ण सत्ता पारगामी होने का फलन ही है कि संपूर्ण प्रकृति सत्ता में भीगी है। फलस्वरूप बल सम्पन्नता के रूप में प्रमाणित है। सत्तामयता का प्रभाव पारगामीयता और पारदर्शिता के रूप में व्यक्त है। इसी विधि से एक परमाणु अंश के रूप में और बड़े से बड़े ग्रह-गोल जितने भी स्वरूप दिखाई पड़ते है, उन सबमें स्थिति पूर्ण सत्ता पारगामी होने के फलस्वरूप उनमें प्रकाशमानता, क्रियाशीलता और उसके मूल में बल सम्पन्नता का होना मानव सहज प्रज्ञा में (ज्ञानगोचर विधि से) देखना-समझना बन चुका हैं।

दृष्टा पद प्रतिष्ठा की अभिव्यक्ति जागृत जीवन एवं जागृति पूर्ण मानव परंपरा में प्रमाणित होना ही ज्ञानावस्था की मौलिकता है। अर्थात् जागृतिपूर्ण जीवन मानव परंपरा में ही व्यक्त होता है। इसी अभिव्यक्ति में दृष्टा पद प्रतिष्ठा प्रमाणित होता है। दृष्टा पद जागृति का स्वरूप है। शरीर के द्वारा 'जीवन' व्यक्त होना जीवावस्था से ही प्रमाणित है जबकि मानव शरीर द्वारा जीवन लक्ष्य सहज जागृति प्रमाणित हो जाता है। इस अभिव्यक्ति में मध्यस्थ सत्ता, मध्यस्थ क्रिया, मध्यस्थ बल, मध्यस्थ शक्ति, मध्यस्थ जीवन सहज प्रमाण ही मानव परंपरा का एकमात्र सहज मार्ग है। अतएव मानव परंपरा की अनिवार्यता सहज ही विदित होता है। अस्तित्व स्वयं नित्य सहअस्तित्व है इसलिये जागृत जीवन सहअस्तित्व में तृप्त होता है। ऐसी तृप्ति का बहुमुखी अभिव्यक्ति ही परंपरा के नाम से ख्यात होता है। अस्तु, मध्यस्थ जीवन, मध्यस्थ क्रिया, मध्यस्थ सत्ता, बल और शक्ति सहज वैभव के संबंध में प्रतिपादन और व्याख्याएँ प्रस्तुत है। यही मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद है।

अनुभव परंपरा में यह देखा गया है कि मानव ही प्रमाण का आधार और गति है। अभिव्यक्ति संप्रेषणा क्रम में वाङ्गमय एक साधन है। वाङ्गमय में कहा हुआ, सुना हुआ, इंगित किया हुआ और इंगित हुआ, अनुमान प्रस्तुत किया गया, अनुमान सम्पन्न हुआ गया बोधगामी हुआ और बोधगम्य हुआ। इन स्थितियों को वाङ्गमय में कहा-सुना ही जा सकता है। इससे अधिक कुछ होता है - अवधारणा और बोध संबंधी अनुमान ही बन सकते हैं। इसी अनुमान के पुष्टि में चित्रण-चित्र को देखने का स्वीकृति भी होना पाया जाता है। इसी

प्रकार संपूर्ण चित्रण और वाङ्गमय सुनने देखने की क्रिया को पूरा करता है। पढ़ना भी सुनना ही है। यह जिम्मेदारी के साथ पढ़ने पर सुनना बनता है, इसको देखा गया है।

चित्रण विधि का अनेक विधियाँ बनते हैं। जागृत व्यक्ति अपने उद्गार को चित्रित कर सकते है और भाषा-साहित्य को कला सहित सत्य आस्वादन सूत्र से सूत्रित कर सकते हैं। विचार और चिन्तनशीलता के लिये अबोध व्यक्ति में अनुमान सहज मानसिक परिस्थितियाँ बनता है और जागृत व्यक्ति के सम्मुख अनुभव सहज कसौटी में परीक्षण करने के लिये सहज वस्तु के रूप में होते है। अतएव सत्यबोध और अनुभव जिनमें सम्पन्न हुआ रहता है उनका अनुमोदन और मूल्यांकन सदा-सदा उपलब्ध रहता है। इसी प्रामाणिकता पूर्ण परंपरा क्रम में हर बिन्दुओं, हर आयामों, दिशा, कोण, परिप्रेक्षयों में सार्थकता सहज मूल्यांकन होता है फलस्वरूप समाधान केन्द्रित विधि से सम्पूर्ण आयामों में मानव सहज जागृति सार्थक होना स्वाभाविक है। इसलिये जागृत परंपरा की आवश्यकता है।

स्पष्ट रूप में यह विदित है कि अस्तित्व में व्यवस्था का मूल स्रोत और आधार परमाणु ही है। हर प्रजाति सहज परमाणु में मध्य में अंश अथवा अंशों का होना देखा गया है। इसी के साथ जड़-चैतन्य प्रकृति के रूप में मूलत: परमाणुएँ विभाजित है। जड़ परमाणुएँ अणु और अणुरचित रचना सहित भौतिक-रासायनिक क्रियाकलापों में भागीदारी करना देखा जाता है। चैतन्य प्रकृति जीवनी क्रम, जागृति क्रम, जागृति और जागृति पूर्णता को प्रकाशित करने, व्यक्त करने और संप्रेषित करने/होने के क्रम में द्दष्टव्य है। चैतन्य परमाणु में भी मध्यांश का होना स्वाभाविक है और देखा गया है। चैतन्य परमाणु में मध्य में एक ही अंश होता है और मध्यस्थ क्रिया के रूप में वह सतत् कार्यरत रहता है। जबकि जड़ परमाणुओं में भी मध्यस्थ क्रिया सहज कार्य करने वाला एक ही अंश होता है, परन्तु मध्य में एक से अधिक अंशों का समावेश भी रहता है। इसमें खूबी यही है जड़-परमाणुओं में मध्यांश के मध्यस्थ क्रिया सहज कार्य करने वाले और भी अंश उसके साथ जुड़े रहते है, कुछ अंश मध्य भाग में रहते हुए सम-विषमात्मक कार्य के लिये संतुलित बनाने के लिए सहायक बने रहते हैं। यही मुख्य कारण है जड़ परमाणुओं में प्रस्थापन-विस्थापन होने का। इसकी आवश्यकता इसलिये अनिवार्य है कि परमाणुओं में ही विकास क्रम, विकास प्रमाणित होता है और विकास प्रमाणित होने के लिये प्रस्थापन-विस्थापन अनिवार्य रहता ही है और अनेक यथास्थितियों के लिए सार्थक है।

चैतन्य इकाई रूपी परमाणु 'जीवन' में प्रस्थापन, विस्थापन सदा-सदा के लिये शून्य रहता है। इसी आधार पर मध्यांश रूप में एक ही अंश कार्यरत रहता है। फलस्वरूप भारबन्धन से मुक्त रहता है। भारबन्धन से मुक्त होने का फलन है अणुबन्धन से मुक्त होने का सूत्र। गठनपूर्णता के अनन्तर स्वाभाविक रूप में

परिणाम का अमरत्व जो परमाणु में क्रिया का आशय अथवा दिशा बनी रहती है, जिसके आधार पर ही विकास के साथ जागृति सुनिश्चित बनी रहती है। विकास का मंजिल ही परिणाम का अमरत्व होना देखा गया है। यह भी देखा गया है परावर्तन, प्रत्यावर्तन मध्यस्थ क्रिया का नित्य कार्य है। क्रियापूर्णता व आचरणपूर्णता, जागृति का द्योतक होना स्पष्ट हो चुकी है। क्रियापूर्णता पूर्वक ही मानवीयतापूर्ण संचेतना (जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह करना) सार्थक हो जाता है। आचरणपूर्णता में जागृति पूर्णता, गति का गंतव्य सार्थक होना देखा गया है। यही मुक्ति पद का प्रमाण है। दिव्यमानव का स्वरूप यही है।

'दिव्यमानव' पद में दृष्टा-पद प्रतिष्ठा सार्थक अर्थात् सम्पूर्ण अभिव्यक्ति हो जाता है। यही 'दिव्यमानव'-देवमानव और मानव के लिये प्रेरक होते है। सभी दिव्यमानव का समान कारकता, प्रेरकता प्रमाणित होती है। क्योंकि सम्पूर्ण सार्थक प्रेरणाएँ मानवापेक्षा, जीवनापेक्षा के अर्थ में ही होता है। यही 'दिव्यमानव' अमानव को मानव पद में स्वत्व, स्वतंत्रता अधिकार पूर्वक जीने की कला सहित प्रेरक होना पाया जाता है। इस धरती में एक भी आदमी पशु मानव-राक्षस मानव पद को स्वीकारते नहीं है। यही जागृति पूर्णता की अपेक्षा बनी ही रहती है। जागृति और जागृतिपूर्णता की सहज संभावना जागृत परंपरा के रूप में समीचीन रहना आवश्यक है। अनुसंधान के रूप में समीचीन रहता ही है।

जीवन में आत्मा अविभाज्य स्वरूप है। यह मध्यस्थ क्रिया होने के कारण ही जीवन सहज संपूर्ण क्रियाकलाप को नियंत्रित, संतुलित और प्रेरित करता ही है। यह भी स्पष्ट हो चुका है आत्मा ही दृष्टा पद प्रतिष्ठा सहित अनुभव क्रिया के रूप में वैभवित होना फलस्वरूप जीवन के क्रियाकलापों में अनुभव ही प्रभावशील होना देखा गया है। यही अनुभव जागृतिपूर्णता का स्वरूप होने के कारण स्वाभाविक रूप में अनुभव को संप्रेषित करना सहज सुलभ, अनिवार्य और परम प्रमाण होना स्पष्ट है।

जागृति पूर्णता पूर्वक ही अस्तित्व में दृष्टा वैभव मानव परंपरा में ही समीचीन होने की सत्यता को स्पष्ट किया जा चुका है। ऐसी महिमा सम्पन्न जागृति अर्थात् अनुभव से यह सत्यापन स्वाभाविक है कि मूलत: अस्तित्व ही सम्पूर्ण दृश्य है और दृश्यमान है। दृश्यमानता देखने का तात्पर्य में, समझने के विधि से सम्पूर्णता समझ में आता है।

अस्तित्व ही सहअस्तित्व सहज परम सत्य है। इसे स्थिति सत्य के रूप में देखा गया है। स्थिति सत्य अपने स्वरूप में ही दृष्टा सहित सत्ता में संपृक्त जड़-चैतन्य प्रकृति है। इस प्रकार सम्पूर्ण अस्तित्व ही दृश्य, दृश्यमान फलत: समझ में आने में, अनुभव में स्पष्ट होती है जिसका सत्यापन स्वाभाविक है। यही अनुभव प्रमाण अभिव्यक्त, संप्रेषित, प्रकाशित होने का सूत्र है।

सहअस्तित्व सहज अस्तित्व नित्य वर्तमान और व्यक्त है। अव्यक्त के रूप में कोई वस्तु अस्तित्व में नहीं है। अस्तित्व में 'अव्यक्त' नाम से इंगित कोई वस्तु है ऐसा मानना, समझना भ्रम है।

'अनुभव' अस्तित्व में, से, के लिये होने के आधार पर संपूर्ण अनुभव संप्रेषणा योग्य है। इसके विपरीत अनुभव एक दूसरे को बताने योग्य नहीं है ऐसा मानना भ्रम है, भ्रम की पराकाष्ठा है।

'अनुभव' अस्तित्व में, अस्तित्व से और अस्तित्व के लिये ही होता है। इसके पुष्टि में चैतन्य इकाई रूपी जीवन अस्तित्व में अविभाज्य है, सत्ता में संपृक्त है। सत्ता पारदर्शी और पारगामी होना-अनुभव में स्पष्ट होती है। इसके विपरीत कोई भी सम्पूर्णता को देख सके, सत्यापित कर सके, यह संभव नहीं है। सत्ता सहज व्यापकता, पारगामीयता-पारदर्शीयता को जागृत जीवन अनुभवपूर्वक सत्यापित करता है, सभी जागृत जीवन सत्यापित कर सकते हैं। इसके विपरीत सत्ता सहज वस्तु के लिये प्रयोजित ब्रह्म, ईश्वर, परमात्मा नाम लेकर इसे अव्यक्त मानना, इसे वाणी से उद्घाटित नहीं किया जा सकता है-ऐसा मानना भ्रम की पराकाष्ठा है।

'जीवन' नित्य होने के कारण अर्थात् 'जीवन' अपने स्वरूप में नित्य और अमर होने के कारण अस्तित्व में ही वर्तमान रहता है। यही शरीर यात्रा समय में मानव कहलाते हैं, शरीर त्यागने के उपरांत यही देवी देवता, भूत-प्रेत कहलाते हैं। इसके विपरीत देवी-देवताओं को अव्यक्त, अदृश्य, नहीं समझ में आने योग्य मानना, इसे समझने के लिये अनिश्चित समय तक ध्यान, उपासना, आराधना प्रार्थना करना है-ऐसा प्रमाण विहीन उपदेश देते हैं। यह सर्वथा भ्रम है।

अस्तित्व में अनुभव ही परम प्रमाण के रूप में सर्वतोमुखी समाधान सहज विधि से प्रमाणित होता है। हर व्यक्ति जागृतिपूर्वक इसे प्रमाणित कर सकता है। इसकी आवश्यकता सब में विद्यमान है यही सार्वभौम व्यवस्था अखण्ड समाज है। इसके विपरीत यह मानना सर्वथा भ्रम है कि समाधान अपना-अपना और सत्य अपना-अपना होता है।

हर मानव समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व व उसकी निरंतरता विधि से जीना चाहता है। इसके लिये अनुभवमूलक शिक्षा-संस्कार विधि समीचीन है। इसके विपरीत यह मानना कि मानव कभी सुधर नहीं सकता यह सर्वथा भ्रम है। हर मानव संबंध, मूल्य, मूल्यांकन, उभयतृप्ति पूर्वक परिवार मानव होना चाहता है इसके नित्य सफलता के लिये मानवीयतापूर्ण शिक्षा-संस्कार समीचीन है। यह अनुभवमूलक विधि से प्रमाणित होना पाया जाता है। मानव संबंधों में निरंतर मूल्यों का अनुभव कर सकता है। इसे सफल बनाने

का कार्य-विचार-व्यवहार विधि को अनदेखी करते हुए यह मानना कि बैर विहीन परिवार नहीं हो सकता और बैर रहेगा ही, दुख रहेगा ही इन्हें सत्य कहकर अपने भ्रम को दूर-दूर तक फैलाना है।

यह देखा गया है कि जागृत प्रमाणित व्यक्ति से हम प्रेरणा पाकर स्वयं जागृत होना नियति सहज है, इसकी संभावना नित्य समीचीन है। इसे पहचानने के स्थान पर और व्यवहार में न्याय प्रमाणित करने के स्थान पर यह मानना कि देवी, देवता, सिद्ध लोग ही हमको तारेगें, हम स्वयं से तरने योग्य नहीं है, सर्वथा भ्रम है।

हर परिवार मानव समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व पूर्वक परिवार परंपरा को निर्वाह करने योग्य है, चाहते हैं और इसे एक दूसरे के पूरक विधि से निर्वाह करते हैं, और कर सकते हैं। इसके लिए अनुभवमूलक प्रमाण, पद्धति, प्रणाली समीचीन है। इसे अनदेखी करते हुए यह मानना कि मूलत: मानव पराधीन है, वह सामान्य आकांक्षा (आहार, आवास, अलंकार) सम्बन्धी वस्तुओं से ही सम्पन्न हो सकता है इसलिये इसमें विपन्नता बना ही रहेगा। इनको सहायता की आवश्यकता है इसी मुद्दे पर नेतृत्व विधि से हर व्यक्ति की विपन्नता को जताना, लादना, मनवाना भ्रम है ही।

मानव जन्म से ही न्याय का याचक, सही कार्य-व्यवहार करने का इच्छुक और सत्य वक्ता होता है। परंपरा सहज विधि से (शिक्षा-संस्कार, संविधान और व्यवस्थापूर्वक) हर व्यक्ति में न्याय प्रदायी क्षमता, सही कार्य व्यवहार करने की योग्यता सत्यबोध करने-कराने की परमावश्यकता है। यह अनुभवमूलक मानव परंपरा में ही सार्थक होता है। इसे अनदेखी करते हुए हर व्यक्ति को जन्म से ही स्वार्थी, अज्ञानी और पापी इतना ही नहीं अपराधी, गलती करने वाला मानना, कहना, कहलाना, करने के लिये सम्मति देना भ्रम की पराकाष्ठा है।

हर व्यक्ति परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था में भागीदारी करने के लिये इच्छुक है, उत्साहित है। इसी के साथ बैरविहीन, सामरस्यता पूर्ण 'परिवार मानव' के रूप में जीने देकर, जीना चाहता है। यह मानव सहज स्वतंत्रता और स्वराज्य का उद्गार रूप में सर्वेक्षित है। इसे सफल बनाने के लिये अनुभवमूलक विधि से समीचीन है। इसके विपरीत शक्ति केन्द्रित शासन-संविधान जिसकी मानसिकता यथास्थिति की अपेक्षा गलती और अपराध के लिये दण्ड विधान, पड़ोसी देश और धर्म को अपना विरोधी और शत्रु होना मानते हुए इसका प्रचार पूर्वक प्रतिबद्धताओं को अर्थात् गलत मान्यताओं को हर प्रकार से मनवाना, मानने के लिये मत देना, यह समूल भ्रम पाया गया।

हर मानव परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था में कार्यरत, व्यवहाररत, परिवार और समग्र व्यवस्था में भागीदारीरत होने योग्य है और जागृति पूर्ण विधि से प्रमाणित होने योग्य है। इसके लिये अनुभवमूलक

परंपरा विधि आवश्यक एवं समीचीन है। आवश्यकतानुसार अनुसंधान न करते हुए और इसके विपरीत दासता अर्थात् ईश्वर के प्रति दासता और सामुदायिक धर्म और सामुदायिक राज्य के प्रति दासता को स्वीकार करने के लिये परंपरागत विधि से कार्यक्रमों को प्रस्तुत करना अथ से इति तक भ्रम है। जागृति सहज प्रमाण यही है हर व्यक्ति में पाये जाने वाले कल्पनाशीलता के तृप्ति बिन्दु रूपी परिवार मूलक व्यवस्था में पारंगत बनना और बनाने के लिए सहमत होना और कर्म स्वतंत्रता का तृप्ति बिंदु रूपी स्वानुशासन सहज स्वतंत्रता प्रमाणों के रूप में प्रमाणित होता है। इसे करना, कराना ही एकमात्र उपाय है। यह इस दशक से समीचीन हो गया है।

हर मानव में जागृतिपूर्वक चारों अवस्था में वैभवित वस्तुओं को उन-उन के स्वभाव गति प्रतिष्ठा में जानने, मानने, पहचानने व निर्वाह करने का अर्हता रहता ही है। उस अर्हता के अनुसार शिक्षा-संस्कार को संपन्न करने की योग्यता से वंचित रहकर उसके विपरीत आवेशित गति को ही "वैभव और आवश्यक" मानते हुए, मनाने का जितना भी कार्यकलाप है (शिक्षा, संस्कार सहित) वे सभी अथ से इति तक भ्रम है। क्योंकि सम्पूर्ण अस्तित्व सहअस्तित्व के रूप में विकास, जीवन, जीवन जागृति प्रतिष्ठा ही है।

हर व्यक्ति स्वयं में स्थिति और गति की अविभाज्यता और स्वभाव गति प्रतिष्ठा में परम जागृति होना एवं दूसरे के लिये पूरक होना चाहता है और ऐसा होने के लिये अर्थात् प्रमाणित होने के लिये सम्पूर्ण अनुभवमूलक विधि सहज पारंगत प्रणाली समीचीन है। इसे अनदेखी करते हुए आवेशित गति और संघर्ष के लिये मानव परंपरा को प्रेरित और विवश करना और रहना अथ से इति तक भ्रम है।

हर मानव चारों अवस्थाओं को उन-उनके स्वभाव गति प्रतिष्ठा को जानने, मानने और पहचानने, निर्वाह करने योग्य हैं। साथ ही रासायनिक-भौतिक रचना-विरचना को स्वीकारने और जीवन के अमरत्व को समझने, स्वीकारने योग्य और सत्य बोधपूर्ण होने योग्य और अनुभवमूलक विधि से प्रमाणित करने-कराने योग्य हैं। इन्हें अनदेखी करते हुए शरीर को ही जीवन समझते हुए, समझदार होने का दावा करते हुए इस पर लिये गये निर्णयों के अनुसार स्थापित किये गये परंपरा अथ से इति तक भ्रम है। इतना ही नहीं शरीर को ही जीवन समझाने के क्रम में ही मानव को जीव-जानवर सम्बोधित किया यह अत्यंत भ्रम, गलती है। जबकि जीवन और शरीर के सहअस्तित्व में ही मानव परंपरा वैभवित है।

हर मानव 'त्व' सहित व्यवस्था विधि-नियम से हर इकाई में, से, के लिये मौलिकता को जानने, मानने, पहचानने व निर्वाह करने योग्य है। यह जागृतिपूर्ण शिक्षा परंपरा से लोकव्यापीकरण होता है। इसे अनदेखी करते हुए सापेक्षता को स्वीकारना स्वीकारने के लिये परंपरा को मजबूर करना अथ इति तक भ्रम है और गलती है।

मानव प्रकृति की प्रत्येक इकाई में अविभाज्य रूप, गुण, स्वभाव, धर्म रूपी माला को जानने, मानने, पहचानने व निर्वाह करने योग्य इकाई है। यह जागृतिपूर्वक हर व्यक्ति में, से, के लिये समान है। इसके लिये मानव परंपरा जागृत रहना अनिवार्य है। परंपरा इससे वंचित, विमुख, अनदेखी करते हुए विखण्डन के आधार पर अथवा गति रत वस्तु का ध्रुव बिंदु न पहचानने के आधार पर मूलत: वस्तु अस्थिर, अनिश्चित मान लेना और मना लेना आमूलत: भ्रम है और गलती है जबकि अस्तित्व स्थिर, अस्तित्व में विकास और जागृति निश्चित है।

इन्द्रिय सन्निकर्ष में ही 'अनुभव होता है' ऐसा मानना और मनवाना, इसको लोकव्यापीकरण करने का सभी उपाय तैयार करना, साथ ही लाभोन्माद, कामोन्माद और भोगोन्मादी मानसिकता को कार्यशील, प्रगतिशील, विकासशील और अत्याधुनिक मानना और मनाना अथ से इति तक भ्रम है। जबकि जीवन्त शरीर में ही इन्द्रिय सन्निकर्ष होना देखा गया है। जीवन ही शरीर को जीवन्त बनाए रखता है। सत्य भासने के लिये शरीर और जीवन का सहअस्तित्व आवश्यक है। इसी क्रम में जीवन, जागृति और जागृति पूर्णता को प्रमाणित करता है। जागृति को प्रमाणित करने की इच्छा प्रत्येक मानव में समाहित रहता ही है। इसे सार्थक और लोकव्यापीकरण करने के लिये परंपरा का जागृत होना अनिवार्य है। इसी विधि से अर्थात् जागृतिपूर्ण परंपरा विधि से ही जीवन में अविभाज्य वर्तमान मध्यस्थ क्रियारत 'आत्मा' ही अस्तित्व में अनुभव करता है, करने योग्य है।

विज्ञान और भोग, अतिभोग, संग्रह, सुविधा मानसिकता में आँखों में देखा हुआ को सत्य मान लेना और मनाता हुआ परंपरा को देखा गया है। यह अथ से इति तक भ्रम और गलत है क्योंकि गणित आँखों से अधिक और समझ से कम होता है। समझ ही प्रमाणपूर्वक परंपरा में लोकव्यापीकरण होने की वस्तु है और अनुभव ही व्यवहार में न्याय, धर्म और सत्य सहज विधि से प्रमाणित होती है। यह लोकव्यापीकरण होने के लिये परंपरा को जागृत रहना आवश्यक है।

आँखों से जो कुछ भी दिखता है वह किसी वस्तु के रूप (आकार, आयतन, घन) में से आंशिक भाग दिखाई पड़ता है। रूप का भी सम्पूर्ण भाग आँखों में आता नहीं। जबकि हर वस्तु, रूप, गुण, स्वभाव, धर्म के रूप में अविभाज्य वर्तमान है। यह जागृतिपूर्ण शिक्षा विधि से लोकव्यापीकरण होता है।

मानव से रचित यंत्र और मापदण्ड से मानव को प्रमाणित करना संभव नहीं है। परन्तु यह संभव है ऐसा मानना और शिक्षापूर्वक मनाना अत्यंत भ्रम और गलती है। जबकि मानव ही यंत्र और मापदण्ड को प्रमाणित करता है। इसके मूल में भी मानव की मान्यता ही रहती है। उल्लेखनीय घटना यह है कि विज्ञान अपने यंत्र प्रमाण के आधार पर अपने सभी बातों को मनवाता आया। इसके पहले आदर्शवादियों ने

प्राकृतिक घटनाओं और विपदाओं के आधार पर ईश्वर और ईश्वरीयता को मनवाया। जबकि यह दोनों भ्रम ही रहा। क्योंकि हर मानव जागृतिपूर्ण स्थिति में सम्पूर्ण यंत्रों और मापदण्डों से बहुत बड़ा दिखाई पड़ता है। सभी यंत्रों का चित्रण और रचना मानव ने ही किया है, यह स्पष्ट है। एक मानव जो किया है उसे हर मानव कर सकता है, जो सीखा है सभी व्यक्ति सीख सकता है। इस प्रकार इन दोनों से सभी मानव का समानता समझ में आता है। इस धरती पर अनेकानेक शताब्दियों से मानव का आवास होते हुए अभी तक यह वर्गीकृत, रेखाकरण सम्भव नहीं हो पाया कि एक व्यक्ति जो करता है, सीखता है उसे दूसरे वर्ग, संप्रदाय, मत, पंथ, धर्म कहलाने वाले सीखता नहीं है, कर नहीं सकते हैं। यह स्पष्टतया परंपरा में देखने के उपरान्त भी गोरे-काले का आवाज पंथ, संप्रदाय, मतों और धर्म के नाम से द्वेष और संघर्ष को निर्मित करने वाला आवाज देखने-सुनने में आ ही रहा है। यह अथ से इति तक भ्रम और गलती है।

मानव धर्म अर्थात् सर्वतोमुखी समाधान पर आधारित व्यवस्था में जीने देकर जीना है। इसकी सार्वभौमता सर्व स्वीकृत है। समुदाय परंपराओं में धर्म के नाम पर अनेक मान्यताओं को द्वेष सहित समुदाय के जनमानस को मनाना और स्वयं माने रहना, ऐसे मानने के लिये सम्मति देना, ये सब मूलत: अथ से इति तक भ्रम और गलतियाँ है।

जागृतिपूर्ण परंपरा में ही सार्वभौम धर्म-कर्म (मानवीयतापूर्ण धर्म-कर्म) तदनुरूप विचार शैली और व्यवहार तथा अनुभव ही संतुलित रूप और गति है। यह सर्वमानव में समान रूप से वर्तमान होना समीचीन है। यही जागृति परंपरा का स्वत्व है।

सम्पूर्ण भ्रम-निर्भ्रमता में और सम्पूर्ण गलती-सुधार में ही विलय को प्राप्त करते हैं। नेक इरादे से सम्पूर्ण आदर्शवादी परिकल्पना, दास और दासतावादी मानसिकता और यात्रा; सम्पूर्ण विज्ञान और भौतिक विचार, सुविधावादी मानसिकता के साथ-साथ प्रकृति पर शासन, दासतावादी मानसिकता से मानव पर शासन, अंततोगत्वा संघर्ष युग में अंत होता रहा। यही सभी गलतियों का अंतिम परिणाम रहा। इस दशक तक पुन: भाषा में इंगित कराए सुविधा और युद्ध ही मानव परंपरा को अपने पंजे में जकड़ लिया है। यही सम्पूर्ण गलती का फल है।

इन समस्त गलतियों का सुधार अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिन्तन ही है।

अध्याय - 5

बन्धन और मुक्ति

बन्धन और मोक्ष शब्द लोक प्रसिद्ध है। इन दोनों मुद्दे पर बहुत कुछ कथन, वाङ्गमय, सर्वोपरि पावन ग्रंथ के रूप में और विभिन्न परम्परा में मान्यताओं के रूप में देखा गया। पहला, वस्तु के रूप में कौन सी चीज है जो बन्धन में पड़ा रहता हैं - मानव में सभी प्रकार के संकट का कारण है। दूसरा, वस्तु के रूप में ऐसा कौन-सा चीज है जो बाँधकर रखता है? तीसरा, वस्तु के रूप में वह कौन-सी चीज है जो मुक्ति दिलाता है?

यह तीनों 'वस्तु' के रूप में कहाँ है? क्यों ऐसे बन्धन कृत्य को करता है? जो बन्धन में था मुक्ति पाने के बाद उसका प्रयोजन क्या है?

स्वाभाविक तर्क है बन्धन में आने वाला यदि कोई वस्तु है, बाँधकर रखने वाला वस्तु उससे शक्तिशाली होना आवश्यक है। यदि बन्धन से मुक्त करने वाली कोई चीज है वह बाँधकर रखने वाले से भिन्न हो ऐसे स्थिति में वह उससे शक्तिशाली होना अनिवार्य है। इससे आगे की तर्क स्वयं-स्फूर्त होकर प्रस्तुत होता है जो बाँधता है वही खोल सकता (मुक्त करता) है। इस क्रम में बाँधने का क्या प्रयोजन है? अथ से इति तक बन्धन को क्लेश और दुख ही दुख बताया गया है।

यदि बाँधने वाले से भिन्न वस्तु बन्धन में आने वाला हो उसको क्लेश देकर क्या पाना है? क्लेशित होने वाले वस्तुओं को देखकर प्रसन्न होने वाली कोई वस्तु है वह बन्धन में आयी हुई वस्तुओं के क्लेशों को देखकर प्रसन्न होने की स्थिति में यही उदाहरण आता है। पशु मानव को जैसा राक्षस मानव प्रताड़ित करे, क्लेश उत्पन्न कर स्वयं अट्टहास करता है। ऐसे दृश्य को साहित्य, कथा, परिकथा, पुण्यकथा, चित्रकथा और अभिनयों के रूप में दूरदर्शन, मंचन और प्रकाशनों के रूप में भरपूर देखने को मिलता है। यह सब मानव की कल्पना, परिकल्पना प्रकारान्तर से मानव कृत्यों का आंकलन है और मानव से रचित कथा, परिकथा, पुण्य कथाओं के रूप में स्वीकारा हुआ स्थितियाँ देखने को मिलता ही है। यदि इसी तरीके की कोई वस्तु, कोई चीज को बन्धन में डालता है वह राक्षस से तो कम हो नहीं सकता है। राक्षसीयता और पाशवीयता दोनों मानव सहज विधि से स्वीकार नहीं है। इस तर्क विधि से पता लगता है कि कोई सही वस्तु अस्तित्व में हो, वह बन्धन का कारण हो नहीं सकता क्योंकि हर मुहूर्त में, हर दिन में, हर वर्ष में, हर शताब्दी में, अच्छे आदमी देखने को मिलता है। अच्छा आदमी होने का सबसे पहला और आखरी मूल्यांकन भाषा के

रूप में अहिंसक, सहयोगी, सहकारी, सहगामियों के रूप में पहचाना जाता है। किसी न किसी अंश में हर आदमी में यह गुण होता ही है। ऐसे गुण कार्य जिनसे अधिकाधिक सम्पन्न होता है ऐसे आदमी को हम भले आदमी कहते हैं। ऐसे भले आदमी को तंग, परेशान, पीड़ित करने का कोई इरादा नहीं रखता है। तब अस्तित्व में अत्याधिक भला वस्तु यदि हो वह किसी को बंधनों से बांधकर क्लेशित कर प्रसन्न होने की कोई विधि व्यवहारिक तर्क के रूप में स्पष्ट नहीं होती। व्यवहारिक तर्क का मतलब मानव, मानव के साथ जो तर्क करता है। उसी में जो भलमनसाहत मूल्यांकित होता है इस दायरे में समुचित उत्तर निकलता नहीं है।

दूसरे विधि से बाँधने वाला बहुत दुष्ट, राक्षस और जीवों का क्लेश, दुख, पीड़ाओं को देखकर बड़ा अट्टहास करने वाला है। उनसे कोई ताकतवर वस्तु अस्तित्व में होगा जो उसके शिकंजे से छुड़ा देता है। यदि ऐसा कोई घटना, संयोग होती ऐसे ताकतवर चीज, ऐसे दुष्ट राक्षस को रहने ही नहीं देता, सबको मुक्त कर देता। ऐसा भी कुछ इस धरती में मानव के साथ प्रमाण रूप में घटित हुआ नहीं है। ऐसा होने की स्थिति में हर व्यक्ति मुक्त ही मिलता। हर व्यक्ति को परंपरा यह मूल्यांकन करता हुआ मिलता है पापी, अज्ञानी और स्वार्थी, यही बंधन का गवाही है, क्लेश का स्वरूप है। हर समुदाय परंपराएँ धार्मिक कार्यक्रमों के मूल में दोहराया करते हैं। इस तर्क विधि से भी कोई व्यवहारिक उत्तर सुलभ नहीं होती है।

इन दोनों विधि से बन्धन का कारण ही स्पष्ट नहीं हो पाता है। मोक्ष (मुक्ति) के लिये जितने भी उपाय कहे गये हैं उनमें शंका स्वाभाविक रूप में रह ही जाती है। इसलिये मोक्ष किसको हुआ, कोई प्रमाण नहीं है। मोक्ष के लिये जितने भी उपाय बताये गये हैं, उसमें से कोई एक भी विधि सबको स्वीकार हुआ नहीं और कोई भी विधि स्वीकार हुआ हो, उसका फलन अर्थात् 'मोक्ष रूप' होने का प्रमाण किसी भी परंपरा से निकल नहीं पाया। इसीलिये मोक्ष किसी को समझ में आया है, नहीं आया है, इसको कहना अथवा निश्चय करना उक्त दोनों विधि से सम्भव नहीं हुआ।

'वस्तु' के रूप में बन्धनकारी वस्तु जिसका कार्यक्रम बन्धन में डालते रहना है, बन्धन में आने वाली वस्तु और बाँधने वाले के साथ इनका संयोग विधि स्पष्ट नहीं हो पाया। इसमें सदा-सदा तर्क और कल्पना का दोहराना, नवीनीकरण करने की संभावना बना ही रहा। इसलिये अवसरानुसार नवीनीकरण करते रहे। दूसरा यह भी है विभिन्न जलवायु में रहकर कल्पना सहज तर्क को विभिन्न विधि से प्रस्तुत किया। यह सब एक जगह में देखने सुनने की स्थिति में मानव अपने पुरुषार्थ से एक दूसरे देश, द्वीप पहुँच कर एक दूसरे का भाषा, विचारों को समझने की कोशिश किया।

अनेक समुदाय परिकल्पना और उसकी समीचीनता के मुद्दे पर समीक्षा के लिये, स्मरण के लिये इतिहास भी आवश्यक है। मानव इतिहास के अनुसार नस्ल-रंग के आधार पर समुदायों को पहचाना। इसके अनन्तर वस्तु संग्रह और विपन्नता के आधार पर समुदायों को पहचाना। उसके अनन्तर आजीविका के कार्यों के आधार पर समुदायों को पहचाना गया। उसके अनन्तर भाषा, देश और विभिन्न आस्थाओं के आधार पर समुदायों को पहचाना गया। अभी, इस दशक में देशों के अर्थ में विकसित, विकासशील और अविकसित के रूप में पहचाना जा रहा है। मानव के रूप में संग्रह, सुविधा, भोग, अतिभोग, बहुभोग, इसके विपरीत विपन्नता के रूप में अधिकांश समुदायों को पहचाना जाता है। जब कभी भी लड़ाई करना होता है तब परस्पर कट्टर पंथी जाति, मत, संप्रदाय और धर्म की दुहाई दी जाती है। सभी प्रकार के समुदाय वैचारिक मतभेदों, सविपरीत अथवा परस्पर प्रतिकूल मान्यताओं के रूप में गण्य है।

ऐसे पहचाने गये सभी समुदाय बंधन और मोक्ष की चर्चा अवश्य करते हैं। बंधन के कारण को स्पष्ट न कर पाना, मोक्ष को स्पष्ट न कर पाना और मोक्ष के लिये सार्वभौम उपाय का प्रतिपादन नहीं हो पाना यही मतभेद विभिन्न संस्कृति का आधार मानने का भ्रम जाल बन गया। इस बीसवीं शताब्दी के दसवें दशक तक पूर्ववर्ती दोनों विचार धाराओं के अनुसार एक सार्वभौम दिशा, मार्ग स्पष्ट नहीं हुई, जबकि आवश्यकता बलवती होती आई है।

अस्तित्वमूलक मानव केन्द्रित चिन्तन धारा विधि से सम्पूर्ण अस्तित्व के रूप में अनुभव करने के फलस्वरूप बन्धन का स्वरूप, कारण तथा मोक्ष (मुक्ति) की आवश्यकता उसके लिये सहज और सार्वभौम उपाय अध्ययन गम्य होता है। यही अखण्ड समाज और सार्वभौम व्यवस्था का आधार सूत्र और व्याख्या भी जागृत मानव का ही आचरण है।

इस अध्याय के आरंभ से ही 'बन्धन' और 'मोक्ष' नाम के मुद्दे पर छः (6) प्रश्न है :-

1. 'वस्तु' के रूप में कौन सी चीज है जो बन्धन में पड़ा रहता है?
2. 'वस्तु' के रूप में कौन सी चीज है जो बांध कर रखती है?
3. 'वस्तु' के रूप में कौन सी चीज है जो मुक्ति दिला देता है?
4. 'वस्तु' के रूप में ऊपर कहे गये 'तीनों' कहाँ है?
5. क्यों ऐसे बन्धन कृत्य को करता है?
6. जो बन्धन था, मुक्ति पाने के बाद उसका प्रयोजन क्या है?

इसी के साथ-साथ 'वस्तु' क्या है? 'अवस्तु' क्या है? यह अस्तित्व में कहाँ, कैसे और क्यों है? इन सबका सार्थक उत्तर मानव आदिकाल से ही ढूंढ़ता रहा है अथवा जब से आदर्शवाद का आरंभ हुआ है उसी समय से ही विविध प्रकार से प्रश्न-उत्तर होते रहे।

जागृति के अनन्तर यह देखा गया है अस्तित्व में ही अभिव्यक्ति है, दूसरे भाषा में अस्तित्व ही सम्पूर्ण अभिव्यक्ति है। सहअस्तित्व स्वयं अनन्त रचना के रूप व्यापक सत्ता में सम्पृक्त है। ऐसे रचनाओं में से एक रचना यह धरती है। इस धरती जैसी अनेक धरती हैं। इस धरती में जो चार अवस्थाएँ अभिव्यक्त हुई है ये अस्तित्व में थी ही, इसलिये इस धरती पर भी व्यक्त हुई। इस धरती में जो कुछ भी अभिव्यक्तियाँ समायी हुई हैं उनकी कार्य विधि, स्वरूप विधि, रचना विधि इसी धरती में ही समायी थी, इसीलिये चारों अवस्थाओं की अभिव्यक्ति स्पष्ट हुई है। इस विधि से भी स्वाभाविक रूप में परमाणु ही व्यवस्था का मूल स्वरूप कार्य रचना है यह तथ्य स्पष्ट हुआ। इसके साथ यह भी निश्चयन होता है, विघटन और विखण्डन विधि से व्यवस्था का स्वरूप और कार्य-सूत्र निष्पन्न नहीं होता। इसीलिये गठन, संगठन, रचना के लिए द्रव्य की आवश्यकता बना ही रहता है, इसलिए विरचना परंपरा होना स्पष्ट है, ऐसे विरचना प्राकृतिक है। परमाणु में गठन ही गठनपूर्णता और उसकी अक्षुण्णता, निरंतरता क्रम में चैतन्य इकाई जीवनपद, जीवनीक्रम, जागृतिक्रम और जागृति को व्यक्त, अभिव्यक्त करने के लिए ही सतत कार्यरत है। गठनपूर्णतावश 'जीवन' नित्य होना ही चैतन्य पद की मौलिक स्थिति और गति है। रासायनिक-भौतिक द्रव्य रूपी वस्तुओं में, से, के लिए रचना-विरचना मौलिक कार्य है। सम्पूर्ण द्रव्य और रासायनिक-भौतिक द्रव्य विकासशील, विकासक्रम में कार्यरत रहना, भागीदारी करना और सार्थक होना देखा गया है। भौतिक वस्तुएँ अपने-अपने परमाणु प्रजाति के अनुसार 'त्व' सहित व्यवस्था के रूप में व्यक्त है। प्राणावस्था भौतिक-रासायनिक रचना के रूप में 'त्व' सहित व्यवस्था के रूप में व्यक्त है। संपूर्ण जीव संसार जड़-चैतन्य के सहअस्तित्व में जीवनीय क्रम विधि से अर्थात् वंशानुक्रम विधि से हर प्रजाति की जीव प्रकृति वंशानुषंगीय विधि से 'त्व' सहित व्यवस्था होना और मानव 'मानवत्व' सहित व्यवस्था होने के लिए जीवन जागृति आवश्यक रहे आया है। अभी तक मानव नाम से इंगित वस्तु की सार्वभौमता को पहचानना ही शेष था- अस्तित्वमूलक मानव केन्द्रित चिन्तन विधि से यह सम्भव हो गया है।

मानव परंपरा में हर संतान अथवा हर मानव कल्पना सहज स्वीकृति के रूप में जागृति को वरना देखा गया है। हर मानव रूपी वस्तु, हर स्थिति, हर गति के प्रति जागृत होना चाहता है, हर संबंधों को पहचानना चाहता है जागृत होना चाहता है और इन सबके मूल में सुखी होना चाहता है। इस क्रम में इन्द्रिय सन्निकर्ष विधि से सुखी होने के लिये तमाम विधियों को अपनाते हुए संग्रह सुविधा के चक्कर में आदमी फँस गया।

संग्रह विहीन स्थिति में व्यक्ति अपने को निरीह अकेले पाता है। संग्रह के आधार पर ही भोग, अतिभोग का आस्वादन किया जाना मान लिया गया है। फलस्वरूप संग्रह का आवश्यकता और विस्तार उसके अनुकूल शोषण प्रवृत्ति, कार्य, तरीके तैयार होते गये। बंधन के व्यवहार रूप को इसी स्वरूप में देखा गया है। हर कार्य और तरीके के मूल में मानसिकता (आशा, विचार, इच्छा) का होना सुस्पष्ट है। जीवन ही मानसिकता के रूप में कार्य करना स्पष्ट है।

1. **वस्तु के रूप में कौन सी चीज है जो बन्धन में पड़ा रहता है**?

भ्रमित जीवन ही बन्धन के रूप में अपने को चार विषय पाँच संवेदनाओं को राजी करने के रूप में व्यक्त करता है। यही मानव परंपरा में मानसिकता का अर्थ है। जीवन में मन, वृत्ति, चित्त, बुद्धि और आत्मा अक्षय बलों के रूप में कार्यरत रहना और आशा, विचार, इच्छा, ऋतम्भरा और प्रमाण अक्षय शक्ति के रूप में कार्यरत रहना स्पष्ट हो चुकी है।

2. **'वस्तु' के रूप में कौन सी चीज है जो बाँधकर रखती है**?

उत्तर में यही मिलता है कि कोई वस्तु अस्तित्व में ऐसी नहीं है जो जीवन को बंधन में डालती हो। अस्तित्व स्वयं ही सहअस्तित्व होने के कारण नित्य व्यवस्था सहज प्रेरणा सूत्र है। जीवन जागृति के अनन्तर व्यवस्था में जीने की संभावना हर मानव के लिए समीचीन है।

इससे स्पष्ट है जीवन लक्ष्य रूपी जागृति और जागृति पूर्णता के पहले जो स्थिति-गतियाँ आशा, विचार और इच्छा-प्रिय, हित, लाभ, भय, प्रलोभन और आस्था और इनके संयोग योग से जितने भी क्रियाकलाप होते हैं ये भ्रम रूप होना देखा गया है। यही बन्धन है। अनुभव रूपी सहअस्तित्व में प्रमाण - मानव चेतना, देव चेतना, दिव्य चेतना क्रम है।

3. **वस्तु के रूप में कौन सी चीज है जो मुक्ति दिला दे**?

जीवन जागृति अर्थात् तीनों विकसित चेतना पूर्वक स्वयं में, स्वयं से, स्वयं के लिये भ्रम मुक्ति पा लेता है। जीवन अस्तित्व सहज वस्तु होना सुस्पष्ट है क्योंकि मूल में सम्पूर्ण परमाणु वस्तु है जीवन भी एक गठनपूर्ण परमाणु होना स्पष्ट है। मुक्ति दिला सकने वाला जीवन से भिन्न कोई वस्तु नहीं है। 'जीवन' के लिए प्रेरक वस्तु सहअस्तित्व में स्वयं जागृत जीवन ही है क्योंकि सहअस्तित्व स्थिर है, जागृति निश्चित है।

4. '**वस्तु' के रूप में ऊपर कहे गये तीनों कहाँ है**?

अस्तित्व में ही जीवन है। जीवन अपने लक्ष्य रूपी जागृति को प्रमाणित करने के पहले भ्रमित रहता है। जैसे सही करने के पहले गलती करता है। परम जागृति जीवन का लक्ष्य है और परम जागृति अस्तित्व में अनुभव सहज प्रमाण ही है। इस प्रकार जीवन जागृति क्रम में भ्रम बन्धन को व्यक्त करता है, पीड़ित होता है, फलस्वरूप जागृत होने की आवश्यकता बनती है। इस प्रकार अस्तित्व नित्य वर्तमान, अस्तित्व में जीवनी क्रम, जीवन जागृति क्रम, जागृति और जागृति पूर्णता अस्तित्व सहज जीवन में, से, के लिए सम्पूर्ण प्रमाण सहज क्रियाकलाप है।

5. **क्यों ऐसे बन्धन कृत्य को करता है**?

जीवन जागृति क्रम सहज विधि से भ्रम बन्धन का पीड़ा अपने आप स्पष्ट होता है। इसे जीवन ही स्वीकारता है। भ्रमात्मक कार्यकलाप जीवन में से साढ़े चार क्रिया के रूप में ही निष्पन्न होती है। जीवन में जागृति दस क्रिया के रूप में होना एक आवश्यक मंजिल होना, उसकी निरंतरता प्रमाण रूप में स्वाभाविक होना देखा गया। भ्रमबन्धन पूर्वक मानव परंपरा अनेक समुदायों में है, जागृति और जागृति पूर्णता उसकी निरन्तरता सहज वैभव के रूप में अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था वैभवित होती है। इस प्रकार अस्तित्व में भ्रम बन्धन को व्यक्त करने का वस्तु जीवन है। भ्रम को स्वीकारने वाला वस्तु जीवन ही है और भ्रम बन्धन से पीड़ित होने वाला वस्तु जीवन ही है एवं जागृत होने वाले वस्तु जीवन ही है। उसकी जागृति की निरन्तरता को व्यक्त करने वाला भी जीवन ही है। जीवन सहअस्तित्व में अविभाज्य है। जागृति क्रम में भ्रम बंधन रूप में, जागृति भ्रम मुक्ति है।

6. **जो बन्धन था, मुक्ति पाने के बाद उसका प्रयोजन क्या है**?

जीवन जागृति अर्थात् मानव चेतना, देव चेतना पूर्णता में, दिव्य चेतना सहज प्रमाण और जागृति पूर्णता के अनन्तर उसकी निरंतरता का परंपरा के रूप में होना नियति क्रम व्यवस्था है। इस सत्यता के आधार पर जागृति पूर्णता विधि से मानव परंपरा वैभवित होना ही इसका प्रयोजन है। जीवन नित्य होने के कारण जागृति भी नित्य होना स्वाभाविक है। इन क्रम में बन्धन, भ्रम, समस्या से ग्रसित **बुद्धिजीवी बनाम शब्दजीवी** में यह तर्क उत्पन्न होना स्वाभाविक है कि जागृति क्रम की भी निरंतरता होना चाहिए। इसके लिए जागृति पूर्ण प्रणाली से उत्तर यही है कि जागृति क्रम विधि से जीवन अथवा भ्रम बन्धन विधि से जीवन शैशवकाल से शरीर संचालन करता हुआ मानव संतान जागृत होने का अभिलाषा सहित व्यक्त होने के आधार पर अथवा प्रकाशित होने के आधार पर जागृति क्रम और जागृति पूर्ण परंपरा स्वाभाविक रूप में सहज विधि

से ही जागृति प्रतिष्ठा स्थापित करना सहज है। क्योंकि जागृत परंपरा में स्वायत्त मानव के लिए अति आवश्यकीय शिक्षा-संस्कार सहज रूप में उपलब्ध रहता ही है। अतएव भ्रमबन्धन का निरन्तरता केवल जीवावस्था में ही प्रमाणित होता है। मानवीयतापूर्ण मानव परंपरा में, से, के लिए भ्रमबन्धन की आवश्यकता सर्वथा निरर्थक, अनावश्यक होना पाया गया है।

सर्वप्रथम भ्रम और बन्धन का कार्य रूप, परमाणु में अणु बंधन, भार बन्धन से मुक्ति के अनन्तर; भ्रम ही आशा बन्धन रूप में व्यक्त होना जीव संसार में प्रमाणित होता है। चैतन्य पद में प्रतिष्ठित होने पर आशा, विचार का क्रियाशीलता, कम से कम आशा की क्रियाशीलता होना पाया जाता है। इसका प्रमाण रूप जीवन स्वयं अपने कार्य गतिपथ को अपने ही आशानुरूप स्थापित कर लेता है। आशा का मूल सूत्र जीने की आशा ही है। जीने की आशा जीवनगत मन सहज आस्वादनापेक्षा का प्रकाशन है। यही जीवावस्था में स्पष्ट है।

गठनशील से गठनपूर्ण परमाणु बनना ही संक्रमण है। संक्रमण का स्वरूप और कार्य निश्चित बिंदु के पहले और बाद की मध्य रेखा ही है जिसकी लम्बाई-चौड़ाई-मोटाई कुछ भी नहीं रहती है। इस संक्रमण गामी परिणाम को केवल मानव अपने दृष्टा पद प्रतिष्ठा महिमावश समझना परम सहज और परम आवश्यक है। यह संक्रमण के अनन्तर जीवन सहज कार्य प्रतिष्ठा को किसी भी यंत्र से या मानव आँखों से देखना सम्भव नहीं है क्योंकि आँखों से गणितीय भाषा अधिक है अर्थात् आँखों से जितना इंगित हो पाता है उससे अधिक गणितीय भाषा से इंगित होना देखा गया है। गणितीय भाषा से अधिक गुणात्मक भाषाओं से परस्पर मानव में इंगित होना देखा गया है और गुणात्मक भाषा से तथा गणितात्मक भाषा से जितना इंगित हुआ है उससे अधिक और सम्पूर्णता कारणात्मक भाषा से इंगित होना पाया गया है। इंगित होने का तात्पर्य, प्रयोजन सहित वस्तु स्वरूप सर्वस्व को जानना-मानना और पहचानने से है इसलिए मानव भाषा कारण-गुण-गणितात्मक है।

रूप सहज अस्तित्व में, से आंशिक भाग आँखों से इंगित होता है। गणित के द्वारा सम्पूर्ण रूप और आंशिक गुण इंगित होता है, गुण का तात्पर्य प्रभाव सहित गति है। सम्पूर्ण गुण और स्वभाव गुणात्मक भाषा से इंगित होता है। कारणात्मक भाषा विधि से स्वभाव-धर्म इंगित होता है और 'अस्तित्व समग्र' इंगित होता है। इस विधि से मानव भाषा अपने आप सुस्पष्ट है।

इससे यह पता चलता है कि प्रकृति ही जड़-चैतन्य स्वरूप में है तथा जड़ प्रकृति ही चैतन्य प्रकृति में संक्रमित होता है। चैतन्य प्रकृति जब तक जीने की आशा से सीमित रहती है तब तक जीवनी क्रम के रूप में ही प्रिय, हित, लाभात्मक दृष्टियों का आंशिक प्रयोग करते हुए जीवनी क्रम के परम्पराओं को बनाये रखने

के रूप में साक्षित है। यही भ्रम का प्रथम चरण है। इस चरण में भ्रम की पीड़ा या बन्धन की पीड़ा प्रभावित प्रमाणित नहीं होती है। इसके साथ तर्क रूप में यह संशय हो सकता है कि भ्रम की पीड़ा के बिना किस विधि से जागृति क्रम में मानव ने आरंभ किया ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि इसके पहले प्राणकोषाओं में रचना विधि सूत्रित रहना एक रचना विधि परंपरा के रूप में स्थापित होने के उपरांत रचनासूत्र अपने ही उत्सव सहज अनुसंधान क्रम में अन्य प्रकार की रचना विधि को स्वीकारा रहता है। इसी आधार पर पहले किसी न किसी शरीर और वंश के माध्यम से अग्रिम वंश के लिए योग्य शरीर निष्पन्न हो जाती है। इसका मूल तत्व रचनासूत्र में होने वाली तृप्ति का उत्कर्ष ही है। रचनाक्रम और विधियाँ जब वंश और बीज के रूप में स्थापित हो जाती है, वह रचनासूत्र अपने आप में तृप्त होना स्वाभाविक ही है। इसी प्रकार रचनासूत्र अपने कार्य कलापों के साथ अग्रिम कार्यकलापों के लिए अपने तत्परता को अर्पित करते हैं फलस्वरूप अनुसंधानात्मक रचनासूत्र स्वीकृति सम्पन्न हो जाता है। यही अनुसंधानित बिन्दु है यह अनुसंधान रचना क्रम में ही समृद्ध होता हुआ देखने को मिला। इसी विधि से मानव शरीर रचना अन्य परंपरा में से निष्पन्न होने के उपरान्त मानव परंपरा सहज शरीर रचनाएँ वंशानुक्रम विधि से स्थापित हुई। मानव शरीर रचना परिष्कृत रचना होना इस प्रकार से स्पष्ट हुआ कि मानव शरीर द्वारा मानव परंपरा में सुखाभिलाषा बलवती होती आई, जबकि आरंभिक समय में जीवों के सदृश्य ही भ्रम बन्धन पूर्वक जीने की आशा सहित ही व्यक्त होना हुआ। सुख की चाह बलवती होने के फलस्वरूप ही जीवों से भिन्न तरीकों से शरीर संरक्षण विधियाँ, शरीर पोषण विधियाँ परंपरा में स्थापित हुई। इसमें विविधताएँ अवश्य रही। शरीर पोषण संरक्षण का लक्ष्य समान रहा। इसीलिये शरीर से सुखी होने की तत्परता बढ़ी। भ्रम बन्धन पहले से जीवन में समायी रही। शरीर से ही सुखी होने की तत्परता बढ़ी। सुखाभिलाषा का तृप्ति बिन्दु नहीं मिल पाया। पुरजोर से इसके लिये प्रयत्न हुआ। अतिभोग-बहुभोग के ओर पहुँचने के लिए धरती की बलि चढ़ाई गई। इस दशक तक धरती को सर्वाधिक रूप में घायल कर चुके हैं। इसमें सर्वाधिक सक्रियता से भागीदार विज्ञान संसार एवं प्रौद्योगिकी कार्यक्रम रहा और भोगवाद के आधार हर व्यक्ति का आंशिक भागीदारी होना देखा गया। इस विधि से भ्रम बन्धन के परिणाम स्वरूप अव्यवस्थावश पीड़ा बढ़ी। यह पीड़ा भी मानव द्वारा किये गये कार्यों, व्यवहारों, सूझ-बूझों के परिणाम से निष्पन्न हुई है इसमें और किसी वस्तु का हाथ नहीं है।

इसी जागृति क्रम में भय, प्रलोभन, आस्था को पहचानना बना। आस्थाएँ विरोध-विद्रोह से छूटी नहीं। युद्ध घटनाएँ बारंबार दोहराई गई किन्तु युद्ध लोकमानस में पचा नहीं। समर वाद, समर शक्ति, समर विज्ञान को बनाये रखने के लिये द्रोह, विद्रोह, शोषण, अपना-पराया का होना देखा गया। यह भी पीड़ा का एक भाग हुआ। शासन विधि में अपनाई गई (धर्मशासन, राज्यशासन) दंड विधान भी दर्द, यंत्रणा का कारण हुआ। धर्म संविधान के अनुसार महिला और पुरुषों में अधिकार भेद सर्वाधिक यंत्रणा का आधार हुआ।

परिवार में जितने भी सदस्य होते हैं उनमें अधिकार भेद ही यंत्रणा और अविश्वास का आधार हुआ। व्यापार और प्रौद्योगिकी प्रतीक मुद्रा रूपी पूंजी के आधार पर चंगुल में आ गई। इस दशक तक अधिकांश प्रौद्योगिकी, कारखानाएँ स्वचालित विधि को अपनाया गया है। इसमें सर्वाधिक पूँजी निवेशी विधि को अपनायी गई। पूँजी का संग्रहण, ब्याज प्रथा, शोषण, लाभांश के रूप में गण्य होना पाया गया। पूँजी, पूँजी से बढ़ता गया। पूँजीहीनता भी और बढ़ता गया। ये सब परिवार और प्रौद्योगिकी संस्था में भागीदारी करता हुआ लोगों में द्वेष का, ज्यादा-कम का आधार हुआ। अभी तक द्वेष, विरोध, विद्रोह विहीन परिवार परंपरा नहीं बन पाई थी। स्वायत्त मानव के रूप में प्रमाणित होने का अधिकार सम्पन्नता उसका प्रभाव नवें दशक से प्रमाणित होना शुरू हुआ। दसवें दशक में स्वायत्त मानव के उम्मीदवार बढ़ चुके हैं। ये सब पीड़ा क्रम में परिवर्तन की आवश्यकता और परिवर्तन की संभावना और परिवर्तन के प्रमाण तक पहुँचने का एक अध्याय सम्पन्न हुआ है।

जागृति क्रम विधि से पारिवारिक और सामूहिक रूप में किये गये कृत्यों के आधार पर पीड़ा बलवती होने का स्वरूप को स्पष्ट किया गया। इसी से व्यवहारिक रूप में भ्रम और बन्धन परस्पर मानव के बीच में द्वेष के रूप में, परिवार-परिवार एवं समुदाय-समुदाय के बीच में वैचारिक मतभेद, ईर्ष्या, द्वेष, भय, संघर्ष के रूप में होना देखा गया। मानसिकता के रूप में अर्थात् आशा, विचार, इच्छा के रूप में व्यक्तिवादी अहमताएँ श्रेष्ठता, संग्रह, भोग के आधार पर गण्य हुई। जीवन अपने क्रिया के रूप में आस्वादन, विश्लेषण से अधिकाधिक चित्रण क्रिया को सम्पादित किया। सम्पूर्ण चित्रण इसी धरती के वस्तुओं को उपयोग करते हुए प्रमाणित करने की विधि तैयार हुई। इस प्रकार से धरती के वस्तुओं को सर्वाधिक दोहन करने के फलस्वरूप धरती का ही संतुलन, भाँति-भाँति विधि से खंडित होना आंकलित हुआ। यही सर्वाधिक पीड़ा का आधार हुआ। अभी भी बुद्धिजीवी और विज्ञानियों में से बुद्धिजीवी अपने बुद्धिवादिता के आधार पर धरती और धरती के वातावरण के असंतुलन में अपनी भागीदारी को कम स्वीकारते हैं। दूसरी ओर विज्ञान और प्रौद्योगिकी संसार में भागीदारी करता हुआ विज्ञानी, मनीषीयों में अपने को धरती के असंतुलन में प्रधान कारक तत्व होने की स्थिति को कम लोग स्वीकारते हैं। इस मुद्दे पर पीड़ित लोगों की संख्या अभी भी न्यूनतम ही है। फिर भी पीड़ित लोगो का संख्या बढ़ रही है।

तात्विक रूप में अर्थात् जीवन अपने तत्व रूप में न्याय दृष्टि की क्रियाशीलता के लिए एक तड़प अथवा प्यास उत्पन्न हो चुकी है। विगत 50 वर्ष से शैशवकालीन मानसिकता में जन्म से ही न्याय का अपेक्षा बना रहना सर्वेक्षित हुआ। कुछ समाज सेवी संस्था भी न्याय के नाम से अपेक्षाओं को व्यक्त करते ही है। इस दशक तक न्यायालयों में न्याय का स्वरूप स्पष्ट नहीं है। लोक मानसिकता में न्याय सहज अपेक्षा बढ़ता

हुआ देखने को मिलता है। प्रिय, हित, लाभ दृष्टियों से अभी तक किये गये क्रियाकलापों से अधिकांश पराभव, विरक्ति ही हाथ लगा है। यहाँ विरक्ति का तात्पर्य किया गया का व्यर्थता को स्वीकारने से है। यह जीवन क्रिया सहज जागृति क्रम का एक सूत्र है।

भ्रमित मानव क्रियाकलाप के कारण धरती का असंतुलित होना प्रदूषण का अत्याधिक बढ़ना जिसके परिणाम स्वरूप धरती के अस्तित्व पर प्रश्नचिन्ह लगना हुआ। जनसंख्या का दबाव, मानव में प्रलोभन की पराकाष्ठा, भोग, अतिभोग मानसिकता और परस्पर द्वेष, शोषण, छीना-झपटी, लूटमार, युद्ध, बलात्कार जैसी अनेक घटनाएँ मानव के लिए पीड़ा की पराकाष्ठा बन चुकी है। मानव ने पीड़ा से मुक्ति के लिए प्रयत्न और अनुसंधान किया जिसके फलस्वरूप जागृति का मार्ग प्रशस्त हुआ। इसी आशय से "अनुभवात्मक अध्यात्मवाद" प्रस्तुत है।

आशा बन्धन के साक्ष्य में जीने की आशा विधि से सुखी होने के उद्देश्य से इन्द्रिय आस्वादन के लिए चार विषयों को लक्ष्य मान लेना बनता है। इसी के साथ जीवन शक्तियों को लगाने में तत्परता ही बन्धन के स्वरूप में होना देखा जाता है। इस स्थिति में किया जाने वाला भोग विधि भ्रम के रूप में गण्य होता है। आशा और विचार बन्धन के रूप में जब जीवन शक्तियाँ कार्यरत होते हैं तमाम तर्क और वाङ्गमय व्यक्त होना आरंभ होता है। जो जिस वाङ्गमय को प्रस्तुत करता है उसे सर्वाधिक सत्य मान लेता है। ऐसे ही भ्रमावस्था में दूसरे विधि से लिखे गये सभी वाङ्गमय को अपना विरोधी मान लेता है। जो मूल व्यक्ति वाङ्गमय स्थापित किया, जिसके प्रति लोगों की आस्था हो गई यही एक समुदाय और ऐसे अनेक समुदाय इस धरती पर होना देखा गया है। ऐसी परम्पराएँ किताब को प्रमाण माना। ऐसी अनेक आदर्श किताबें स्थापित हुई। उस-उस परंपरा में उन-उन किताबों का अनुमोदन, समर्थन करने वाले व्यक्ति आदर्श, शिष्ट व्यक्ति के रूप में मानने के लिए लोक मानस तत्पर रही है। इस दशक में भी इस प्रकार की मान्याताओं पर आधारित शिष्टता और आदर्शता देखने को मिल रहा है। यह विविध प्रकार से समुदायगत आस्थाओं के रूप में प्रवाहित होते हुए अभी तक अन्तर्विरोध और परस्पर समुदायों का विरोध समाप्त नहीं हो पाया। ये सभी परम्पराएँ उपदेश व आश्वासनों के बलबूते पर सम्मानित होना देखा जाता है। यह आशा-विचार बन्धन का ही स्वरूप है क्योंकि इन सभी समुदायों में सम्मानित विविध वाङ्गमय जो आज इस दशक में प्रस्तुत हैं, सर्वसम्मत समझदारी का निश्चयन नहीं कर पाते हैं। इसका कारण मानव का अध्ययन स्पष्ट नहीं हो पाया, अस्तित्व सहज सत्य सहअस्तित्व के रूप में स्पष्ट नहीं हो पाया।

आशा, विचार, इच्छा बन्धन को जागृति क्रम में व्यक्त होना अति आवश्यक रहा है क्योंकि इनके परिणाम में पीड़ाओं का आंकलन होना आवश्यक रहा है। इच्छा बन्धन की अभिव्यक्ति इच्छा पूर्ति के लिये धरती

का शोषण, वन का शोषण, मानव का शोषण के रूप में देखने को मिलता है। यही वैज्ञानिक, प्रौद्योगिकी तंत्र का चमत्कार रहा। सभी सामुदायिक शासन अपने विवशता सहित अपने सामरिक सामर्थ्य को बुलंद करने के लिये देशवासियों को एकता अखण्डता का नारा सहित किये जाने वाले सत्ता संघर्ष भी इच्छा बंधन क्रम में एक बुलंद प्रयास और आवाज सहित प्राप्तियाँ होना देखा जाता है। इसी क्रम में यह भी देखा गया विरक्ति, असंग्रहता का दुहाई देने वाले सभी धर्मगद्दी इच्छा बन्धन के तहत अनेक सुविधाओं को इकट्ठा करता हुआ शोषणपूर्वक अथवा परिश्रम के बलबूते पर विविध प्रकार से अपने-अपने वैभव को (इच्छा बन्धन रूपी वैभवों को) व्यक्त करता हुआ देखा गया है। इसमें जो असफल रहते हैं वे सब कुण्ठित और चिन्तित रहता हुआ देखने को मिलता है। इसी प्रकार शिक्षा गद्दी भी इच्छा बन्धन के अनुरूप ही शैक्षणिक कार्य, वाङ्गमय अभीप्साओं को स्थापित करने के कार्य में व्यस्त रहता हुआ देखने को मिला। इस दशक तक स्थापित, संचालित तथा कार्यरत शिक्षण संस्थाओं में कार्यरत व्यक्ति, प्राध्यापक, आचार्य वेतनभोगी होते हुए देखा जाता है। यह इच्छा बंधन का ही प्रमाण है और हर विद्यार्थी को नौकरी (वेतनभोगी) अथवा व्यापारी (शोषणकर्ता) के रूप में स्थापित करता है और इन दोनों क्रियाकलाप का लक्ष्य सुविधा, संग्रह, भोग ही है। यह इच्छा बन्धन का इस दसवीं दशक तक मानव परंपरा का समीक्षा है।

'भ्रम और बन्धन' की पीड़ा की पराकाष्ठा किसी न किसी को होना आवश्यक था। यह नियतिक्रम में विधिवत घटित हो ही जाता है क्योंकि अस्तित्व सहज सहअस्तित्व में परम लक्ष्य स्थिति निश्चित और स्थिर है। क्योंकि अस्तित्व स्थिर है, जागृति निश्चित है। इसे प्रमाणित होने के लिये, करने के लिये सहअस्तित्व सहज क्रिया, प्रक्रिया, प्रणाली, पद्धतियाँ अस्तित्व और जागृति के मध्य में सुस्पष्ट है। अस्तित्व का होना नित्य वर्तमान के रूप में दृष्टव्य है। सहअस्तित्व में ही ज्ञानावस्था सहज मानव प्रकृति जड़-चैतन्य के संयुक्त रूप में परम्परा सहज विधि से जागृति सहज प्रमाण होना पाया जाता है।

मानव परंपरा जागृति क्रम में इस शताब्दी के अंतिम दशक तक जूझता ही रहा है। अब जागृत परंपरा के रूप में प्रमाणित होने का सहज समीचीनता देखने को मिल रहा है क्योंकि **अनुभवमूलक संप्रेषणा सुलभ हो गया है। इसी के प्रमाण में यह ग्रंथ सूचना के रूप में प्रस्तुत है।** प्रमाण का स्त्रोत हर जागृत मानव ही है। अनुभव प्रमाण परंपरा में मानव ही मानव के लिये प्रेरक, कारक होने की विधि से लोकव्यापीकरण करता है।

भ्रम मुक्ति की कल्पना मानव परंपरा में आदिकाल से अथवा सुदूर विगत से रही है। अर्थात् भ्रम से मुक्त होने का आश्वासन वाङ्गमयों में सुदूर विगत से सुनने को मिलता है, उनका भाषा जीवन मुक्ति रही है। भाषा के रूप में यह प्रचलित है ही। मुख्य रूप में बंधन का स्वरूप, मुक्ति की आवश्यकता, उसकी समीचीनता

और लोकव्यापीकरण यही मुख्य मुद्दा जागृतिपूर्ण अभिव्यक्ति के लिये वस्तु रहा आया। यही अभी अनुभवमूलक विधि से अनुभवगामी प्रणाली पूर्वक अस्तित्व बोध, सहअस्तित्व बोध, विकास बोध, जीवन बोध, जीवन जागृति बोध, रासायनिक-भौतिक रचना-विरचना बोध संभव हो गया। ऐसे बोध कराने के क्रम में एक से अधिक मानव बोध सम्पन्न हो चुके हैं। इसी प्रमाण से यह पता लगता है कि इसका लोकव्यापीकरण संभव है।

मूल व्यक्ति, जो अनुसंधान पूर्वक सत्यापित करता है, वह सत्य, समाधान, न्याय और जागृति के संबंधों में स्वयं को प्रमाण के रूप में प्रस्तुत करता है। ऐसे सत्यापन को ही वाङ्मय कहा जा सकता है। यह दोनों स्थिति घटित होने के उपरान्त मूल व्यक्ति के रूप में प्रामाणिकता सहित प्रस्तुतियाँ बोधगम्य हो जाना ही, मूल व्यक्ति के रूप में और व्यक्ति भी जागृत बोध सम्पन्न होने का प्रमाण होता है। बोध सहज अभिव्यक्ति प्रयास में सहअस्तित्व में ही संपूर्ण वस्तु होना स्वयं मानव में, से, के लिए अनुभव होता ही है। इस विधि से अनुभवमूलक अध्ययनप्रणाली अनुभवगामी विधि को सत्यापित करती है। अध्ययन की सार्थक मंजिल अध्ययनपूर्वक इंगित वस्तुएँ विधिवत बोध होने के रूप में सार्थक हो जाता है। यह अनुभव सम्पन्न मानव से ही सफल होता है। ऐसी स्थिति के लिए इस "अनुभवात्मक अध्यात्मवाद" के रूप में प्रस्तुत है।

जागृति के अनन्तर मानव परंपरा में, से, के लिए प्रयोजन सर्वशुभ चाहने वाले मानव सहज और जागृत जीवन सहज विधि से प्रमाण रूप में सार्थक होना देखा गया। मानव सहज विधि से समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व, स्वायत्त मानव, परिवार मानव, व्यवस्था मानव और समाज मानव प्रमाणित करता है। इसमें सर्व मानव का स्वत्व, स्वतंत्रता, अधिकार होना देखा गया है इसीलिये इसका लोकव्यापीकरण समीचीन हो गया है। जीवन सहज प्रयोजन, जागृति और जागृतिपूर्णता ही है। जागृतिपूर्णता, उसकी निरन्तरता क्रम में सुख, शांति, संतोष, आनन्द अक्षुण्ण होना पाया जाता है। यह जागृतिपूर्ण मानव (दिव्यमानव) में, से, के लिए प्रमाण और प्रामाणिकता पूर्वक वैभवित होना स्वाभाविक है। यही स्वानुशासन और परम स्वतंत्रता है। यही गति का गंतव्य स्वरूप है। यह प्रमाणित होना नियति सहज विधि है। ऐसे प्रमाण मानव परंपरा में सार्थक होना देखा गया है इसलिये और प्रकार की शरीर रचना को प्रतीक्षित करने की कोई आवश्यकता नहीं है। मानव परंपरा में इस दशक में जितने भी नस्ल हैं उन सभी नस्लों में रचना का प्रधान भाग मेधस होना और वह पूर्णतया समृद्ध होना देखा गया है। अब केवल जागृतिपूर्ण परंपरा की ही आवश्यकता है। यह अनुभवमूलक प्रमाणों को लोकव्यापीकरण विधि से सार्थक होना स्वाभाविक है। यही भ्रम और बंधन मुक्ति का प्रयोजन मानव परंपरा में सुलभ होती है।

जागृतिपूर्ण परंपरा में ही सर्वमानव व्यवस्था में जीना, समग्र व्यवस्था में भागीदारी को निर्वाह करना स्वाभाविक है, अनिवार्य है और आवश्यक है। व्यवस्था में जीने देकर जीना परिवार में ही प्रमाणित होता है। इसके मूल में मानव में स्वायत्तता अति अनिवार्य स्थिति है। व्यवस्था में जीने का फलन ही समाधान, समृद्धि का प्रमाण और अभय, सहअस्तित्व का सूत्र होना देखा गया है। स्वायत्त मानव का स्वरूप पहले स्पष्ट किया जा चुका है। ऐसे स्वायत्त मानव से जागृतिपूर्ण शिक्षा प्रणाली, पद्धति, नीतिपूर्वक सर्वसुलभ हो जाती है। यही भ्रम (बन्धन) मुक्त मानव परंपरा का सूत्र है। इसके क्रियान्वयन क्रम में परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था, ग्राम परिवार और विश्व परिवार के रूप में गठित होने, साकार होने और क्रियारत होने की पूर्ण संभावना, आवश्यकता का संयोग होता है ।

यह स्पष्ट हो गया कि बन्धन किसको, क्यों, कैसे होता है? बन्धन में होता कैसा है? भ्रम बन्धन का पीड़ा किस विधि से बलवती होती है? कौन-कैसे भ्रम बन्धन से मुक्त होता है? इसमें मुख्य बिन्दु जीवन ही जागृतिपूर्वक भ्रम बन्धन से मुक्त होता है, यह स्पष्ट हो चुका है।

जीवन सहज दस क्रिया क्रियाओं में जिसका विशद् विस्तार स्वरूप 122 आचरणों के रूप में तालिका में स्पष्ट किया जा चुका है। उक्त तालिका के अनुसार जागृत आचरणों के विधिवत अध्ययन के लिए **"मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान**" के नाम से शास्त्र प्रस्तुत हो चुकी है। यहाँ जीवन के दस क्रिया सहज कार्य विधि से और ये परस्पर प्रेरित, संयोजित कार्य विधि में जागृति का स्वरूप क्रम और बन्धन मुक्ति क्रम को जैसा देखा गया है वैसा ही प्रस्तुत किया गया है।

जीवन में मन, वृत्ति, चित्त, बुद्धि और आत्मा पाँच अक्षय बल तथा आशा, विचार, इच्छा, ऋतम्भरा और प्रामाणिकता रूपी पाँच अक्षय शक्तियाँ प्रमाणित होने के लिए तत्पर है। जिनमें से आशा, विचार, इच्छा रूपी शक्तियाँ शरीर को जीवन मानते हुए शरीर को ही सुख का स्त्रोत मानते हुए, बँटवारा को व्यवस्था का आधार मानते हुए और वस्तुओं को ज्यादा से ज्यादा संग्रह करना सुख का साधन मानना यही सब प्रधानत: भ्रम रूपी कार्यकलाप का स्वरूप बतायी रहती है। इस क्रम में प्रधानत: शरीर के आयु के अनुसार प्रलोभन विधि से उत्साहित करना-होना, पराभावित होना देखा गया है।

जागृति 'चिन्तन बल' विधि से आरंभ होता है जबकि भ्रम बन्धन 'आशा, विचार, इच्छा शक्ति' विधि से होना साक्षित हुई है। यही प्रधान बिन्दु है जिसे हर व्यक्ति को समझना संभव है। क्योंकि आस्वादन, तुलन, चिन्तन, बोध और अनुभव ये पाँच बल जीवन में सदा-सदा व्यक्त होने के लिये हैं।

शरीर को जीवन मानने के आधार पर शरीरोपयोगी यथा शरीर के लिए प्रिय, हितकारी वस्तुओं को चयन करने जाते हैं तब लाभापेक्षा होता ही है। इस विधि से जब प्रिय, हित, लाभकारी वस्तुओं को मानव चयन करता है, यह कार्य चित्रण तक सम्पादित होता है।

चयन के अनुरूप आस्वादन क्योंकि शरीर को ही जीवन मानने के आधार पर आस्वादन के अनुसार विश्लेषण, विश्लेषण के अनुसार शरीर सीमावर्ती और शरीरोपयोगी वस्तुओं के संबंध में विश्लेषण और उसी का चित्रण सम्पादित होना पाया गया। प्रिय, हित, लाभ सीमावर्ती तुलन, चिन्तन का वस्तु नहीं बनती क्योंकि ये सब रुचिमूलक होने के आधार पर पुन: यह सब आस्वादन या भोगमूलक ही होती है। सम्पूर्ण भोग विधि भी आस्वादन के अर्थ में समीचीन है। सभी आस्वादन पंच ज्ञानेन्द्रियों द्वारा होता है। दूसरे शब्दों में सभी आस्वादन पंच ज्ञानेन्द्रियों-पंच कर्मेन्द्रियों में, से, के लिए होता है। इसी को मानव जाति का सम्पूर्ण कार्यक्रम स्वीकारना ही भ्रम का द्योतक है। इस सीमा के मानव सर्वशुभ रूपी दिशा से विमुख रहता ही है। फलस्वरूप अनगिनत प्रताड़नों से क्लेशित होना; दु:ख, शोकादि पीड़ाओं से पीड़ित होने के रूप में देखा गया है। यह सब भ्रम को ही सत्य मानने का फलन रहा। यथा मृगतृष्णा-मरीचिकावत् अथवा रज्जू-सर्पवत् पराभव का सूत्र बनता है। इसी क्रम में जीवन को जीवन और शरीर को शरीर समझना अति अनिवार्य है। हर मानव को यथार्थता, वास्तविकता, सत्यता को यथावत् समझना अति अनिवार्य है। इसमें तीन ही मुद्दा प्रधान रूप में आते हैं - अस्तित्व, जीवन और मानवीयतापूर्ण आचरण। यही मानव में, से, के लिए मौलिक आचरण के रूप में पहचाना गया।

हर वस्तु को उसके आचरण के आधार पर मानव पहचानता है। इसी पहचान के आधार पर निर्वाह होना होता है। निर्वाह का ही फल-परिणाम होना पाया जाता है। यह सामान्यत: सबको ज्ञात है। सहअस्तित्व सहज विधि से हर अवस्था की वस्तुओं को उन-उन के रूप, गुण, स्वभाव, धर्म के रूप में जानना-मानना अति अनिवार्य स्थिति है इसी के आधार पर पहचानना संभव हो जाता है। सही पहचानना ही निर्वाह करना है और उसके फल में वांछित परिणाम निकलना स्वाभाविक है। बिना जाने-माने किसी चीज को पहचानने जाते हैं आधार विहीन होना पाया जाता है। समझ के करने में हर स्थितियाँ संतुष्टि का कारण बनती है। बिना समझे कुछ भी करते हैं चाहे वह आस्थावादी, प्रलोभनवादी या भयवादी हो वह सदा-सदा पराभव और प्रताड़ना का कारण ही बनता है। इस विधि से सम्पूर्ण भ्रम कार्य व्याख्यायित होता है। कितने भी पीढ़ी भ्रम को बारंबार दोहराते रहें भ्रम का परिणाम पीड़ा ही होना पाया जाता है। भ्रमित परिणाम से मानव संतुष्ट नहीं रह पाता।

मानव भ्रमित कार्य विधियों, कल्पना विधियों से हताश होता है तब भ्रम की पीड़ा अपने पराकाष्ठा में होता है। तभी भ्रम मुक्ति अथवा जागृति विधि का आवश्यकता निर्मित होती है। यह संक्रमण काल में प्रौढ़ और वृद्ध मानवों के साथ गुजरता हुआ स्थितियाँ है।

मानव में तीनों बन्धन की अलग-अलग स्थितियाँ स्पष्ट हो जाती है। इच्छा बन्धन की पराकाष्ठा में बन्धन की पीड़ा, कुण्ठा, प्रताड़ना के रूप में होना देखा गया है। यह मानव परंपरा सहज कार्य-प्रणाली में भ्रमित परंपराओं के रूप में घटित होने वाले परिणाम है। इसमें मुख्य रूप में वैचारिक और व्यवहारिक सामरस्यता की उपेक्षा, उसमें होने वाले विरोधाभास की महत्वपूर्ण भूमिका है क्योंकि चित्रण कार्य इच्छा बन्धन का सर्वोपरि अहमता के रूप में कार्य को मानव में प्रदर्शित होता है बीसवीं शताब्दी के अन्त तक आजीविका का आधार माना। यह सभी सफलता-विफलताएँ, भय, प्रलोभन, आस्था रूपी आदर्शों और आदर्श के केन्द्रों के रूप में होते आये। इस अवस्था में इस धरती के संपूर्ण मानव में, से केवल आस्थावादी में, से कुछ लोग (कम से कम) होना दिखाई पड़ते है। कुछ अधिक लोग प्रलोभन और आस्था विधि से ही अपनी सार्थकता को माना करते हैं। कुछ कम लोग ही केवल प्रलोभन, भय से प्रताड़ित रहते हैं, इसमें आशा बंधन प्रधान होना पाया गया है। आशा और विचार बंधनपूर्वक ही आस्था, प्रलोभन और भय से पीड़ित होना रहता है और केवल आस्था में सफलता को खोजने वाले लोग न्यूनतम रहते हैं इनका अंतिम लक्ष्य स्वांत: सुख ही रहता है। ये सब जब तक लोक सम्मान मिलता हुआ स्थिति में प्रसन्नता को और न मिलने की स्थिति में अप्रसन्न रहता हुआ देखने को मिलता है।

आशा बन्धन इन्द्रियों द्वारा सुखी होने के लिए दौड़ लगाने के लिये सभी क्रियाकलाप के रूप में गण्य है। विचार बन्धन कोई भी व्यक्ति अथवा समुदाय अपने विचार को श्रेष्ठ मानने की विधि से स्पष्ट होता है। इच्छा बन्धन, ज्यादा से ज्यादा रचना कार्य की श्रेष्ठता को स्पष्ट करने के क्रम में स्पष्ट होता है। यह भी चित्रण विधि से स्पष्ट होता है।

ऊपर स्पष्ट किये गये विश्लेषणों से भ्रम का स्वरूप और भ्रम का पीड़ा कैसे हो पाता है इन तथ्यों को ध्यान में रखने की आवश्यकता है। निर्भ्रमता और जागृति के संबंध में भी अनुभवमूलक प्रणाली और पद्धति से संबंधित सभी मुद्दों पर प्रकाश डाला है। इसी को आगे और स्पष्ट करने के लिये व्यवहारिक प्रमाणों में प्रमाणित करने योग्य संप्रेषणा प्रस्तुत है। अनुभवगामी विधि में न्याय, धर्म (समाधान) और सत्य साक्षात्कार एक साथ ही होना पाया जाता है। यह इस छोर से जुड़ा हुआ देखा गया है कि भ्रम से पीड़ित होने के साथ ही जीवन स्वीकृति सहज वस्तुओं की अति अनिवार्यता बन जाती है। इसी अनिवार्यतावश जीवन में इन्द्रिय लिप्सा से मुक्ति चाहने की आवश्यकता अपने पराकाष्ठा में बलवती हुआ रहता ही है। इसे योग-संयोग

विधि से ही देखा गया है। यह संयोग अपने आप अस्तित्व सहज विधि से सहअस्तित्व प्रणाली से नियति क्रम के रूप में समीचीन रहता है। यह पीड़ा और नियति सहज समीचीनता का संयोग ही है। ऐसी घटना सर्वप्रथम किसी एक व्यक्ति के साथ घटित होता है अथवा एक व्यक्ति के द्वारा उद्घाटित हो पाता है। इसी को हम अनुसंधान या अभ्यास का फलन नाम दिया करते हैं। उक्त विधि से घटित अनुसंधान को शैक्षणिक विधि से लोकव्यापीकरण करना-कराना आवश्यकीय कार्य रहता ही है। अनुसंधान के अनन्तर यही अग्रिम-प्रक्रिया है। यह सर्वविदित है।

मूलत: यह घटना स्वयं अनुभव ही है। अनुभव सहज विधि से ही जागृति और जागृति का प्रमाण सहज रूप में समीचीन रहता है। इसलिये अनुभव के अनन्तर अनुभव की निरन्तरता होती ही है। यही अस्तित्व सहज वैभव के रूप में न्याय, धर्म, सत्य रूपी जीवन स्वीकृत वस्तु को देखा गया। सटीक देखने का भाषा ही है अनुभव क्रिया। ऐसे अनुभव में समाधान और न्याय समाहित रहता ही है। इसी प्रकार चिन्तन में अर्थात् साक्षात्कार क्रिया में समाधान और सत्य साक्षात्कारित रहता ही है। इतना ही नहीं व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी के अर्थ में जीने की स्थिति में न्याय, समाधान और सत्य व्यवहार में प्रमाणित रहता ही है। यही अनुभवमूलक अध्ययन है। अनुभवमूलक जीने की सम्पूर्णता मानव परंपरा में ही परमावश्यकता के रूप में दिखाई पड़ती है। इसकी समीचीनता अर्थात् भ्रम की पीड़ा और निर्भ्रमता या जागृति की समीचीनता, योग, संयोग की घटना विधि से सम्पन्न होना भी आवश्यक रहा। इसके अनन्तर ही इसके लोकव्यापीकरण की गति अपने आप शुरु होती है। यह स्वाभाविक रूप में सर्वमानव में स्वीकृत रहता ही है। जैसे न्याय सबको चाहिये, धर्म अर्थात् सार्वभौम व्यवस्था अखण्ड समाज होना चाहिये, सत्य समझ में आना चाहिये। क्योंकि ये जीवन सहज स्वीकृति होने के कारण इन्हें बिना समझे जीवन स्वीकारा ही रहता है। इसीलिये यह सबके लिए आवश्यक है।

मुक्ति का स्वरूप और प्रमाण

प्राचीन समय से अथवा सुदूर विगत से बन्धन और मोक्ष की चर्चाएं हुई हैं। बन्धन मूलत: भ्रम का ही स्वरूप होना स्पष्ट हो चुका है। ऐसा भ्रम भयवश जागृति की अपेक्षा रहते हुए भी जागृति होने पर्यन्त रहता है यह भी मुद्दा स्पष्ट हो चुका है। इसके उपरान्त जागृति और जागृतिपूर्णता ही मंजिलों के रूप में देखने को मिलता है। यह मूलत: विचार, चित्रण, अवधारणा, अनुभव और चिन्तन का ही वैभव रूपी मानसिकता के रूप में देखा गया है। भ्रम का सम्पूर्ण स्वरूप आशा, विचार, इच्छा (चित्रण) का प्रिय, हित, लाभात्मक दृष्टियों की क्रियाशीलता ही है। भय, प्रलोभनात्मक प्रणाली में व्यवस्था की परिकल्पना मानव को स्वार्थी, अज्ञानी, पापी, गलती और अपराध करने वाला है; ऐसा मानते हुए सम्पूर्ण योजनाओं को स्थापित करना ये

भ्रमात्मक कार्यकलापों का विस्तार है। यही परम्परा के रूप में अनुवर्ती होने की प्रेरणा देना जिसमें से स्वार्थ, पाप, अज्ञान मुक्ति धर्मगद्दियों के कार्यक्रम के रूप में और गलती को गलती से रोकना, अपराध को अपराध से रोकना और युद्ध को युद्ध से रोकना यह राजगद्दियों के कार्यक्रम के रूप में दृष्टव्य है।

धर्मगद्दियों से मोक्ष और बंधन की चर्चा हरेक पीढ़ी सुनते ही आया है। मोक्ष सर्वोपरि अथवा परम उपलब्धि अथवा परम घटना के रूप में बताते हैं। इसे बताते समय में भले ही विभिन्नता हो, हर धर्मगद्दियाँ मोक्ष को सर्वोपरि प्रतिपादित करते हैं। इसी के साथ साथ स्वर्ग-नर्क की परिकल्पना भी मानव मानस में समाहित कर चुके हैं। इस मुद्दे पर बन्धन का स्वरूप अध्ययनगम्य होने की विधि से जीवन क्रियाकलापों में भ्रमवश पीड़ित होना ही है। जीवन में ही जागृति की सम्भावना नित्य समीचीन रहता ही है। मौलिक तथ्य यही है हर मानव जागृति पूर्वक ही समाधानित होना देखा गया। ऐसा जागृति बिन्दुएँ :-

1. अस्तित्व में जागृत होने के रूप में और यह सर्वसुलभ होने के रूप में देखा गया। इसीलिये यह अनुभवात्मक अध्यात्मवाद अध्ययनगम्य होने की विधि से प्रस्तुत किया गया है।

2. अनुभव जीवन में ही, जीवन से ही, जीवन के लिये ही समीचीन है। जैसा-मानव जीवन और शरीर के संयुक्त रूप में है एवम् शरीर को जीवन संचालित करता है यह दोनों तथ्य स्पष्ट हो चुकी है। जीवन ही भ्रमित अवस्था में भ्रमित रहकर बन्धन के पीड़ाओं से पीड़ित होता है। शरीर और संसार के साथ इन्द्रिय सन्निकर्ष और कल्पनापूर्वक समस्त प्रकार के अव्यवस्था का पीड़ा होना अथवा अव्यवस्था के समझ के अनुपात में पीड़ित होना देखा गया। इस तथ्य को हर मानव अपने में निरीक्षण-परीक्षण पूर्वक पहचानना सहज है।

सर्वमानव पीड़ा से मुक्ति चाहता ही है। यही जागृति सहज अपेक्षा का स्रोत और सम्भावना है। जीवन सहज क्रियाकलापों में, से न्याय, धर्म, सत्य का साक्षात्कार और दृष्टा होना और उसका प्रमाण सिद्ध होना ही सम्पूर्ण जागृति है। दृष्टापद में होने वाली सम्पूर्ण क्रियाकलाप जीवन सहज विधि से जानने-मानने-पहचानने-निर्वाह करने के रूप में होना पाया गया है। जानने-मानने की सम्पूर्ण वस्तु जीवन ज्ञान, सहअस्तित्व दर्शन ज्ञान, मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान ही है। अस्तित्व में अनन्त ग्रह-गोल व्यापक वस्तु में समायी हुई है - जिनका दृष्टा केवल मानव ही है। भले ही कैसे हैं, कितने है, क्या है ? इन तथ्यों का स्पष्टीकरण न हो। इसी प्रकार धरती में चारों अवस्थाओं यथा पदार्थ, प्राण, जीव व ज्ञानावस्था सहज वस्तुओं का दृष्टा भी मानव ही है। प्रकारान्तर से इन सभी चीजों को हर मानव देखता ही है। साथ-साथ हर कार्यशील वस्तुओं को व्यापक में समायी हुई देखना समझना समीचीन है। जितने भी अचल वस्तुएँ हैं वे सब धरती के साथ ही गतिशील रहना देखने को मिलता है। धरती स्वयं व्यापक में समायी हुई होना कल्पना

में आता है, अध्ययन से स्पष्ट होता है। कल्पनाएँ जीवन सहज कार्य महिमा है। कल्पना में सम्पूर्ण अस्तित्व समाने की क्रिया स्पष्ट हुई। कल्पना का तात्पर्य अस्पष्ट आशा, विचार, इच्छा का ही गतिशीलता है। इस प्रकार मानव की कल्पना से स्पष्टीकरण की ओर ही जागृति चिन्हित हो पाता है।

अस्तित्व कैसा है इस तथ्य को 'अस्तित्व एवं अस्तित्व में परमाणु का विकास' में स्पष्ट किया जा चुका है। कितना है का उत्तर हर मानव के जागृति सहज विधि से उदय होता ही रहता है। सम्पूर्ण अस्तित्व मानव की आवश्यकता के अर्थ में समाहित नहीं होता। दूसरी भाषा में सम्पूर्ण अस्तित्व मानव सहज भाषा की सीमा में समाता नहीं है। इससे यह भी पता लगता है सम्पूर्ण अस्तित्व मानव की आवश्यकता से अधिक है ही। अस्तित्व में ही व्यापक और अनन्त इकाईयाँ अविभाज्य रूप में होना दिखाई पड़ता है, समझ में आता है। इसे देख पाना मानव जागृति क्रम सहज समीचीनता है। इस प्रकार कितना है का स्पष्टीकरण समझ में आता है। क्यों है का उत्तर इस प्रकार स्पष्ट है कि सम्पूर्ण घटना स्वरूप ही सहअस्तित्व में होना स्पष्ट होती है। व्यापक वस्तु में ही अनन्त वस्तुओं की अविभाज्यता अनुस्यूत है। ऐसे सदा-सदा वर्तमान रूपी अस्तित्व क्यों वाला प्रश्न को भी मानव ही प्रस्तुत करता है। मानव भी अस्तित्व में अविभाज्य इकाई है। वर्तमान में जो कुछ भी देखने-समझने को मिल रहा है इसको वर्तमान में प्रकाशित करना ही अस्तित्व सहज सार्थकता स्पष्ट होती है। अस्तित्व में जो कुछ भी है इसकी निरंतरता ही इसका प्रयोजन है। इस प्रकार तीनो प्रश्नों का उत्तर स्पष्ट हो जाता है।

'अनुभवात्मक अध्यात्मवाद' भी इसी तथ्य को इंगित करने के लिये तत्पर है। अनुभव अस्तित्व में ही होना पाया जाता है। अनुभव के पहले समझदारी जानने-मानने-पहचानने के रूप में होना पाया जाता है। यह सच्चाई का अध्ययनपूर्वक होने वाला अवधारणा, संस्कार है। इसके पूर्व रूप में विचार और चित्रण ही रहता है। यही श्रुति, स्मृति, शब्द और चित्रण है। शब्द और चित्रण के आधार पर कितने भी क्रियाकलापों को मानव संपादित करता है यह सब अस्थिरता के साथ ही जूझता हुआ देखा गया है अस्थिरता में भ्रम ही प्रधान कारण है। इसीलिये ही स्मरण और चित्रण के उपरान्त कहीं न कहीं अस्थिरता-अनिश्चयता को प्रकाशित करता ही है। इसी सीमा तक हम इस बीसवीं सदी के अंत तक झेलते आये हैं। स्थिरता की स्वीकृति बोध रूप में ही होना फलस्वरूप व्यवहार में न्याय-समाधान-सत्य प्रमाणित होना पाया जाता है। ऐसा बोध जानने-मानने-पहचानने का ही महिमा है। यह क्रिया जीवन में ही जागृति सहज विधि से होने वाली वांछित प्रक्रिया है।

अस्तित्व में अनुभव सत्ता में (व्यापक में) संपृक्त प्रकृति के रूप में ही देखा गया है। सत्ता में संपृक्त रहने के आधार पर ही क्रियाशीलता नियंत्रण, संतुलन, संरक्षण साम्य ऊर्जा स्रोत होना देखा गया है। इसीलिये

प्रकृति में नियंत्रण, संरक्षण निरंतर बना ही रहता है। अतः सत्ता में नियंत्रण स्पष्ट है। इसे ही अध्यात्म संज्ञा दी गयी है या सत्ता का दूसरा नाम ही अध्यात्म है। दूसरे नाम से अध्यात्म साम्य ऊर्जा सहज अस्तित्व का स्वरूप है। सहअस्तित्व ही मूल ध्रुव स्थिर और निश्चय होने के कारण मानव भी निश्चयता, स्थिरता और उसकी निरंतरता सहज विधि से परंपरा के रूप में वैभवित होना चाहता है, यह नित्य समीचीन है। इसे स्पष्ट कर देना ही अनुभवात्मक अध्यात्मवाद का अभीष्ट है।

अस्तित्व में अनुभव ही भ्रम मुक्ति का नित्य स्रोत है। इसका क्रम अनुभवगामी विधि से अध्ययनपूर्वक, अनुभवमूलक विधि से अभिव्यक्त होना ही एक मात्र दिशा और उपाय है। सम्पूर्ण अस्तित्व को चार अवस्था में अध्ययन करने की व्यवस्था "मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद" में प्रावधानित हुआ है।

अनुभव करने के लिये वस्तु चारों अवस्था सहज सहअस्तित्व रूप में वर्तमान सहअस्तित्व ही है। अस्तित्व में अनुभूत होना अनुभवमूलक विधि से बोधगम्य कराना इस विधि से सहज हुआ है कि स्थिति सत्य के रूप में अस्तित्व बोध होना जो स्वयं में, सत्ता में संपृक्त प्रकृति मानव भी है। सहअस्तित्व के रूप में जड़-चैतन्य प्रकृति वर्तमान सहज रूप में बोध होना अध्ययन प्रक्रिया सहज विधि से होता है। अस्तित्व में पाये जाने वाले प्रकृति सहज वस्तुओं के परस्परता में दिशा और कोणों को पहचाना जाता है। जैसा दो वस्तुओं को कहीं भी स्थापित कर देखें इनमें परस्परता साभिमुख विधि से वर्तमान रहता है। साभिमुखता का तात्पर्य एक-दूसरे के सम्मुख रहने से है। ऐसी सभी सम्मुखताएँ अभ्युदय के अर्थ में ही होना पाया जाता है। इसका मूल सूत्र प्रत्येक एक अपने त्व सहित व्यवस्था के रूप में होना ही है, ऐसे प्रत्येक सम्मुखताएँ सविपरीत दिशा-बोध कराता है।

प्रत्येक एक अपने में अनन्त कोण सम्पन्न रहता ही है। किसी एक में एक बिन्दु के साथ सभी ओर कोणों को बनाते जाएँ, कितने भी बनाए और भी बनाये ही जा सकते हैं। ऐसी स्थिति समीचीन रहती है। इस प्रकार इकाई में अनन्त कोण और परस्परता में दिशा स्पष्ट होना पाया जाता है क्योंकि सभी ओर से हर वस्तु दिखता है।

आदर्शवादी विचार के अनुसार मोक्ष का स्वरूप

ईश्वर को रहस्यमय और सर्वशक्तिमान सृष्टि, स्थिति और लय कार्यों पर/में अधिकार रखने वाला माना गया है। यह मूलभूत मान्यता विविध प्रकार से दिखने वाली विविध धार्मिक मूल ग्रन्थों में प्रतिपादित किया गया। इनमें से अधिकांश रहस्यमयी ईश्वर केन्द्रित विचारों के अनुसार जीव और जगत का उत्पत्ति होना, स्थिति होना, लय होना माना गया। उनमें से कुछ विचार और दर्शन इस बात को भी स्वीकारता है, प्रतिपादन

करता है कि जीवों के हृदय में ईश्वर जैसे ही वस्तु निहित या समाहित रहता है। जिसको आत्मा कहा गया है। कुछ लोग जीव का ही होना मानते हैं, कुछ लोग जीवों में आत्मा भी मानते हैं। मूल ग्रंथ में इन दोनों को न मानने वालों को शुद्धतः शरीरवादी कहते हैं। इसीलिये शरीरवादी भी अपने ढंग से धर्म विचार रखते हैं क्योंकि शरीर को ईश्वर बनाता है ऐसी उनकी मान्यता है। धरती, जल, खनिज सब ईश्वर से ही बना हुआ वस्तुएँ हैं। ईश्वर की इच्छा जब तक रहती है तब तक ये बने रहते हैं। ईश्वर की इच्छा से ही ये सब लय को प्राप्त करते हैं।

मुक्ति का मुद्दा जीवों से सम्बन्धित है। जीव ही शरीर को धारण करता है। जन्म-मृत्यु के चक्कर में आता है। कर्मफल बन्धनवश स्वर्ग-नर्क में आवागमन करता है अथवा शरीर को छोड़कर जब तक ईश्वर मुक्त नहीं करता है तब तक ईश्वर का इंतजार करता है। ऐसे विविध प्रकार से प्रतिपादन करते हुए ईश्वर कृपा होने पर ही मोक्ष होने का आश्वासन है। ईश्वर कृपा पाने के लिये हर सम्प्रदाय में कार्य, विधि, कर्मकाण्ड और संस्कार विधियों को लिखा हुआ है। उसे संस्कारित करने वाले उन-उन धर्मों का धारक-वाहक माने जाते हैं। संस्कारित होने वाले भी संस्कारित होकर उन धर्मों में निष्ठा मान लेते हैं। प्रधानतः संस्कारों का पहचान, नाम, संस्कार, जाति, शिक्षा-दीक्षा, धर्म और कर्म संस्कार ये प्रमुखतः हर धर्म परंपरा में उन-उन परम्परा के अनुयायियों को स्वीकृत होता है।

जहाँ तक शिक्षा की बात है यह प्रचलित विज्ञान युग के अनन्तर धर्म-कर्म शास्त्रों से भिन्न भी शिक्षा-स्वरूप और कार्य समाहित हुई। इसे विज्ञान शिक्षा अथवा व्यापार शिक्षा कह सकते हैं। शिक्षा जगत में तकनीकी विज्ञान इस धरती के सभी भाषा, सम्प्रदाय, धर्म, जाति, मत, पंथ वाले अपना चुके हैं। धर्म परंपराओं का जो कुछ भी चिन्हित लक्षण अथवा पहचान हुआ वह किसी का जन्म होने से उत्सव मनाने के रूप में, किसी के शादी-विवाह अवसर में उत्सव मनाने के तरीके से और किसी की मृत्यु होने से बंधुजन शोक संवेदना को व्यक्त करने के तरीके से होता है। सभी सम्प्रदाय अपने-अपने तरीके को श्रेष्ठ मानते ही रहते हैं।

हर समुदाय ईश्वर कृपा को पाने के लिये विभिन्न प्रकार के साधना-अभ्यास परम्पराओं को बनाए रखे हैं। इसमें सबका गम्यस्थली ध्यान और समाधि मानी गई है। ऐसे निश्चित ध्यान के लिये विविध उपायों को अपने-अपने परंपरा के अनुसार स्थापित किये हुए हैं। सम्पूर्ण प्रकार से प्रस्तावित ध्यान क्रियाएँ विचारों को सीमित और एक बिन्दुगत होने के उद्देश्य से किया जाता है। इसमें कोई-कोई सफल भी हो जाते हैं। सफल होने का तात्पर्य विचारों का उपज न्यूनतम अथवा शून्य अर्थ में मानी जाती है। ऐसे मानसिकता को मौन होना भी माना जाता है। निर्विचार होना भी माना जाता है। इसी को कैवल्य अवस्था या परम सुखद

अवस्था मानी गई है। उल्लेखनीय तथ्य यही है ऐसे स्थिति में उनके पास कोई कार्यक्रम होना संभव नहीं होता।

इस मुद्दे पर यह अनुभव किया गया है कि निर्विचार (समाधि) के अनंतर किसी प्रकार का व्यवहारिक आशा, विचार, इच्छा अनुसार भी कोई कार्यक्रम उपजता नहीं है। फलस्वरूप समाधि के अनंतर उस व्यक्ति का उपयोग सिद्ध होना भी नहीं बनता है। इसके मूल तत्व को इस प्रकार पहचाना गया कि विचारों का उद्गम किसी न किसी चित्रण क्रिया के आधार पर सम्पन्न होना देखा गया है। सम्पूर्ण विचारों का उद्गमन "है, चाहिए और करना" इन्हीं मूल ध्रुवों के आधार पर निर्भर रहता है। यह "मुझे कुछ करना है, मेरे पास कुछ है और मुझे कुछ चाहिये" यही ध्रुव है। सम्पूर्ण व्यक्तियों में विचारों का उद्गमन हो पाता है। विचार शून्यता के अनंतर आदमी जीवित रहने का कोई कड़ी नहीं बनता है। इसीलिये ऐसे समाधि के अनन्तर अथवा समाधि में रहते ही शरीर शान्त होने का सूचनाओं को कथाओं के रूप में प्रस्तुत किया गया है। यदि कुछ दिन, मास, वर्ष समाधिस्थ व्यक्ति जीवित रहता है (शरीर के साथ) ऐसे स्थिति में उन्हीं-उन्हीं परंपरा के मूल ग्रन्थों का प्रतिपादन का समर्थन करते हुए देखने को मिलता है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो गया कि **"है, करना है, चाहिये" के साथ निषेध लगाना ही निर्विचार होने का सूत्र बना**। अस्तु, सम्पूर्ण विचार जब तक चित्रण मूलक विधि से परिसीमित रहता है, कर्मेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रिय व्यापार और उससे सम्बन्धित नैसर्गिकता ही "है, करना है, चाहिए" का आधार बना रहता है।

ऐसे विचारों में से कोई समाधान प्रतिपादित नहीं होती अपितु समाधान के विपरीत समस्याओं का संकट ही हर विचार और कार्यक्रमों के परिणाम में देखने को मिलता है। इसलिये संसार को दुख रूप मानते ही आये हैं। इससे यह सुस्पष्ट हुआ कि जो कुछ भी अभी तक वाङ्गमय, पावन ग्रन्थों से सामान्य ग्रन्थों तक रचित हुआ है यह सब चित्रण मूलक प्रकाशन ही है। इस क्रम में यह भी स्पष्ट हो गया है कि समाधि और समाधिस्थ व्यक्ति के आधार पर कोई स्वस्थ परिवार ही नहीं बन पाया है, समाज तो बहुत दूर है। साधनारत व्यक्ति भी साधना काल में परिवार, समाज अथवा व्यवस्था का भागीदार होना संभव नहीं होता। इस प्रकार से साधनारत समय में एवं साधना सफल होने के उपरान्त विचार शून्यता को ही ज्ञानी होने का एक मात्र उपाय प्रकारान्तर से सभी धर्म वाले बताते हैं। वह मानव उपयोगी होना देखने को नहीं मिला ।

इसी घटना के साथ जुड़ी हुई और घटना तैयार हुई - स्वर्ग के लिये अनुकूल कार्यकलापों को मानव कर सकता है। इसके लिये ईश्वरीय नियमों-कानूनों को बताया गया। हर जाति, हर वर्ण, हर आश्रम जो नियम-कानून, धर्म ग्रन्थों में लिखी हुई है उसको पालन करना ही स्वर्ग में जाने के लिये एक मात्र उपाय बताये हैं। ऐसे नियम कानूनों को पालन करना ही पुण्य कर्म बताया गया। ऐसे नियम कानून विभिन्न प्रकार से

धर्म कहलाने वालों के पुस्तिका में विभिन्न प्रकार से सूत्रित, व्याख्यायित हुई। जो जिस जाति धर्म के नियम कानून रूपी (ईश्वरीय नियम कानून रूपी) कार्यकलापों को उन्हीं-उन्हीं को स्वर्ग मिलने का स्वीकृति हो पाती है। अन्य प्रकार के धर्म वालों को वह स्वर्ग मिल नहीं सकती है। ऐसा हर सामुदायिक धर्म वाले जो अनुसरण करते हैं और जो आर्षेय ग्रंथों का अनुमोदन करते हैं ये सब कहते भी हैं, मानते भी है। उल्लेखनीय घटना यही है विविध समुदाय, विभिन्न पवित्र ग्रन्थों के आधार पर मान्यताओं को सुदृढ़ किये रहते हैं। ऊपर कहे गये अस्मिता को भी बनाये रखते हैं। इसके बावजूद ऐसा कोई एक आचरण सार्वभौम होना प्रमाणित नहीं हो पाया, जिसको सभी धर्म वाले स्वीकार लिये हो। इसलिये आदिकाल से अभी तक परस्पर समुदायों में अपना-पराया का दीवाल, प्रत्येक परिवार की परस्परता में अपना-पराया का दीवाल, प्रत्येक व्यक्ति की परस्परता में अपना-पराया का दीवाल बना ही रहता है।

इसी के साथ-साथ उपासना, पूजा-पाठ और उसके तरीके के विभिन्नताएँ अपने-अपने श्रेष्ठता और अहमता के साथ पनपते आया। इस क्रम में भी मानव और समुदाय व्यक्तिवादी हैं, क्योंकि सभी उपासना, प्रार्थना, पूजा-पाठ व्यक्तिवादी होता ही है। समूहगत प्रार्थना-पूजा में भी हर व्यक्ति अपनी प्रमुखता और श्रेष्ठता के साथ ही प्रस्तुत होना पाया जाता है। प्रार्थना में अधिकतर ईश्वर की महिमा, विश्व कल्याण, स्वयं का उद्धार, शत्रुओं का नाश की कामना समाहित रहती है। जबकि विश्व कल्याण में व्यक्ति का कल्याण समाया हुआ है और मानव के उद्धार का स्वरूप अभी तक इस धरती पर किसी परंपरागत विधि से अध्ययनगम्य नहीं हो पाया। यह सम्पूर्ण क्रियाकलाप आर्षेय ग्रंथ कथन और आस्था का संयोग से चक्कर काटते ही आया। **आस्था का तात्पर्य है "न जानते हुए मान लेने से" है।** इसमें और भी उल्लेखनीय तथ्य यही है कि 'स्व' का अध्ययन होना अभी भी प्रतीक्षित है। इस मुद्दे पर पहले बता चुके हैं कोई-कोई परंपरा, पावन ग्रन्थ केवल शरीर ही जीवन है ऐसा मानते हैं। कोई-कोई शरीर और जीव होना मानते हैं। कोई-कोई शरीर, जीव, जीव में आत्मा होना मानते हैं। ये सब ईश्वर तंत्र से अथवा ईश्वरेच्छा से निर्मित, वैभवित और प्रलय को प्राप्त होते हैं।

जबकि इस मुद्दे पर अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिन्तन विधि से सहअस्तित्व में ही विकासक्रम और विकास, जागृति क्रम, जागृति के रूप में देखा गया है जिसे पदार्थावस्था, प्राणावस्था, जीवावस्था, ज्ञानावस्था के रूप में होना स्पष्ट किया जा चुका है। इसी के साथ ज्ञानावस्था में भ्रमवश बन्धन और जागृतिवश मोक्ष होता है। जिसमें से बंधन को विस्तार से आशा बन्धन, विचार बन्धन और इच्छा बन्धन के रूप में विश्लेषित कर चुके हैं।

यह तीनों प्रकार का बन्धन शरीर को जीवन मान लेने से और इन्द्रिय सन्निकर्ष से ही सम्पूर्ण सुख का स्रोत मानने के परिणाम में भ्रम सिद्ध होना पाया गया। जबकि जीवन अपने जागृति को व्यक्त करने के लिये शरीर एक साधन है, इन्द्रिय सन्निकर्ष ही एक माध्यम है। मानव परंपरा ही जीवन जागृति प्रमाण का सूत्र और व्याख्या है। यही भ्रम और निर्भ्रम का, जागृति और अजागृति का निश्चित रेखाकरण सहज बिन्दु है। इन यथार्थों को शिक्षा गद्दी, राजगद्दी और धर्मगद्दी अपने में बीते हुए विधियों से आत्मसात करने में असमर्थ रहे हैं। दूसरे विधि से इनका धारक वाहक मेधावी इन मुद्दों पर अनुसंधान करने से वंचित रहे हैं। इसीलिये यह तथ्य मानव परंपरा में ओझिल रही है। इसे परंपरा में समाहित कराना ही इस "अनुभवात्मक अध्यात्मवाद" का उद्देश्य है।

जीवन में सतत् कार्यकारी तीन दृष्टियाँ यथा प्रिय, हित, लाभ बन्धन के रूप में पीड़ा का कारण हुआ इसे हर व्यक्ति अपने में परिशीलन कर सत्यापित कर सकता है। जीवन में ही क्रियारत न्याय, धर्म और सत्यात्मक दृष्टियाँ जागृति बन्धन मुक्ति का सूत्र है। न्याय स्वाभाविक रूप में परस्पर मानव के संबंधों में प्रमाणित होने वाले तथ्य हैं। यह प्रत्येक मानव के अविभाज्य वर्तमान रूपी मूल्य, चरित्र, नैतिकता से प्रमाणित हो जाता है। मानवीयतापूर्ण आचरण में उक्त तीनों आयाम सम्पन्न आचरण देखने को मिलता है। यह आचरण मानवीयता से परिपूर्ण होते तक यह तीनों आयाम एक दूसरे में पूरक होना संभव नहीं है। यह इस तथ्य का द्योतक है कि मानव जागृतिपूर्वक ही मानवीयतापूर्ण आचरण करने में समर्थ होता है। इसको भले प्रकार से परीक्षण, निरीक्षण कर देखा गया है। जागृति का तात्पर्य जीवन ज्ञान और अस्तित्व दर्शन ज्ञान, मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान में पारंगत होने से है। मानवीयतापूर्ण आचरण हर विद्यार्थी में, से, के लिये सुलभ होने से है। सहअस्तित्व ही परम सत्य होने के कारण अस्तित्व में अनुभव होने के क्रियाकलाप को "अनुभवात्मक अध्यात्मवाद" नाम दिया है। इस तरीके से हम सहज ही इस निष्कर्ष में आ सकते हैं कि हर व्यक्ति के जागृत होने की संभावना समीचीन है। जागृत मानव ही स्वायत्त मानव के रूप में मूल्यांकित होना पाया जाता है। ऐसे स्वायत्त मानव स्वयं के प्रति विश्वास, श्रेष्ठता के प्रति सम्मान, प्रतिभा और व्यक्तित्व में संतुलन, व्यवहार में सामाजिक, व्यवसाय में स्वावलंबी होने का सामर्थ्य, प्रक्रिया, ज्ञान, दर्शन विधाओं में पारंगत होता है। ऐसे मानव ही परिवार मानव के रूप में मानवीयता पूर्ण आचरण को प्रमाणित करता है। मानवीयता पूर्ण आचरण में एक आयाम परिवार में परस्पर संबंधों को पहचानने, मूल्यों को निर्वाह करने, मूल्यांकन करने, उभयतृप्ति पाने के रूप में देखा गया है। इसकी अपेक्षा सर्वमानव में होना पाया जाता है। इसके लिये सम्भावना नित्य समीचीन है। यह मूलतः मानव केन्द्रित अध्ययन, चिन्तन के आधार पर ही सफल होता हुआ देखा जाता है।

मानवीयतापूर्ण आचरण में दूसरा आयाम है **नैतिकता**, यह चरित्र के पूरकता में होना देखा गया है, वह है, तन, मन, धन रूपी अर्थ का सदुपयोग-सुरक्षा के रूप में सार्थक होना। अर्थात् मानवीयता पूर्ण चरित्र में, से, के लिये यह नैतिकता पूरक होना पाया जाता है। अर्थात् अर्थ का सदुपयोग विधि, सुरक्षा विधि ही नैतिकता है। इसी प्रमाण के आधार पर अर्थ का सुरक्षा विधि से सदुपयोग, सदुपयोग विधि से सुरक्षा प्रयोजन स्पष्ट होता है। इसलिये अर्थ का सदुपयोगिता सिद्धान्त सुरक्षा के लिये और सुरक्षा सिद्धान्त सदुपयोग के लिये पूरक होता है। अस्तु, इससे आचरण में नैतिकता रूपी दूसरा आयाम सहज प्रयोजन स्पष्ट है। यह सर्वमानव मानस का अपेक्षा है ही अथवा सर्वाधिक मानव का अपेक्षा है। यथा-हर मानव अपने तन, मन, धन रूपी अर्थ का सदुपयोग-सुरक्षा चाहता ही है।

मानवीयतापूर्ण आचरण का तीसरा आयाम **चरित्र** है। चरित्र का स्वरूप स्वधन, स्वनारी/स्वपुरूष, दयापूर्ण कार्य-व्यवहार के रूप में पहचाना गया है। चरित्र का क्रियाकलाप सामाजिक नियम के रूप में सम्पन्न होना पाया जाता है। समाज शब्द से अखण्डता इंगित तथ्य और उसका कार्य स्वरूप जीवन सहज पूर्णता (जागृति) को शरीर रूपी माध्यम से मानव परंपरा में प्रमाणित करना ही है। मानवीयतापूर्ण आचरण से हर व्यक्ति सम्पन्न होना, सार्थक होना मानव के लिये स्वत्व रूप में समीचीन है ही। इसी के साथ-साथ हर मानव में इसकी आवश्यकता का भास-आभास बना ही है। **स्वधन** का परिभाषा है - अर्थात् कार्य रूप है, प्रतिफल, पारितोष और पुरस्कार से प्राप्त धन। मूलतः धन का स्वरूप उपयोगिता और सुन्दरता मूल्य सम्पन्न वस्तुओं के रूप में होना पाया जाता है। जैसे आहार, आवास, अलंकार, दूरदर्शन, दूरश्रवण और दूरगमन रूपी वस्तुएँ है। इन सबमें उपयोगिता मूल्य, कला मूल्य को मानव ही मूल्यांकित करता है। ऐसी सभी वस्तुएँ (धन) मानव सहज श्रम नियोजन पूर्वक सम्पन्न हुआ होना पाया जाता है। ऐसा धन किसी का भी स्वत्व रूप में होता है, प्राकृतिक ऐश्वर्य पर नियोजन किया गया श्रम के फलन में ही स्पष्ट होता है। ऐसे फलन को ही श्रम का प्रतिफल है। पारितोष भी किसी का स्वधन होना स्वाभाविक है। अपने स्वधन को स्वयंस्फूर्त प्रसन्नता में, से, के लिये हस्तांतरित करना, अर्पित करने की क्रिया को पारितोष संज्ञा है। पुरस्कार से प्राप्त धन किसी सार्थक घटना, कार्य, प्रमाण, प्रकाशन, अभिव्यक्ति, संप्रेषणा प्रकाशन के फलस्वरूप उत्सव का अनुभव करता हुआ एक से अधिक लोग एकत्रित होकर ऐसे धन को अर्पित करने की क्रिया है। इन तीनों प्रकार से प्राप्त धन स्वधन की संज्ञा में आता है। तन, मन के साथ ऐसे स्वधन को सदुपयोग, सुरक्षा करने का अधिकार हर मानव में होता है।

स्वनारी/स्वपुरूष का प्रयोजन इस विधि और आधार से देखा गया है कि समाज रचना क्रम में एक नारी-पुरूष का शरीर संयोग मानव शरीर रचना अथवा संतान परंपरा के लिए आवश्यकता विधि से सहज

कार्यकलाप विधि से भी आवश्यक घटना है। शरीर रचना विधि से यौवन ही इसका आधार है। कार्य विधि से मानव परंपरा बना रहना एक आवश्यकता है। प्रयोजन विधि से व्यवस्था में जीना एक अनिवार्यता है। व्यवस्था का तात्पर्य न्याय सुलभता, उत्पादन सुलभता, विनिमय सुलभता ही है जिसका स्रोत मानवीयतापूर्ण शिक्षा-संस्कार और स्वास्थ्य-संयम कार्यकलाप ही है। इसी से परिवार परंपरा होना भी सहज है।

दयापूर्ण कार्य-व्यवहार का स्वरूप आवश्यकतानुसार (अपने-पराये के दीवाल विहीन विधि से) अर्थ का सदुपयोग कार्य ही है। यह विशेष कर कर्तव्य और दया सूत्र सम्पन्न परिवार संबंधों में जुड़े होते हैं। जागृति सम्पन्न सर्व परिवार, सर्व मानव के साथ दया का प्रभाव क्षेत्र बना रहता है। हर परिवार समृद्ध होने और समाधानित रहने के आधार पर दयापूर्ण कार्य-व्यवहार सार्थक होना देखा गया है। दयापूर्ण कार्य-व्यवहार की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति समग्र व्यवस्था में भागीदारी का ही स्वरूप है। इतना ही नहीं व्यवस्था स्रोत सहित व्यवस्था में भागीदारी का स्वरूप है। इस प्रकार दयापूर्ण कार्य-व्यवहार का कार्य सार्थकता और उसकी अनिवार्यता स्पष्ट होती है। मूलतः यह सब अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था के लक्ष्य में प्रतिपादित और प्रवर्तित है। इसका दृष्टफल मानवापेक्षा रूपी समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व है। यह अनुभवमूलक प्रणाली से ही हर मानव में सार्थक होना पाया जाता है। अस्तु, मानवीयतापूर्ण आचरण सहअस्तित्व में अनुभवमूलक विधि से और जीवन ज्ञान सहित ही अखण्ड समाज-सार्वभौम व्यवस्था सम्पन्न होना देखा गया है जो स्वयं में स्रोत के रूप में होना पाया जाता है। परिवार मानव पद में ही मानवीयतापूर्ण आचरण सार्थक हो पाता है। परिवार में न्याय सार्थकता प्रमाणित रहता ही है। इसी आधार पर अर्थात् परिवार मानव ही व्यवस्था मानव होने के आधार पर बंधनमुक्ति के प्रमाण स्पष्ट हो जाते है। **न्याय सुलभता से स्वाभाविक रूप में भ्रमित आशा, विचार, इच्छा बन्धन से मुक्ति स्वाभाविक है।** इससे पता चलता है न्याय प्रदायी योग्यता का विकसित होना ही बन्धन से मुक्ति का गवाही है। शरीर या मोह से ही मानव संपूर्ण प्रकार के अन्याय और कुकर्म करता है। इसे हर मानव, हर स्थिति में आंकलित कर सकता है। परिवार मानव विधि से हर काल, हर परिस्थिति में (मानवीयता पूर्ण परिस्थिति में) न्याय प्रदायी योग्यता और क्षमता को प्रमाणित करना सहज है। यही प्रधान रूप में मुक्ति का प्रमाण है। ऐसी परिवार मानव के रूप में जीने की सम्पूर्ण चित्रण स्वयं में समाज रचना का चित्रण है।

बन्धन से मुक्त होने का स्रोत संभावना जीवन सहज विधि से ही स्पष्ट हो चुकी है। सम्पूर्ण अस्तित्व ही व्यवस्था है। अस्तित्व में सम्पूर्ण वस्तुएँ अपने त्व सहित व्यवस्था के रूप में होना इसका गवाही है। अस्तित्व में मानव जागृतिपूर्वक ही व्यवस्था के रूप में व्यक्त हो पाता है। मानव भी अस्तित्व सहज अभिव्यक्ति है। मानव भी अपने त्व सहित व्यवस्था के रूप में जीने की कला, विचार शैली, अनुभव, बलार्जन करना ही

मानवीयतापूर्ण शिक्षा-संस्कार का सार्थक स्वरूप है। अस्तित्व में अनुभवमूलक विधि से ही अनुभव बल से जीने की कला, जीने की कला से अनुभव बल पुष्ट होना पाया जाता है। ऐसी पुष्टि ही मानव परंपरा में उत्सव है। हर व्यक्ति उत्सवित रहना चाहता है। जागृति का फलन ही उत्सव का स्रोत है।

जागृतिपूर्वक ही हर व्यक्ति प्रमाणित होना पाया जाता है। जागृति को अनुभवमूलक अभिव्यक्ति क्रम में जागृति और जागृतिपूर्णता स्पष्ट होता है। मानव व्यवस्था में जागृत होने से व्यवस्था के रूप में जीना प्रमाणित हो पाता है। इसी पद को अर्थात् जागृत पद क्रियापूर्णता है। क्रियापूर्णता का तात्पर्य भी मानवीयतापूर्ण विधि से करने योग्य सभी कार्य सम्पन्न होने की विधि से है। यह कायिक, वाचिक, मानसिक, कृत, कारित, अनुमोदित विधि से होना पाया गया है। यही मानव सहज जागृति का विस्तार का भी द्योतक है। इन्हीं आधारों के महिमा को क्रियापूर्णता से इंगित किया है। न्याय और व्यवस्था में जीना ही इसका सार्थकता है। फलस्वरूप व्यवस्था की सार्वभौमता मानव सहज समाज में अखण्डता सूत्रित, व्याख्यायित, वैभवित हो पाती है। ऐसे अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था के स्रोत रूप में कार्य करने वाला मानव, देव मानव, दिव्य मानव है। यह विचार बन्धन से मुक्ति का स्वरूप है। इनमें से दिव्य मानव आचरणपूर्णता को प्रमाणित करना देखा गया है। इसी पद को जागृतिपूर्णता नाम दिया है। इनके कार्यरूप को अखण्ड समाज और सार्वभौम व्यवस्था का स्रोत सहित जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन, मानवीयतापूर्ण आचरण में प्रमाण के रूप में होना पाया जाता है। जागृतिपूर्णता ही प्रमाण का आधार है। हर व्यक्ति प्रमाण होना चाहता है। इसीलिये मानव परंपरा में दिव्य मानवीयता वांछित व आवश्यक है। इस अवस्था में बन्धन मुक्ति प्रमाण होना पाया जाता है। यही बन्धन मुक्ति का सार संक्षेप स्वरूप है। मुक्ति को आचरण में ही प्रमाणित होना पाया जाता है। व्यवहार कार्य में ही साक्षित होना पड़ता है। सम्पूर्ण अस्तित्व ही प्रकाशमान होने के कारण मानवीयता, देवमानवीयता, दिव्यमानवीयता भी प्रकाशित होना स्वाभाविक है।

बंधन मुक्ति क्रम, मुक्ति (मोक्ष) और अभ्यास

सहअस्तित्व में अनुभव सहज प्रयोजनों को प्रमाणित अर्थात् जागृति क्रम में ही बन्धन मुक्ति होना दृष्टव्य है। मानव इकाई (सम्पूर्ण मानव इकाई) अपने आरंभिक काल से ही पहचानने-निर्वाह करने के क्रम को जारी रखा है। फलस्वरूप नस्ल, रंग, जाति, भाषा, देश, काल, दिशा, वस्तु उपयोग (उपभोग के लिये), अधिक, कम को पहचानने के लिये प्रयत्न किया ही है। यह सभी प्रक्रियाएँ जागृति क्रम में प्रमाणित होते हुए जागृति प्रमाणित होना अभी भी प्रतीक्षित है ही। अभी तक विविध प्रकार से स्थापित सामुदायिक परंपराएं अपने श्रेष्ठता को अहमता के रूप में (भ्रमित निर्णय के रूप में) पालता हुआ इस वर्तमान में देखने को मिल रहा है। इसमें मूलतः साम्य ध्रुव बिन्दु को मानव जाति अर्थात् सम्पूर्ण सामुदायिक परंपराएँ पहचानने

से वंचित रह गया। इसी एकमात्र कारण से संघर्ष प्रवृत्ति मानव अथवा सभी समुदाय अथवा सर्वाधिक समुदाय उसकी तैयारी मान ली गई। यही भ्रमित विधि से श्रेष्ठता को मान लेना स्पष्ट हुआ। इसका साक्ष्य अभी तक यही है। सामरिक साधन और तकनीकी से पारंगत, अन्य देशों और समुदायों को शोषण करने में अभ्यस्त समुदाय; देश, विकसित देश और विकसित समुदाय कहे जा रहे हैं और माने जा रहे हैं। इस साक्ष्य से यह स्पष्ट हो जाता है कि धोखेबाजी की अहमता विकास के नाम से किस प्रकार से स्थापित हुआ है। यह उल्लेख यहाँ भ्रम मुक्ति की आवश्यकता अथवा अनिवार्यता कितनी समीचीन है इस ओर ध्यान दिलाने के लिये प्रस्तुत किया।

भ्रम मुक्ति के संबंध में इसके पहले ध्यान में ला चुके हैं कि न्याय, धर्म, सत्य में जागृत होना है। जागृत होने वाला वस्तु जीवन ही है। जीवन का रचना, स्वरूप, शक्ति, बल और लक्ष्य हर मानव जीवन में समान है। जीवन लक्ष्य केवल जागृति है। हर मानव में यह परीक्षण निरीक्षण पूर्वक प्रमाणित होता है। हर मानव अज्ञात को ज्ञात करने; अप्राप्त को प्राप्त करने के क्रम में ही है। इस क्रम में हर मानव जानने, मानने, पहचानने, निर्वाह करने की प्रक्रिया में पारंगत होने के लिये प्रयत्नशील है। जागृति ही भ्रम मुक्ति का आधार है। जागृति के बिन्दु न्याय, धर्म, सत्य सहज प्रमाण परंपरा ही है। इसके कार्यरूप (जागृति सहज) को पहले स्पष्ट किया जा चुका है। जीवन में होने वाले अनुभव, अवधारणा और चिन्तन ही मानव परंपरा में जागृति प्रमाणित होने का आधार है क्योंकि जीवन ही जागृत होना, शरीर जीवन्त रहना ही संज्ञानशील और संवेदनशील कार्यों का आधार है। जीवन्तता का स्रोत जीवन है। शरीर को जीवन जीवन्त बनाए रखने के आधार पर ही जीवन अपने जागृति और आशयों को मानव परंपरा में प्रमाणित कर पाता है। इन्हीं प्रयोजनार्थ शरीर और जीवन के साकार रूप में मानव का होना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। इस पृष्ठभूमि से यह पता लगता है हर मानव जागृति का प्यासा है।

प्रिय, हित, लाभ, भय, प्रलोभन, आस्था, संघर्ष, विषय चतुष्टयों में प्रवृत्तियाँ, संग्रह और सुविधा लिप्सा ये सब जागृति क्रम को स्पष्ट करता है। जागृति जीवन सहज सर्वोपरि अभीष्ट है। जागृति के बिना जीवन अपेक्षा पूरा होता नहीं साथ ही मानवापेक्षा भी सफल नहीं होता। अतएव अभय अपेक्षा सहज सफलता सार्वभौम लक्ष्य के रूप में पहचाना जा सकता है। यह सर्वसुलभ होने के लिए अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था ही एक मात्र दिशा है। इसे संतुलित नियंत्रित बनाए रखने के लिये मानव में मानवत्व ही एकमात्र स्रोत है। मानवत्व ही सार्वभौम व्यवस्था, अखण्ड समाज का सूत्र और व्याख्या है। इस क्रम में मानवत्व को पहचानने की विधि केवल जागृति विधि होना ही पाया जाता है। जागृति सर्वमानव के लिये वरेण्य है। इसीलिये जागृति की ओर ही एकमात्र मार्ग मानव मात्र के लिये सुस्पष्ट है।

सम्पूर्ण जीवन क्रियाकलाप की दो स्थितियों को मानव में अध्ययन किया गया है। इनमें से पहला है - चित्रण के अनुरूप, वृत्ति और मन का परावर्तन और प्रत्यावर्तन होना। दूसरा है अनुभव के अनुरूप बुद्धि, चित्त, वृत्ति, मन का परावर्तन और प्रत्यावर्तन होना। जहाँ तक चित्रण के आधार पर प्रत्यावर्तन, परावर्तन होती है - वह सुनने, आँखों से देखने के संयोग से चित्रण कार्य में पारंगत हुआ है। सुनाने की सभी क्रियाकलाप को श्रुति कहा है। ऐसे सुनने की ध्वनि, शब्द, वाक्य, गद्य, पद्य, सूत्र, व्याख्या, छन्द, प्रास, लय, ताल के साथ आदमी श्रवण विधि को विकसित किया है। इसी के साथ भाषाएँ भी विकसित हुई है। सम्पूर्ण शब्द किसी क्रिया, वस्तु, स्थिति, गति, परिणाम, प्रक्रिया, घटनाओं के नाम से प्रस्तुत है। घटना विहीन शब्दों को ज्ञान मानकर चलें और कुछ-कुछ घटना के साथ चलने लगे तब इसको विज्ञान कहेंगे। ये घटनायें, उपकारात्मक स्वरूप में, उपयोगी स्वरूप में दूरदर्शन, दूरश्रवण, दूरगमन संबंधी वस्तुएँ हैं। इसके अलावा सामरिक तंत्र के लिए जो कुछ भी घटनाओं को घटित किया गया है वह सब ह्रास, समस्या, क्लेश का ही कारण होना मूल्यांकित हो चुकी है। विवशतावश भले ही अपने अहमता को (भ्रम बंधन को) बढ़ावा देने की विधि अपनाते रहें। सामान्य आकांक्षा संबंधित सभी उत्पादन विधियाँ आदि काल से भी क्रियागत विधि से विकसित होते ही आया। जहाँ तक कृषि, बागवानी, उद्यान कार्यों में जितने भी उन्नत प्रजाति स्थापित हुए वह सब बीजानुषंगीय विधि से कार्यरत होने योग्य हुई और उन्नति के नाम से अत्याधुनिक बीजगुणन तकनीकी विकसित हुई, वह बीजानुषंगीय विधि से स्थिर नहीं हो पायी। बीजानुषंगीय स्थिरता का तात्पर्य यह है बीज के अनन्तर पौधा, फल, बीज होना स्पष्ट है। उस विधि से बारंबार अथवा निरंतरता को बनाये रखने की विधि। इसके विपरीत बीज को डालने के उपरांत फल बीज, मूल बीज के अनुरूप न होने पर अस्थिरता कही गई है, यह भी सुस्पष्ट है। जितने भी दूरश्रवण, दूरदर्शन, दूरगमन संबंधी आधारभूत मूल प्रक्रियाओं का अनुसंधान हुआ है यह महत्वपूर्ण विज्ञानियों से अनुसंधानित नहीं हुई। यथा भौतिक शास्त्र, रासायनिक शास्त्र के संयोग से पैदा हो गया-ऐसा कुछ हुआ नहीं। ये घटनाएं मानव सहज कल्पनाशीलता, कर्म स्वतंत्रता क्रम में घटित हुआ इसे विज्ञान सम्मत माना गया। अभी भी इन घटनाओं में पारंगत बनाने की क्रियाकलाप को तकनीकी के नाम से पढ़ाया जाता है। इस प्रकार विज्ञान तकनीकी गति अपने में अपने ढंग से प्रेरणादायी होना देखा गया है। ये सब होने मात्र से मानव की प्रवृत्ति में कुछ गुणात्मक परिवर्तन हो गये ऐसा कुछ हुआ नहीं। अच्छा कपड़ा पहना हुआ, अच्छा सड़क, अच्छा गाड़ियों में घूमता हुआ आदमी को देखा जाता है। युद्ध, भय, संघर्ष इस शताब्दी में सर्वाधिक उग्र रूप धारण किया है। आदिमानव जैसा भय-भ्रम-शंका-कुशंकाओं से ग्रसित रहा है वैसा आज भी यह मानव जाति दिखाई पड़ता है। विभीषिका का तात्पर्य भय से पीड़ित मानव द्वारा भय को घटित करने के रूप में है। ऐसे विभीषिकाएँ

सर्वाधिक रूप में मानव में निहित अमानवीयता के भय से प्रताड़ित, पीड़ित, संघर्षरत होना दिखाई पड़ती है।

संघर्ष का मूल मुद्दा अधिक संग्रह, अधिक सुविधा और पद ही है। पद से सुविधा, सुविधा से पद तक अनुवर्तीयता को भले प्रकार से किशोर अवस्था तक की पीढ़ियों में प्रभावित होना इस शताब्दी में साक्षित हुआ है। संघर्ष का परिणाम उभय नाश या एक का अधिक, एक का कम नाश घटित होना देखा गया है। तीसरा कोई परिणाम संघर्ष से निकलता नहीं। एक का सुरक्षा, दूसरे का नाश या उभय सुरक्षा ये दोनों संघर्ष विधि से निकलता नहीं है। उल्लेखनीय यही है किसी के नाश से हम सम्पन्न हो जायेगें ऐसा सोचते हुए ही संघर्ष किया जाता है। यह संघर्ष शासन और उसके विद्रोही संगठनों के साथ, इतना ही नहीं परिवार-परिवार के साथ और व्यक्ति, व्यक्ति के साथ देखने का मिला। यह संघर्ष अथवा संघर्ष की पराकाष्ठा ही आज समाधान के लिए एक मार्ग प्रशस्त करता है अथवा प्यास जगाता है। हर संघर्ष शांति की अपेक्षा में अथवा समाधान की अपेक्षा में ही आरंभ किया हुआ सुनने में मिलता है। उल्लेखनीय बात यही है संग्रह और सुविधा का तृप्ति बिन्दु होता नहीं। इसके लिए किया गया सभी संघर्ष व्यर्थ होना, पीड़ा का ही कारण होना पाया जाता है। अतएव संघर्ष ही बंधन की पराकाष्ठा का प्रकाशन है। समाधान और अनुभवमूलक विधि से किया गया सम्पूर्ण विचार, व्यवहार, कार्य, व्यवस्था और आचरण ही बन्धन मुक्ति का साक्ष्य और प्रमाण है। समाधान से ही समस्या की मुक्ति और प्रामाणिकताएं सदा-सदा के लिए छल-कपट, दंभ, पाखंड से मुक्ति है। इच्छा बन्धन जटिलतम रूप में मानव के कर्म स्वतंत्रता, कल्पनाशीलतावश विन्यासित हुआ है। विन्यासित होने का तात्पर्य भ्रमात्मक विचारपूर्वक छल, कपट, दंभ, पाखण्ड के रूप में मानव अपने को प्रस्तुत किया। यही आज की एक वीभत्सता का रूप है। इससे परिवर्तित होकर स्वतंत्रता, न्याय, समाधान और प्रामाणिकतापूर्ण अधिकार पाना ही अभीष्ट है। इसी तात्पर्यवश 'अनुभवात्मक अध्यात्मवाद' को विचारार्थ मानव के सम्मुख प्रस्तुत किया है।

न्याय का साक्षात्कार संबंध, मूल्य, मूल्यांकन, उभय तृप्ति के रूप में होने की प्रक्रिया है। यही न्याय प्रदायी क्षमता का द्योतक है। संबंध अपने में (सभी संबंध) परस्पर पूरक होना एक शाश्वत् सिद्धांत है। इसकी पुष्टि सहअस्तित्व, सहअस्तित्व में पूरकता सर्वमानव वांछित, अपेक्षित, वैभव है। ऐसी क्रियाएँ अर्थात् पूरक क्रियाएँ पुष्टिकारी, संरक्षणकारी, अभ्युदयकारी और जागृतिकारी प्रयोजनों के रूप में दिखाई पड़ती है। पुष्टिकारी कार्यों को शरीर पोषण, विचार पोषण, कार्य पोषण, आचरण पोषण, ज्ञान और दर्शन पोषण के रूप में देखने को मिलता है। यह पोषण विभिन्न संबंधों में घटित होता हुआ प्रत्येक व्यक्ति अनुभव कर सकता है। जैसा मातृ संबंध में शरीर पोषण, शील संरक्षण; पितृ संबंध में शील, आचरण, शरीर संरक्षण;

गुरु-शिष्य संबंध में शिक्षा, ज्ञान, दर्शन का पुष्टि और संरक्षण; भाई-बहन, मित्र, पति-पत्नी, साथी-सहयोगी इन सभी संबंधों में सर्वतोमुखी समाधान (अभ्युदय) की अपेक्षाएँ जीवन सहज रूप में ही होना देखा गया है। इतना ही नहीं सभी संबंधों में किंवा नैसर्गिक संबंधों में भी समाधान, पुष्टि, पोषण, संरक्षण की अपेक्षा, आवश्यकता, प्रवृत्ति जीवन सहज रूप में आंशिक रूप में भ्रमित अवस्था में भी होता है। इसमें पूर्ण जागृत होने की संभावना समीचीन है। इस शताब्दी के दसवीं दशक में इसकी अपरिहार्यता अपने आप में समीचीन हुई है कि मानव इतिहास के अनुसार गम्य स्थली के रूप में सर्वतोमुखी समाधान और प्रामाणिकता ही है। कार्यरूप में सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी ही कार्य है। आचरण के रूप में मानवीयतापूर्ण आचरण ही एक मात्र सूत्र है। अनुभव के सूत्र में सहअस्तित्व में अनुभव प्रमाण ही सूत्र है। विश्लेषण के रूप में पदार्थ, प्राण, जीव और ज्ञानावस्था ही है। उपलब्धि के रूप में जो मानवापेक्षा सहज विधि से समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व अनुभव सहज प्रमाण ही है। जीवन अपेक्षा सहज रूप में तृप्ति, सुख, शांति, संतोष, आनन्द ही है। जागृतिपूर्ण विधि से जीने के क्रम में सहअस्तित्व ही विशालता है। ये सब बन्धन मुक्ति का साक्ष्य है। जागृतिपूर्ण विधि से किया गया मानव सहज अभिव्यक्तियाँ है। यह सभी तथ्य को विधिवत देखा गया है, समझा गया है, जीया गया है और अंत में मानवीयतापूर्ण आचरण व्यवहार पूर्वक हर व्यक्ति सर्वतोमुखी समाधान का धारक-वाहक हो सकता है यही "अनुभवात्मक अध्यात्मवाद" का सार्थकता है।

सर्वतोमुखी समाधान अपने-आप में सहअस्तित्व में जागृत होने का फलन है अर्थात् अस्तित्व को सहअस्तित्व के रूप में जानने-मानने और पहचानने का फलन है। यह स्वयं व्यवस्था सहज कड़ी-दर-कड़ी के रूप में प्रमाणित होना पाया जाता है। मानव परंपरा में व्यवस्था स्वयंस्फूर्त अभिव्यक्ति है। क्योंकि स्वायत्त मानव मानवीयतापूर्ण शिक्षा पूर्वक प्रमाणित होना देखा गया है और ऐसे स्वायत्त मानव ही परिवार मानव और व्यवस्था मानव के रूप में जीना और प्रमाणित होना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। अस्तु, स्वायत्त मानव सहज अभिव्यक्ति परिवार व्यवस्था में और समग्र व्यवस्था में भागीदारी करने के अर्हता से परिपूर्ण रहता ही है। इसलिये हर स्वायत्त मानव व्यवस्था में, से, के लिए भागीदारी को निर्वाह करना सहज है। इस प्रकार हर नर-नारी स्वायत्त होना आवश्यक है।

जागृति विधि का लोकव्यापीकरण मानवीयतापूर्ण शिक्षा-संस्कार, कार्यविधि से सम्पन्न होना भी देखा गया है। मानवीयतापूर्ण शिक्षा अपने में सत्ता में संपृक्त प्रकृति नित्य वर्तमान और विकास क्रम विकास एवं जागृति क्रम जागृति सहज विधि से पदार्थ, प्राण, जीव और ज्ञानावस्थाओं का पूरकता, उपयोगिता, उदात्तीकरण का अध्ययन है। जिसके फलस्वरूप प्रत्येक मानव में स्वायत्तता, परिवार व्यवस्था में जीने की

कला और समग्र व्यवस्था में भागीदारी स्वयं-स्फूर्त होना स्पष्ट हुआ है। ये सभी तथ्य अस्तित्व में अनुभव होने का ही फलन है। कोई भी व्यक्ति अस्तित्व में अनुभवमूलक विधि से प्रमाणित कर सकता है। इन सम्पूर्ण तथ्यों का अनुभवगामी विधि से अध्ययन करने और उसमें पारंगत होने के आधार पर सर्वतोमुखी समाधान जीवन सहज विधि से स्वीकृत रहता ही है। ऐसे अनुभव स्वीकृत होने के क्रम में न्याय, साक्षात्कार पूर्वक स्वीकृत रहता ही है। न्याय और समाधान की सार्थकता सहज गरिमा और महिमा ही अभिव्यक्ति क्रम में अनुभवपूर्ण होना अर्थात् अनुभव से परिपूर्ण होना पाया गया है। अनुभव, बोध, संकल्प, चिन्तन सहज विधि से किया गया चित्रण, तुलन, विश्लेषण, आस्वादन और चयन जीवन जागृति के अनन्तर सम्पन्न होने वाले कार्यकलाप है। जागृति ही भ्रम मुक्ति का प्रमाण है और लक्षण भी। प्रमाण का लक्षण प्रमाणित होने के लिये प्रेरक होना ही वर्तमान है। इन तथ्यों प्रक्रियाओं के आधार पर हर मानव अपने अर्हता को परीक्षण निरीक्षण पूर्वक मूल्यांकित कर पाता है। फलस्वरूप अनुभवमूलक विधि प्रक्रिया और फलन की संगीतमयता सहित हर मानव परिवार मानव के रूप में वैभवित होना संभव हो जाता है। इसकी आवश्यकता, अपेक्षा सब में देखने को मिलता है और संभावना सर्व समीचीन है। अस्तु, मानव अनुभवमूलक विधि से जीने की कला पूर्वक अनुभवों को पुष्ट करना चाहता है। यह अस्तित्व में अनुभवमूलक प्रणाली, पद्धति और नीतिपूर्वक सार्थक-सफल होना देखा गया है।

मानव जीवन और शरीर का संयुक्त साकार रूप है।

अस्तित्व में अनुभव होता है।

1. जीवन अस्तित्व में अनुभूत होता है।
2. जीवन और शरीर के संयुक्त साकार रूप में हर मानव परंपरा के रूप में विद्यमान है।
3. अस्तित्व में मानव अविभाज्य है।
4. सम्पूर्ण अस्तित्व सत्ता में संपृक्त प्रकृति है। यही चार अवस्था में वर्तमान है।
5. इसी धरती पर चारों अवस्थाएँ प्रमाणित है।
6. इन चार अवस्थाओं में से मानव ही अनुभवमूलक विधि से विचार शैली और सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी करने के रूप में जीने की कला को जानने, मानने, पहचानने, निर्वाह करने योग्य इकाई है।

जागृत मानव सहज जीने की कला ही मानव पंरपरा का अक्षुण्ण गति है। विश्लेषण और प्रयोजन, प्रयोजन और विश्लेषण सम्मत जागृति सहज विचार शैली, अस्तित्व में अनुभव, सम्पूर्ण अस्तित्व को चार अवस्था के रूप में जानने, मानने, पहचानने, निर्वाह करने के रूप में प्रमाणित होना देखा गया है।

मानव ही अनुभव को व्यवहार में प्रमाणित करता है। फलस्वरूप मानव सहज अपेक्षा और जीवन सहज अपेक्षा सर्वसुलभ होना स्वाभाविक है। इसलिये यह सर्व स्वीकृत भी है। सम्पूर्ण प्रयोग सामान्य आकांक्षा, महत्वाकांक्षा संबंधी वस्तु के रूप में प्रमाणित होता है। यह सब व्यवस्था में उपयोग, सदुपयोग, प्रयोजनशीलता के अर्थ में प्रमाणित होता है। यही इसकी सार्थकता है। इससे यह भी पता चलता है कि **नैतिकता पूर्वक ही मानव व्यवस्था में भागीदारी को निर्वाह कर पाता है। मानवीयतापूर्ण चरित्र पूर्वक व्यवहार करता है। मूल्य और मूल्यांकन पूर्वक जी पाता है अथवा संबंध, मूल्य, मूल्यांकन, उभय तृप्ति पूर्वक जी पाता है। यही सुख, सुन्दर, समाधान पूर्वक जीने की कला का स्वरूप है।** प्रामाणिकता मूल्य, चरित्र, नैतिकता का अविभाज्य स्त्रोत है। प्रामाणिकता अस्तित्व में अनुभव सहज अभिव्यक्ति है। सम्पूर्ण अस्तित्व व्यवस्था का ही ताना-बाना होने के कारण मानव भी व्यवस्था में जीने की आवश्यकता बना ही रहा।

चारों अवस्थाओं का अनुभव ही जागृति है। चारों अवस्थाएँ अस्तित्व सहज सहअस्तित्व के रूप में वर्तमान होना ही स्थिति सत्य, वस्तु स्थिति सत्य, वस्तुगत सत्य के रूप में सूत्रित और व्याख्यायित है। इस प्रकार अस्तित्व ही सम्पूर्ण स्थिति, गति, सूत्र और व्याख्या है। अस्तित्व न घटता है न बढ़ता है। इसकी अक्षुण्णता वर्तमान के रूप में होना देखा गया है। स्थिति सत्य अपने स्वरूप में सत्ता में संपृक्त प्रकृति के रूप में विद्यमान है ही। यही विद्यमानता विकास, पूरकता, उदात्तीकरण, जागृति और प्रामाणिकता के रूप में व्यक्त होना स्पष्ट है। वस्तु स्थिति सत्य देश, काल, दिशा के रूप में देखने को मिलता है। यह परस्परता के आधार पर समग्रता के साथ व्याख्या का होना देखा जाता है। जैसे-एक से अधिक परमाणु अंशों के परस्परता में एक दूसरे के बीच एक निश्चित दूरी जिस स्थिति में सभी अंश एक निश्चित आचरण के लिये अर्पित रहना देखने को मिलता है। इसमें निश्चित दूरी ही देश के रूप में, निश्चित गति ही काल के रूप में, निश्चित क्रिया (आचरण) ही दिशा के रूप में व्याख्यायित है। इसलिये अनेक अणुओं के परस्परता में अणुरचित पिण्डों के परस्परता में देश, काल, दिशा स्पष्ट होना स्वाभाविक है। इसलिये प्रत्येक धरती में परस्पर वस्तुओं के बीच की एक निश्चित दूरी ही देश के रूप में दिखाई पड़ती है। एक ही धरती के परस्पर वस्तुओं अथवा परस्पर ग्रह गोलों के निश्चित दूरी अर्थात् देश और दिशा दोनों स्पष्ट होते हैं और क्रिया की अवधि में ही काल गणना का होना देखा गया है।

वस्तुगत सत्य, हर वस्तु में समाहित रूप, गुण, स्वभाव, धर्म का ही व्याख्या है। प्रत्येक एक अपने वातावरण सहित सम्पूर्ण होने के कारण प्रत्येक एक में यह चारों आयाम समाहित रहता ही है और अविभाज्य रहता है। धर्म शाश्वत् रूप यथास्थिति में वर्तमान होना स्पष्ट होता है। हर अवस्था में धर्म सुस्पष्ट है। स्वभाव, मूल्यों के रूप में हर इकाई में विद्यमान रहता है। इसी को मौलिकता के रूप में भी पहचाना जाता है। धर्म और मूल्यों के आधार पर ही मौलिकता का पहचान हो पाता है। हर वस्तु प्रकाशमान है ही। प्रकाशमानता का मौलिक तत्व धर्म और स्वभाव ही है। गुण सदा ही गति के रूप में होना देखा गया है। यह सम, विषम, मध्यस्थ रूप में गण्य होना देखा गया है। इसमें से मध्यस्थ गति धर्म और स्वभाव के मौलिकता और उसकी अक्षुण्णता के अर्थ में व्याख्या है। रूप का जहाँ तक व्याख्या है वह आकार, आयतन, घन के रूप में ही होता है। जीवन चैतन्य इकाई होने के कारण, एक ही परमाणु होने के कारण इसका आकार, आयतन, घन स्पष्ट हुआ रहता है।

हर विकासशील परमाणु भारबन्धन और अणुबन्धन सहित कार्य करता है। हर विकासशील परमाणु सत्ता में ही क्रियाशील रहना पाया जाता है। हर परमाणु गठनपूर्वक ही परमाणु है। गठन का स्वरूप मध्यांश और आश्रित अंश के रूप में होना व निश्चित दूरी में होना सहअस्तित्व सहज कार्यशीलता है। आश्रित अंश मध्यांश के सभी ओर चक्राकार में गतिशील रहना होता है। इसीलिये हर परमाणु गतिपथ (परिवेश) सहित परमाणु है। इनमें अंशों का अधिकाधिक समाहित होना एक से अधिक गतिपथ का होना भी होता है। जैसे-जैसे अंशों की संख्या बढ़ती जाती है वैसे-वैसे मध्य में भी अंश जमा होते जाते है। यह परमाणु में भार बन्धन का सूत्र है। सहअस्तित्व विधि से अंश-अंशों के साथ कार्य करने की विधि स्पष्ट है। इसी प्रकार परमाणु, परमाणु के साथ और अणु, अणु के साथ सहअस्तित्व को व्यक्त करने के क्रम में सहअस्तित्व का प्रकाशन किये हुए है। अणुरचित रचना ही वृहद रचना के रूप में ग्रह-गोल रूप में द्रष्टव्य है। यह पूर्णतया अस्तित्व सहज सहअस्तित्व का नित्य प्रभावी कार्य है। परमाणु में विकास पूर्ण (गठनपूर्ण) होने के बाद अणुबंधन व भारबंधन से मुक्त हो जाते हैं। यही चैतन्य परमाणु जीवन पद में प्रतिष्ठित रहना पाया जाता है। ऐसे चैतन्य इकाई भार और अणुबन्धन से मुक्ति पाकर आशा बन्धन से अपने कार्य गतिपथ सहित पुंजाकार रूप में प्रतिष्ठित होना, ऐसे पुंजाकार का एक आकार होना, ऐसे आकार के एक शरीर रचना (पिण्डज या अण्डज विधि से) रचित रहना अस्तित्व सहज कार्यक्रम है। इसी कार्यक्रम के गति क्रम में मानव शरीर रचना भी एक स्वाभाविक क्रिया है। जीवन में आशा बन्धन के उपरान्त विचार बन्धन, इच्छा बन्धन बलवती होते हुए मानव शरीर द्वारा कर्म स्वतंत्रता, कल्पनाशीलता, क्रियाशीलता, क्रियाकलाप क्रम उसके परिणाम में आंकलन होना, फलत: जागृतिक्रम परंपरा के रूप में मानव प्रतिष्ठा होना, इसी कर्म स्वतंत्रता-कल्पनाशीलता और जागृतिक्रम प्रणालीवश (क्योंकि यह नियति क्रम है) अव्यवस्था का भास-

आभास में पीड़ा होना स्वाभाविक रहा। इसी आधार पर जागृत होने की आवश्यकता, सार्वभौम व्यवस्था का शरण स्वीकृत होना देखा गया। यही समग्रता के साथ मानव और समग्र व्यवस्था के अंगभूत रूप में सर्वमानव समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व सम्पन्न होने की सहज विधि समीचीन है। समग्रता के साथ मानव का निरीक्षण, परीक्षण के फलन में यह तथ्य अनुभव संगत विधि से देखने को मिला।

उक्त विश्लेषण पूरकता विधि से भौतिक-रासायनिक क्रिया-प्रक्रियाएँ, परमाणु में अंशों का परिवर्तन, परस्पर अणुओं के पूरक विधि से रासायनिक द्रव्यों की महिमा सम्पन्न कार्यकलाप अनेक रचनाएँ, प्रत्येक रचना अपने वातावरण सहित सम्पूर्ण इसी क्रम में यह धरती भी एक रचना, ग्रह-गोल आदि भी एक रचना है। यह धरती भी अपने वातावरण सहित सम्पूर्ण है। इस धरती का पूरकता परस्पर ग्रह-गोल, सौर-व्यूह, अनेक सौर-व्यूह, अनेक सौर-व्यूहों के समूह रूपी आकाशगंगा परस्परता में पूरकता विधि से कार्य करता हुआ देखने को मिलता है। यही व्यवस्था के रूप में कार्य करने का गवाही है। सौर-व्यूह में हर ग्रह-गोल परस्परता में निश्चित दूरी के साथ ही तालमेल बनाया हुआ दिखाई पड़ते है। ऐसे तालमेल ही व्यवस्था का स्वरूप है। क्योंकि ऐसे तालमेल विधि से पूरकता, उदात्तीकरण, विकास इसी धरती पर देखने को मिलता है। विकसित परमाणु ही चैतन्य इकाई जीवन है; आशा बन्धन जीवों में जीवनी क्रम; आशा, विचार, इच्छा बन्धन से जागृति क्रम मानव के रूप में स्पष्ट है। जागृति क्रम ही जागृति रूपी मंजिल के लिए सीढ़ी होना स्वाभाविक रहा। स्वाभाविक प्रक्रिया का तात्पर्य विकासक्रम, विकास, जागृति क्रम, जागृति और उसकी निरंतरता से है। विकास क्रम भी अपने में निरंतर है। विकास भी निरंतर है, जागृति क्रम भी निरंतर है और जागृति भी निरंतर है। जागृति क्रम का स्वरूप है शिक्षा-संस्कार पूर्वक जागृति की स्वीकृति सम्पन्न होता है। जागृति के अनन्तर मानव कुल सार्वभौम व्यवस्था सहज वैभव सम्पन्न होना। फलस्वरूप जागृति स्वीकृति के अनन्तर प्रमाणित होने का मार्ग प्रशस्त रहता है। इस विधि से अनेकानेक मानव संतान जागृति क्रम में अवतरित होना, जागृतिपूर्ण मार्ग प्रशस्त होना यही मानव कुल का स्वराज्य है, वैभव है।

स्वराज्य व्यवस्था ही होता है, शासन नहीं होता। व्यवस्था के संदर्भ में पहले से उसके स्वरूप को स्पष्ट किया जा चुका है। परिवार मानव विधि से ही स्वराज्य वैभव का उदय होना देखा जाता है। हर परिवार में शरीर यात्रा के लिए शरीर पोषण, संरक्षण एवं समाज गति के लिये आवश्यकीय वस्तुओं को उत्पादित करने का भी कार्यकलाप समाया रहता है। संबंध-मूल्य-मूल्यांकन-उभयतृप्ति अथवा परस्पर तृप्ति विधि से व्यवहार और आचरण को प्रकट करना मूलत: परिवार का तात्पर्य है। ऐसे परिवार में उक्त तीनों प्रकार की आवश्यकताएँ बनी ही रहती है। इसके निर्वाह क्रम में उत्पादन कार्य की आवश्यकता बना ही रहता है। इसका तात्पर्य यह हुआ परिवार गति और समाज गति के लिए उत्पादन कार्य भी एक आवश्यकीय तत्व

है। अस्तु, संबंध-मूल्य-मूल्यांकन और उभय तृप्ति विधि से परिवार और समाज सूत्र और आवश्यकता से अधिक उत्पादन-कार्य में परिवार के हर सदस्य का उपयोगिता-पूरकता विधि से भागीदारी परिवार व्यवस्था और समाज व्यवस्था के सूत्र में प्रमाणित हो पाता है। इसीलिये प्रत्येक परिवार में, से, के लिए न्याय सुलभता, उत्पादन सुलभता, विनिमय सुलभता, स्वास्थ्य-संयम सुलभता नित्य सार्थक होना सहज है। जिसका स्रोत रूप में मानवीयतापूर्ण शिक्षा-संस्कार और स्वास्थ्य-संयम कार्यकलापों के रूप में होना पाया जाता है। इस प्रकार व्यवस्था सार्वभौमता के दिशा में प्रशस्त होता है और अखण्ड समाज का सूत्र भी नित्य प्रभावी होना पाया जाता है। इसमें मूल सूत्र सहअस्तित्व सूत्र ही है। यह अथ से इति तक अनुभवमूलक विधि से ही समझ में आता है। अभिव्यक्ति, संप्रेषणा, प्रकाशन होता है फलत: हर व्यक्ति स्वायत्त मानव, परिवार मानव, समाज व्यवस्था मानव के रूप में प्रमाणित होता है। यही अनुभव परंपरा की गरिमा और महिमा है। इसी का फलन मानवापेक्षा और जीवनापेक्षा परिपूर्ति और तृप्ति व उसकी निरंतरता बन पाती है।

बौद्धिक समाधान का फलन ही बौद्धिक, सामाजिक और प्राकृतिक नियम

अस्तित्व में अनुभव का स्वीकृति ही अस्तित्व बोध और सर्वतोमुखी समाधान है। अस्तित्व अपने में सहअस्तित्व के रूप में वर्तमान है; सदा नियमित और व्यवस्थित है। इसी सत्यतावश मानव भी व्यवस्था में, से, के लिए समाधानित और समृद्धि, अभय और सहअस्तित्व को प्रमाणित करने की विधि बौद्धिक, सामाजिक और प्राकृतिक नियमों के रूप में सार्थक होना पाया जाता है।

नियमपूर्वक ही व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी अस्तित्व में दृष्टव्य है। परमाणु अपने में व्यवस्था व समग्र व्यवस्था में भागीदारी का स्वरूप है। इसी क्रम में अणु, अणुरचित पिण्ड, मृदा, पाषाण, मणि, धातु, प्राणावस्था के बीजानुषंगीय प्रत्येक रचना-विरचना, वंशानुषंगीय सम्पूर्ण रचना-विरचना नियमपूर्वक व्यवस्था के रूप में ही प्रकाशित रहते हैं। पदार्थावस्था परिणामानुषंगीय विधि से 'त्व' सहित व्यवस्था, प्राणावस्था का सम्पूर्ण प्रकाशन बीजानुषंगीय विधि से त्व सहित व्यवस्था, जीव संसार में सम्पूर्ण प्रकाशन वंशानुषंगीय विधि से त्व सहित व्यवस्था व **मानव प्रकृति में संस्कारानुषंगीय (ज्ञानानुषंगीय) विधि से 'त्व' सहित व्यवस्था होना पाया जाता है।**

संस्कार का मूल रूप अनुभव के प्रकाश में किया गया स्वीकृतियाँ है। समग्र अध्ययन का स्वरूप ही है। समग्र अस्तित्व को अनुभव योग्य वस्तुओं के रूप में स्वीकारना प्रमाणित करना ही संस्कार है। संस्कार का तात्पर्य यही है पूर्णता के अर्थ में अनुभवमूलक विधि से प्रस्तुत क्रियाकलाप। शिक्षा के रूप में सार्वभौम व्यवस्था, अखण्ड समाज के अर्थ में स्थापित होना सार्थक संस्कार है। संस्कारित होने का ही प्रमाण है

मानवीयता पूर्ण आचरण और व्यवस्था में भागीदारी। इस विधि से यह स्पष्ट हो जाता है कि अनुभवमूलक विधि से अनुभव योग्य तथ्यों को स्थापित करना। स्थापित करने का तात्पर्य स्वीकृत सहज प्रमाण होने से है। अवधारणा का तात्पर्य अनवरत सुख स्त्रोत स्वीकृति एवं प्रमाण है।

सतत् सुख की अपेक्षा में ही मानव सम्पूर्ण कार्य करता हुआ, सोच-विचार करता हुआ देखा जाता है। इसमें सफल होना ही मानवीयतापूर्ण संस्कार, विचार, कार्य-व्यवहार और अनुभव है। सफलता का प्रमाण जीवनापेक्षा और मानवापेक्षा सफल होने से है। यह अच्छी तरह से देखा गया है कि जीवन अपेक्षा फलवती होने के साथ मानव अपेक्षा फलवती होती है। उसी प्रकार मानव अपेक्षा फलवती होने के साथ जीवन अपेक्षा फलवती होती है। इस तथ्य को हर व्यक्ति अपने में परीक्षण, निरीक्षण पूर्वक निष्कर्षों को निकालते जाएँ तो हर मानव उपलब्धि और संतुष्टि स्थली में पहुँच पाता है। यहाँ इस बात का उल्लेख इसीलिये किया है कि जागृति के साथ-साथ मानव की उपयोगिता, सदुपयोगिता, प्रयोजनीयताएँ फलवती होते हैं। भ्रमित तरीके से नेक इरादे में कुछ भी किया जाए वह प्रमाणित नहीं हो पाता है। भ्रमित विधि का तात्पर्य यही है कि हम जाने बिना ही कुछ करते हैं इसके साथ आस्थाएँ भी जुड़ी रहती हैं। इस बीसवीं शताब्दी के दसवें दशक तक का आंकलन है भय से प्रलोभन और प्रलोभन से आस्था अच्छा लगता है। भय और प्रलोभन के आधार पर ही संघर्ष होना देखा गया है। आस्थावादी क्षणों में मानव अपने आप में जो झलक पाता है उसी को शांति की संज्ञा देते हैं। उल्लेखनीय बात यही है आस्था शनैः-शनैः कोई न कोई विधि से रूढ़िवादी कट्टरपंथी के स्थली में पहुँचा देता है। इन दोनों स्थली में भय और प्रलोभन ही पुनः कार्यरत हो जाता है। इसे भली प्रकार से हर व्यक्ति देख सकता है। अस्तु भय, प्रलोभन, आस्था के संघर्षोंपरान्त एक मात्र दिशा और मार्ग सर्वतोमुखी समाधान ही है।

सम्पूर्ण नियम, विविध कार्य प्रणाली, विचार प्रणाली, व्यवहार प्रणालियाँ समाधान के अर्थ में अनुप्राणित रहने से, सम्पूर्ण समाधान व्यवस्था सूत्र से सूत्रित रहने से, सम्पूर्ण व्यवस्था 'त्व' सहित व्यवस्था के रूप में स्पष्ट रहने से और संपूर्ण व्यवस्था सहअस्तित्व के रूप में वर्तमान रहने से मानव अपेक्षा, जीवन अपेक्षा का फलवती होना सहज है। इसे मानव परीक्षण-निरीक्षण पूर्वक प्रमाणित कर पाता है। जहाँ परीक्षण-निरीक्षण पूर्वक तथ्यों को अनुभव करने का प्रस्ताव है-यह सब चिन्तनाभ्यास का ही स्वरूप है। चाहे चिन्तनाभ्यास हो, चित्रणाभ्यास हो, विषयाभ्यास हो मानव अभ्यासी तो रहेगा ही। हर मानव कायिक, वाचिक, मानसिक, कृत, कारित, अनुमोदित विधि से मानव अपने को अभ्यास विधा में ही प्रशस्त बनाए रखता है। जिसमें से विषयाभ्यास इंद्रिय सन्निकर्ष केन्द्रित होना पाया जाता है और चित्रणाभ्यास विश्लेषण केन्द्रित होना पाया जाता है जिसके लिये श्रुति और स्मृति स्त्रोत होना पाया जाता है। चित्रणाभ्यास सुविधा संग्रह के लिये व्यस्त

रहना देखा गया। चिन्तनाभ्यास पूर्वक मानव स्वायत्त और परिवार मानव के रूप में प्रमाणित होना पाया जाता है। अनुभवमूलक विधि प्रणाली से हर मानव सर्वतोमुखी समाधान सहित समग्र व्यवस्था में भागीदारी को निर्वाह कर सकता है। यही जागृति का सर्वोच्च प्रयोजन भी है।

चिन्तनाभ्यास के साथ-साथ मानव में स्वाभाविक रूप में अनुभवात्मक स्वीकृतियाँ स्वयंस्फूर्त विधि से सम्पन्न होती है। यही संस्कार रूप में प्रतिष्ठित हो जाता है। मानवीयतापूर्ण संस्कार प्रतिष्ठा ही मानवत्व का स्थिर बिन्दु होना देखा गया है। इन्हीं सत्यतावश अनुभूत होना एक आवश्यकीय कार्य होता है। अनुभव जीवन तृप्ति के अर्थ में ही होता है जिसके प्रभाव मात्र से ही मानवापेक्षा की आपूर्ति हो जाती है। इससे यह पता चलता है कि बन्धन वश ही मानव में तनाव और ग्रंथियाँ बनी रहती हैं। बंधन मुक्ति के अनन्तर तनाव रहित विधि से ही सम्पूर्ण कार्यकलाप सम्पन्न होते हैं। यहाँ यह भी बोध समन्वित होता है कि स्वभाव गति प्रतिष्ठा में 'त्व' सहित व्यवस्था अक्षुण्ण रह पाता है। मानव में स्वभाव गति मानवत्व ही होना स्पष्ट हो चुकी है। मानवत्व सहज सम्पूर्ण कार्य यथा बौद्धिक, सामाजिक और प्राकृतिक नियम मानव के स्वभाव गति प्रतिष्ठा में सहज रूप में निर्वाह होना पाया जाता है। इस प्रकार जागृति की आवश्यकता स्वभाव गति प्रतिष्ठा के लिये अनिवार्य है। बौद्धिक समाधान का ध्रुव अस्तित्व और मानव होने की स्वीकृति है। अस्तित्व में मानव ज्ञानावस्था की इकाई होने के कारण मानव और अस्तित्व के बीच चारों अवस्थाएँ अध्ययन के लिये वस्तु होना पाया जाता है। जीवन प्रतिष्ठा सदा-सदा पीढ़ी रहते हुए मानव परंपरा में वैभवित होने के लिये ही संयोगित होना देखा गया है क्योंकि -

1. मानव परंपरा में जागृति और उसका प्रमाण ही तृप्ति का स्त्रोत है। तृप्ति में मानवापेक्षा-जीवनापेक्षा का संतुलन ही है।
2. मानव परंपरा में सर्वतोमुखी समाधान का प्रयोजन, कार्य और प्रमाणों की आवश्यकता बना ही रहता है। फलस्वरूप हर व्यक्ति के लिये भागीदारी का स्थान इसमें बना ही रहता है।
3. जागृति पूर्णता और प्रामाणिकता सहित ही अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था सर्वमानव में, से, के लिए समीचीन है।
4. सर्वतोमुखी समाधान पूर्वक ही स्वायत्त मानव, परिवार मानव, समाज मानव और व्यवस्था मानव प्रतिष्ठा प्रमाणित होता है।
5. जागृति पूर्वक ही अज्ञात का ज्ञात, अप्राप्ति का प्राप्ति समीचीन रहता है।
6. जागृति पूर्वक ही मानव अस्तित्व में अनुभूत होता है अथवा अस्तित्व में अनुभूत होना ही जागृति है।

उक्त क्रम से बौद्धिक रूप में समाधानित होना स्वभाविक है यह तथ्य स्पष्ट हो गया। यह तथ्य भी जागृति का ही द्योतक है। **जागृति के अनन्तर हर व्यक्ति स्वाभाविक रूप में असंग्रह प्रतिष्ठा को समृद्धि पूर्वक, स्नेह प्रतिष्ठा को पूरकता पूर्वक, विद्या प्रतिष्ठा को जीवन विद्या पूर्वक, सरलता प्रतिष्ठा को सहअस्तित्व दर्शन पूर्वक, अभय प्रतिष्ठा को मानवीयता पूर्ण आचरण पूर्वक वैभवित होने के लिए सूझ-बूझ पूर्वक कार्य करता हुआ देखने को मिलता है। यही मुख्यत: बौद्धिक नियम है।** ऐसे बौद्धिक नियम सम्पन्न मानव स्वाभाविक रूप में मानवीयता पूर्ण आचरण सम्पन्न होता है जो मूल्य, चरित्र, नैतिकता का अविभाज्य वैभव है। जिसमें से मानवीयतापूर्ण चरित्र जो स्वधन, स्वनारी/पुरुष, दयापूर्ण कार्य व्यवहार है। जो अखण्ड सामाजिक नियम के रूप में प्रभावित होता है। संबंधो में मूल्यों को पहचानना, निर्वाह करना, मूल्यांकन करना फलस्वरूप उभय तृप्ति ही मानवीय मूल्य का स्वरूप है। तन, मन, धन का सदुपयोग एवं सुरक्षा नैतिकता है। यद्यपि पहले भी सामाजिक नियम और प्राकृतिक नियम का विस्तृत व्याख्या कर चुके हैं। यहाँ जागृति और प्रामाणिकता पूर्वक उक्त तथ्यों को स्मरण में लाना उचित समझा गया है। यहाँ उल्लेखनीय तथ्य यही है अस्तित्व स्वयं सहअस्तित्व के रूप में नियमित है फलत: अस्तित्व में व्यवस्था अक्षुण्ण है। मानव भी अस्तित्व में अविभाज्य है। अतएव नियम त्रय पूर्वक ही मानव मानवापेक्षा और जीवन अपेक्षा को सार्थक बना सकता है।

इस सहज आशय के साथ ही यह तथ्य हर मेधावी व्यक्ति में,से, के लिए स्पष्ट होना स्वाभाविक है कि हम सर्वमानव बंधन मुक्ति रूपी जागृतिपूर्वक ही सर्वतोमुखी समाधान सम्पन्न होते हैं। ऐसे जागृति सम्पन्नता में, से, के लिए मानवीयतापूर्ण शिक्षा-संस्कार विधि ही एक मात्र उपाय है। मानवीयतापूर्ण शिक्षा-संस्कार का मूल वस्तु जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान, मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान है। यह मानव जागृति पंरपरा के लिए सार्थक सिद्ध होता है।

अध्याय - 6

द्दष्टा, कर्ता, भोक्ता

जीवन ही द्दष्टा है-मानव परंपरा में जागृति प्रमाणित होता है।

मानव में किंवा हर मानव में देखने का दावा समाहित है। इसी के साथ और भी देखने की कामना बनी ही रहती है। ये दावा और कामना आँखों से जो कुछ भी दिख पाता है उसी के लिए अधिकतर संख्या में मानव जूझता हुआ देखने को मिलता है यह सर्वविदित तथ्य है। इसी क्रम में और देखने की विधि से प्रकारान्तर से पूरा धरती पूर्व से पश्चिम तक, उत्तरी ध्रुव से दक्षिणी ध्रुव तक और दक्षिणी ध्रुव से उत्तरी ध्रुव तक देख लिया। इसी के आधार पर धरती का सर्वेक्षण कार्य भी सम्पन्न हुआ। इसी क्रम में आगे ग्रह-गोलों को, अनेक सौर व्यूह को देखने की इच्छा निर्मित होती रही। किसी एक पीढ़ी में धरती के मानव चाँद तक जाकर वापस आ गए। चन्द्रमा धरती के सद्दश्य ठोस गड्ढे और पत्थर का होना बताया। वहाँ पानी और वनस्पतियाँ न होने का सत्यापन किया। वहाँ हवा का दबाव नहीं है बताया। वहाँ गये हुए आदमी इसी धरती से पानी और हवा को ले गये थे। सांस लेने के लिए हवा, पीने के लिए पानी आवश्यक रहा ही होगा। इससे बहुत बड़ी-भारी एक कौतूहलात्मक बाधा टल गई कि अन्य धरती से इस धरती तक आदमी पहुँच सकता है। यह एक बड़ी उपलब्धि इस शताब्दी का रहा है। इसमें मानव के लिए सकारात्मक पक्ष यही है, न जाने चाँद धरती के साथ कितने समय से रहा है उसमें अभी तक मानव, जीव, वनस्पति योग्य परिवेश बना नहीं। इस धरती पर इन सबके योग्य वातावरण समृद्ध हो चुका है। यह लाभ मानव को हुआ। उसके उपरान्त अनेकानेक प्रयोगों से अन्य धरती जिस पर इस सौर व्यूह के सीमा में कहीं होने का कल्पना से विभिन्न देशों से अंतरिक्ष यानों को भेजकर (उपग्रह) देखा गया। अभी तक इस सौर व्यूह में जीव-वनस्पति से समृद्ध अन्य धरती का पता नहीं लगा है। सर्वाधिक ग्रहों को विरल अवस्था में ही होना पाया गया। कई ग्रहों के साथ एक से अधिक चन्द्रमा (उपग्रह) का होना भी बताया गया। ये सब देखने के क्रम में ही विस्तृत आंकलन मानव के पास पहुँच चुका है।

उक्त देखने की परिकल्पना विधि से मानव पर जो कुछ भी प्रतिबिम्बित, प्रभावित रहता है वह सब मानव के लिये देखने की वस्तु के रूप में रहता ही है। उल्लेखनीय तथ्य यही है आँखों से अथवा सभी ज्ञानेन्द्रियों द्वारा देखा हुआ वस्तु अपने स्वरूप में दिखता नहीं। यह बात सर्वेक्षण पूर्वक प्रमाणित होता है कि आँखों पर ही वस्तु का सर्वाधिक भाग प्रतिबिम्बित होता है। बाकी अन्य प्रणालियों से उतना अधिक भाग चित्रित

नहीं हो पाता है। आँख के अनन्तर शब्द और कहानी द्वारा मानव की कल्पना में बहुत सारा चीज आता है। ऐसे कथाओं के आधार पर किये गये कल्पनाएँ आँखों में आता नहीं। यही मुख्य मुद्दा है। सर्वमानव के साथ यही घटना घटती रहती है। चाहे कितने ही श्रेष्ठ अभ्यासों में परिपक्व क्यों न हुआ हो, चाहे सामान्य व्यक्ति क्यों न हो इस तथ्य का सर्वेक्षण हर व्यक्ति कर सकता है। यही मुख्य बिन्दु है आँखों से अधिक कल्पना होता है। साथ ही कल्पनाएँ आँखों में दिखती नहीं है। यही व्यथा हर मानव के साथ कमोबेशी बना हुआ है ही। इस मुद्दे में मुख्य रूप में जो विषमता का आधार है वह है देखने का परिभाषा। अभी तक आँखों पर जो कुछ भी प्रतिबिम्बित रहती है, दिखने की वस्तु यही है ऐसी ही मान्यता के आधार पर मानव सहज आँखों से अधिक शक्तिशाली यंत्र-उपकरण को बनाकर भी देखा गया। उपकरणों से दूर की चीज अथवा बहुत छोटी चीज को देखा भी है। इन उपकरणों से परमाणुओं एवम् परमाणु अंशों को देखने का दावा भी किये हैं और दूर में स्थित ग्रह-गोलों को, नक्षत्रों को देखने का सत्यापन किये हैं।

यह सर्वविदित तथ्य है आँखों में जो कुछ भी प्रतिबिम्बित होती है इसे आगे देखने पर पता चलता है मानव की आँखों में जो कुछ भी घटना और रूप दिख पाता है वह आंशिक भाग ही रहता है। हर रूप स्थिति में गति होना पाया जाता है। इस क्रम में रूप का परिभाषा जो आकार, आयतन, घन है उसमें से आकार का ही आंशिक भाग आँखों में प्रतिबिम्बित होता है। आकार और आयतन, घन अविभाज्य है। जो कोई भी आकार है सत्ता रूपी ऊर्जा में, शून्य में समायी रहती है, सभी ओर से सीमित रहता ही है। यही उस वस्तु का विस्तार अथवा आयतन का तात्पर्य है। आकार का स्वरूप लंबा, चौड़ा, ऊँचा, मोटा, गहरा, गोल, चपटा, बेलनाकार, विभिन्न संख्यात्मक कोणाकार में होना पाया जाता है। ऐसे सभी रूप में, से केवल आकार, आयतन का आंशिक भाग ही आँखों में प्रतिबिम्बित हुआ रहता है इससे किसी वस्तु का वर्तमान में होना स्वीकार होता है। स्वीकारने का पक्ष जीवन पक्ष का ही कार्यप्रणाली है।

हर परस्परता में पत्थर-पत्थर अथवा मृदा, पाषाण, मणि, धातुओं के परस्परता में, अन्न-वनस्पति की परस्परता में, पदार्थावस्था और प्राणावस्था की परस्परता में भी परस्पर प्रतिबिम्बन क्रिया बना ही रहता है। उसका सिद्धांत यही है **'बिम्ब का प्रतिबिम्ब रहता ही है'**। इसी क्रम में मानव का प्रतिबिम्ब, मानव सहित अन्य प्रकृति के साथ भी बना ही रहता है। अस्तित्व सहज सहअस्तित्व में विद्यमान हर वस्तु में प्रतिबिम्ब ससम्मुखता के आधार पर ही होता है या रहता ही है। इसे स्वाभाविक रूप में हर व्यक्ति अपने ही शक्ति, कल्पना और तर्क प्रयोग परीक्षण के आधार पर प्रमाणित कर सकता है। प्रतिबिम्ब की संप्राप्ति के लिये किसी मानव को कुछ भी करना नहीं है। ससम्मुखता में स्थित हर वस्तु का प्रतिबिम्ब रहता ही है। इसी क्रम में हर व्यक्ति की आँखों में, व्यापक रूप में वर्तमान सत्ता में ही हर वस्तु डूबा, घिरा हुआ दिखाई पड़ता

है। इसी के साथ-साथ और एक नित्य प्रमाण समझ में आता है सत्ता हर परस्परता में पारदर्शी है क्योंकि हर ससम्मुखता में किसी न किसी सीमित वस्तुओं (इकाईयों) को पाया जाता है। सीमित वस्तुओं का ही प्रतिबिम्ब होता है। सीमित वस्तुओं की परस्परता के मध्य व्यापक रूप में वर्तमान सत्ता दिखाई पड़ती है। यह स्थिति सर्वत्र, सर्वकाल में सभी मानव के नजरों में आती है। इस तथ्य के आधार पर सत्ता पारदर्शी होना, देखने को मिलता है। क्योंकि सत्तामयता हर परस्परता के मध्य में होता ही है तभी परस्परता में प्रतिबिम्बन होना प्रमाणित होता है। ऐसे पारदर्शी सत्ता में घिरा, डूबा होने का महिमा के साथ-साथ हर सीमित वस्तुएँ ऊर्जा सम्पन्न रहना, उन-उन की क्रियाशीलता के आधार पर प्रमाणित होता है। इससे यह भी पता लगता है - सत्ता में ही हर सीमित वस्तुएँ भीगी हुई है। इस प्रकार हर वस्तु अर्थात् हर सीमित वस्तु सत्ता में ही नियंत्रित, क्रियाशील, संरक्षित रहना भी पता लगता है क्योंकि अस्तित्व न घटता है न बढ़ता है। अस्तु, प्रतिबिम्बन का मूल वस्तु रूप है ही। ऐसे रूपों के परस्परता के मध्य में स्थित साम्य ऊर्जा, सत्ता पारदर्शी होता है।

आँखों से देखने के क्रम में सारे सानूकुलताएँ अस्तित्व सहज रूप में समीचीन रहते हुए आकार, आयतन का आंशिक भाग आँखों के सम्मुख प्रतिबिम्बित होना स्पष्ट हो चुकी है। आँखों पर प्रतिबिम्बित आकार से अधिक आयतन, आकार और आयतन से अधिक घन रहता ही है। इस विधि से जो हम आँखों से देखते है उसकी सम्पूर्णता आँखों में आती नहीं है। यह रूप के संबंध में जो तीन आयाम बतायी गई है उसका प्रतिबिंबन और आँखों की क्षमता के संबंध में मूल्यांकित हुई। हर रूप के साथ गुण, स्वभाव, धर्म अविभाज्य रहना स्पष्ट किया जा चुका है। यह भी साथ-साथ हर व्यक्ति में किसी न किसी अंश में गुण, स्वभाव, धर्म को समझने की आवश्यकता-अरमान रहता है। इस विधि से यह स्पष्ट हो गया जितना मानव समझ सकता है वह आँखों में आता नहीं। हर वस्तु आँखों पर होने वाले प्रतिबिम्बन से अधिक है। यही कल्पनाशीलता, तर्क, प्रयोग, अध्ययन और अनुभव का मुद्दा है। अब यह बात सुस्पष्ट हो गई कि देखने का परिभाषा, आशय और सार्थकता समझना ही है, समझा हुआ को समझाना ही है। हर समझ अनुभव की साक्षी में ही स्वीकृत होता है। हर समझ अनुभवमूलक विधि से प्रमाणित हो जाता है। समझने का जो महत्वपूर्ण पात्रता है और अनुभव योग्य क्षमता सम्पन्नता ही है, इन दोनों महत्वपूर्ण क्रिया के आधार पर अभिव्यक्त, संप्रेषित और प्रकाशित होने के आधार पर दृष्टा पद प्रतिष्ठा हर व्यक्ति में, से, के लिए जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह करना नित्य समीचीन है।

मानव के सर्वेक्षण से यह भी पता लगता है कि जीवन क्रिया होते हुए भी कल्पना, विचार, इच्छाओं से तृप्ति पाना संभव नहीं होता है। इन तीनों का सम्मिलित योजना-कार्य योजनाओं को कितने भी विधाओं में प्रयोग

किया, इससे किसी एक या एक से अधिक मानव को जीवनापेक्षा व मानवापेक्षा सहज उपलब्धियाँ होना साक्षित नहीं हो पायी। आशा, विचार, इच्छाओं के संयुक्त योजनाओं को मानव में से कोई-कोई विविध आयामों में प्रयोग किया। प्रधानतः युद्ध विधा में, शासन विधा में, व्यापार विधा, शिक्षा विधा में प्रयोग किया गया मानव सहज अपेक्षा द्वय इन सभी कृत्यों से प्रमाणित नहीं हो पायी। मानव इतिहास दस्तावेजों के रूप में जो कुछ भी रखा है, वह सब इसका गवाही है। अतएव 'अनुभवात्मक अध्यात्मवाद' इस आशय की पुष्टि अध्ययन सामान्य योजनाओं का अवधारणा मानव परंपरा में प्रस्थापित करने के लिये प्रस्तुत हुआ है। यह दृष्टा पद की ही महिमा है। इसकी गवाही यही है मानव परंपरा में ही विगत की समीक्षा, वर्तमान में व्यवस्था, भविष्य में, से, के लिये व्यवस्थावादी कार्य-योजना मानव परंपरा को सफल बनाने का सुदृढ़ एवं सर्व मानव स्वीकार्य योग्य प्रस्ताव है। सहअस्तित्व में अनुभव के आधार पर ही यह सम्पूर्ण प्रस्तुति है।

वर्णित ऐतिहासिक विफलताएँ अग्रिम अनुसंधान के लिये आधार होना स्वाभाविक है। इस क्रम में इस तथ्य को अनुभव किया जा चुका है कि आँखों से अधिक कल्पनाशीलताएँ हर मानव में विद्यमान है। गणित भी कल्पनाशीलता का ही प्रकाशन है। संख्या के रूप में हर घटना या रूप और गुणों को बताने के लिये प्रयत्न हुआ। गुण ही गति के रूप में होना देखा गया है। गणितीय क्रियाकलाप भी मानव भाषा में गण्य होना पाया जाता है। सर्व मानव में गणना कार्य प्रकट होते ही आया है। ऐसे गणना कार्य को विधिवत् प्रयोग करने के आधार पर रूप सम्बन्धी तीनों आयाम आकार, आयतन, घन को समझने-समझाने का कार्य सम्पन्न होता है। इसी के साथ-साथ गति सम्बन्धी संप्रेषणा भी गणना विधि से लाने का प्रयास हुआ। मध्यस्थ गति गणितीय भाषा में संप्रेषित नहीं हो पायी है। सम-विषमात्मक गतियों को दूरी बढ़ने-दूरी घटने, दबाव और प्रवाह बढ़ने-घटने के साथ परिणामों का आंकलन सहित अध्ययन करने का प्रयास विविध प्रकार से किया गया है। ये दोनों सम-विषम गतियाँ आवेश के रूप में ही गण्य होते हैं जबकि हर वस्तु, हर इकाई, उसके मूल में जो परमाणु है वह अपने स्वभाव गति प्रतिष्ठा में ही उनके त्व सहित व्यवस्था होना पाया जाता है। जो कुछ भी अस्तित्व में त्व सहित व्यवस्था के रूप में व्यक्त है वह सब मध्यस्थ गति के अनुरूप ही कार्यरत होना देखा गया। मानव में इसका कार्य रूप, कार्य प्रतिष्ठा जागृति मूलक विधि से ही स्पष्ट होना देखा गया है। इसका प्रमाण न्याय, धर्म, सत्य मूलक अभिव्यक्ति के रूप में ही प्रमाणित होता है। इनमें से कम से कम न्यायपूर्ण अभिव्यक्ति क्रम में ही मानव त्व को प्रकाशित कर पाता है। न्याय साक्षात्कार के उपरान्त स्वाभाविक रूप में धर्म और सत्य में जागृत होता है अर्थात् प्रमाणित होता है। इसलिये मानवीयतापूर्ण मानव चेतना पूर्ण पद में संक्रमित होना अति अनिवार्य है। इसी आवश्यकता के आधार पर शिक्षा में प्रावधानित वस्तु जागृति पूर्ण रहना आवश्यक है। यही परंपरा का परिवर्तन कार्य है। शिक्षापूर्वक ही सर्वमानव के जागृत होने का मार्ग प्रशस्त होता है। अतएव मध्यस्थ गति मानव का स्वभाव गति के रूप

में मानवीयता को प्रमाणित करने के रूप में ही संभव होता है। फलस्वरूप समग्र व्यवस्था में भागीदारी के रूप में प्रामाणिकता और स्वायत्तता के साथ दिव्य मानव प्रतिष्ठा शिक्षा-कार्य और प्रमाण वैभवित रहता है। यही मानव परंपरा का सर्वांग सुन्दर वैभव है। इसे अनुभवमूलक विधि से ही सम्पन्न करना संभव है। यही द्रष्टा पद परम्परा का भी प्रमाण है।

स्वभाव गति सदा-सदा 'त्व' सहित व्यवस्था के रूप में दृष्टव्य है। स्वभाव गति का तात्पर्य इस बात को भी इंगित करता है कि स्वभाव-धर्म के अनुरूप गति। यही हरेक इकाई में अन्तर सामरस्यता का भी द्योतक है। फलस्वरूप परस्परता में व्यवस्था प्रमाणित होना सहज है। मानव का स्वभाव मानवीयता और उसमें परम श्रेष्ठता के आधार पर धीरता, वीरता, उदारता, दया, कृपा, करूणा पूर्ण कार्य-व्यवहार, विचार व अनुभव ही है। यही प्रतिष्ठा मुख्य रूप से द्रष्टा पद का द्योतक है। द्रष्टा पद परिपूर्ण समझदारी का ही अभिव्यक्ति संप्रेषणा व प्रकाशन है। ऐसी समझदारी का स्वरूप जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान, मानवीयता पूर्ण आचरण ज्ञान है। यही द्रष्टा पद जागृति का सम्पूर्ण अधिकार स्वरूप भी है। इस प्रकार सम्पूर्ण समझदारी का अधिकार सम्पन्न द्रष्टा होना देखा गया है। इसी समझदारी में से जीवन ज्ञान के साथ निष्ठा, अस्तित्व दर्शन के साथ निश्चयता और मानवीयतापूर्ण आचरण की अभिव्यक्ति में दृढ़ता पूर्वक व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी प्रमाणित होना सहज है। इस विधि से हर मानव द्रष्टा, कर्ता और भोक्ता होना पाया जाता है।

आवर्तनशीलता जीवन सहज अक्षय शक्ति-अक्षय बल का ही महिमा है। इस बीसवीं शताब्दी के दसवें दशक तक जितनी भी परंपराएं स्थापित हुई-पनपी है जिनको हम आस्थावादी और विज्ञान परंपरा कह सकते है। उक्त दोनों से जो कुछ भी कर पाये हैं वह सब कल्पनाशीलता-कर्मस्वतंत्रता चित्रण, स्मरण और भाषाओं के संयोग से व्यक्त हुआ है। इस दशक तक इस धरती पर कहीं भी अनुभवमूलक परंपरा स्थापित नहीं हो पायी है। उसके योग्य विश्व दृष्टिकोण ही उदय नहीं हुआ। अनुभवमूलक प्रणाली की आवश्यकता तब आवश्यक हो गया जब मानव जाति धरती का सर्वाधिक शोषण किया। जैसे वन खनिज अनानुपाती विधि से शोषण किया। जिसके प्रौद्योगिकी परिणामों में प्रदूषण की मात्रा बढ़ती गई। कुछ मेधावियों को इसकी विभीषिकाएं कल्पना में आने लगी तब अनुभवमूलक ज्ञान दर्शन आचरण की आवश्यकता निर्मित हुई। इसी आवश्यकता के आधार पर अनुसंधान सम्पन्न हुआ। इसमें मुख्य मुद्दा अनुभवों को संप्रेषित करना हुआ। **इसका सिद्धान्त यही है मानव में, से, के लिये भाषा से कल्पना, कल्पना से चिन्तन, चिन्तन से अनुभव, अनुभव से प्रमाण विस्तार और स्पष्ट अभिव्यक्ति होना देखा गया।** इससे स्पष्ट हो जाता है कि भाषा, कल्पना, चित्रण यह द्रष्टा पद का आधार नहीं हो पाई। जबकि अभी तक जो भी अभिव्यक्तियाँ हुई वह इतने तक ही हुई। यह आशा, विचार, इच्छा बन्धन का प्रकारान्तर से किया गया

प्रकाशन ही है। यह सब भ्रमित विधि होने के कारण जिसके गवाही के रूप में युद्ध ही प्रधान विकास का आधार मानने के फलस्वरूप भ्रम का साक्ष्य सुस्पष्ट हो जाता है। शांतिवादी कल्पनाएँ जितने भी हो पायी, व्यक्तिवादी होने के कारण परिवार, समाज और व्यवस्था का आधार नहीं हो पाया। भोगवादी परिकल्पना भी व्यक्तिवादी हुई। यह सर्वविदित है विरक्तिवाद भी एकान्तवाद स्वान्तः सुख रूप में है। इन सबका सार-संक्षेप संघर्ष ही पीढ़ी से पीढ़ी को हाथ लगी। इस दशक में सर्वाधिक लोग संघर्षरत भी हुए। ऐसे अनेकानेक संगठन पूरे धरती पर तैयार हो चुके हैं। कहीं भी राजगद्दी पर कोई बैठा है तो उसका विद्रोही संगठन भी रहा। यह सब इसी की गवाही में है कि हम सार्वभौम व्यवस्था, अखण्ड समाज विधि को पाये नहीं है पाने की इच्छा आंशिक रूप में बना ही रहा। तीसरा मानवापेछा और जीवनापेछा किसी परंपरा में सार्थक नहीं हो पायी इसी कारणवश अनुभवमूलक शिक्षा-संस्कार, व्यवस्था और संविधान को सुस्पष्ट करना एक नियति सहज आवश्यकता रही है।

भ्रमवश शरीर ही समझने वाला वस्तु है ऐसा कल्पना करते हुए शरीर रचना के आधार पर विकास और जागृति को केन्द्रित करने का कोशिश किया किन्तु मानव का विश्लेषण न हो पाने से अभी भी इसी दिशा में अनुसंधान और उसके प्रोत्साहन को जारी रखा गया है। जबकि शरीर को जीवन ही जीवन्त बनाए रखते हुए समृद्धिपूर्ण मेधस सम्पन्न मानव शरीर के माध्यम से मानव परंपरा में जीवन ही अपने जागृति को प्रमाणित करने के क्रम में सदा-सदा प्रयास करते ही रहा। परम्पराएँ भ्रमित रहने के कारण मानव सहज जागृति की इच्छाएँ हर शरीर यात्रा में दिशा विहीनता और मार्ग विहीन होने का कुण्ठा सदा बाधा करता ही रहा। इस क्रम में ही जागृति के लिये आवश्यकीय अनुसंधान और उसे परम्परा में स्थापित करना आवश्यक हो गया।

जीवन का स्वरूप, कार्य और शरीर के साथ कार्य विधि इस मुद्दे पर विश्लेषण निष्कर्ष निकालने के विधि को प्रस्तुत किया जा चुका है। इसमें मूलतः विकास के मंजिल में जीवन ही जागृति क्रम में कल्पनाशीलता, विश्लेषण कार्य, चित्रण, चिन्तन सहज मौलिकता, बोध सम्पदा और अनुभव सहज वैभव को हर व्यक्ति अनुभव करने की आवश्यकता बनती है। जीवन में उक्त सभी क्रियाएँ कम से कम कल्पनाशीलता उससे अधिक विश्लेषण से मानव परंपराएँ व्यंजित होता देखा गया है। ऐसे विश्लेषणों को अधिकतर चित्रित करने का कोशिश किया गया है। जबकि चिन्तन से ही मानव अपेक्षा और जीवन अपेक्षा स्पष्ट हुआ। बोध और अनुभव पूर्णतया जीवनापेक्षा और मानवापेक्षा को सार्थक बनाने के कार्यक्रम से सम्पन्न हो जाता है। इसे सार्थक बनाने के क्रम में ही सार्वभौम व्यवस्था और अखण्ड समाज रचना विधि-यह दोनों सुस्पष्ट हो जाता है। इसलिये मानव परंपरा में अनुभवमूलक कार्य परंपरा स्थापित होना सहज है क्योंकि मानवापेक्षा की

कसौटी में ही जीवन अपेक्षा की सफलता प्रमाणित होना है। इस प्रकार अनुभवमूलक ज्ञान, विज्ञान, विवेक, विचार, विश्लेषण व्यवहार में प्रमाणित होने की पद्धति प्रणालियाँ परम्परा में सार्थक होना, चरितार्थ होना समीचीन है।

अनुभवमूलक ज्ञान को जीवन ज्ञान, सहअस्तित्व दर्शन ज्ञान, मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान के रूप में विज्ञान को अस्तित्व सहज सहअस्तित्व का विश्लेषण विधि से, विचारों को अस्तित्वमूलक मानव केन्द्रित चिन्तन के रूप में, विवेक को यथार्थता, वास्तविकता, सत्यता के आधार पर विवेचना करने के आधार पर जान लिया, मान लिया, पहचान लिया गया है। इसे निर्वाह करने के क्रम में अभिव्यक्ति संप्रेषणा कार्य भी है। संप्रेषणा क्रम में ही मानवीयतापूर्ण आचरण, परिवार और परिवार व्यवस्था में भागीदारी का रूप होता है। इसी प्रकार, विश्व परिवार व्यवस्था में भागीदारी समीचीन रहती ही है। यह जागृत मानव का विशाल और विशालतम स्थिति में प्रमाणित होने का रूप है। मानवीयतापूर्ण आचरण, मानवीयतापूर्ण व्यवस्था में भागीदारी अविभाज्य कार्य है इसका सामान्य अपेक्षा हर मानव में देखने को मिलता ही है। इसे परिष्कृत और समाधानित रूप देना ही जागृत परंपरा है। इस प्रकार अभी तक इस धरती पर विभिन्न समुदायों के द्वारा भोगा गया भ्रमित परंपरा का कारण मानव का ही भ्रम होना स्पष्ट हो चुका है। इसी के साथ यह मानवापेक्षा और जीवनापेक्षा सहज लक्ष्य पूर्ति में, से, के लिये जागृति परंपरा की सम्भावना और उसकी समीचीनता भी स्पष्ट हुई।

जागृति कार्य परम्परा में अनुभवमूलक विधि से ही प्रामाणिकता का बोध-संकल्प, प्रामाणिकता का चिंतन-चित्रण, न्याय, धर्म, सत्य सहज तुलन, विश्लेषण, मानवीय मूल्यों का आस्वादन और चयन सहित जीवन कार्य प्रणाली और शैली स्थापित होना ही जागृति परंपरा का, जागृत मानव का प्रमाण है। यह भी सर्वविदित है, जागृत मानव ही जागृत परंपरा का संस्थापक, धारक-वाहक होना सहज है। इस प्रकार जागृत शैली का तात्पर्य अभिव्यक्ति, संप्रेषणों, कार्य व्यवहार के रूप में स्पष्ट होना ही जागृत परंपरा के नाम से इंगित आशय है।

शरीर के किसी अंग-अवयव में न्याय, समाधान, सत्य की प्रतीक्षा, अपेक्षा शरीर सहज ज्ञानेन्द्रिय कार्यों कर्मेन्द्रिय कार्यों में दिखाई नहीं पड़ती। जैसा-हाथ को न्याय की अपेक्षा, आँख, कान, जीभ और नाक में न्याय, समाधान, सत्य की अपेक्षा चिन्हित रूप में समझने का कितना भी कोशिश करें निषेध ही निकलता है। ज्ञानेन्द्रियों में जब ज्ञान का अपेक्षा स्वरूप रूपी न्याय, समाधान, सत्य कान, आँख, नाक व्यंजित नहीं कर पाता है अपितु, इनमें उन-उन ज्ञानेन्द्रियों के लिये अनुकूल वस्तुओं का संयोग (सन्निकर्ष) अच्छा लगना होता है। यह अच्छा लगा किसको ऐसा पूछा जाए हाथ, नाक, कान आँखों में अच्छाइयों का कोई गवाही

स्थित नहीं रहता है। यह सब जब स्पष्ट हो जाता है तब पुनः यह प्रश्न हो सकता है शरीर की आवश्यकता ही क्यों? जिसका अक्षुण्ण उत्तर यही है कि मानव परंपरा में जीवन जागृति और उसकी प्रामाणिकता को प्रमाणित करना है। ऐसी महिमा सम्पन्न उद्देश्य पूर्ति क्रम में मानव अपेक्षा, जीवन अपेक्षा सार्थक हो जाता है। मानव अपेक्षाओं का संपूर्ति, परिपूर्ति, आपूर्ति क्रम में न्याय और नियम, समाधान प्रमाणित हो जाता है। वह भी चिन्हित रूप में प्रमाणित हो जाता है। हर जीवन का ही कार्य वैभव और फलन है। इसका सिद्धान्त यही है कि अधिक शक्ति और बल, कम शक्ति और बल सम्पन्न माध्यम के द्वारा प्रकाशित होता है। जीवन अक्षय शक्ति, अक्षय बल सम्पन्न इकाई है। प्राण कोषाओं का शक्ति और बल उसके रचना के आधार पर सीमित रहता ही है। क्योंकि हर रचना का विरचना क्रम जुड़ा ही रहता है। इस आधार पर इस धरती पर जितने भी प्राण कोशाओं की रचना है शीघ्र परिवर्ती है, भौतिक रचनाएँ दीर्घ परिवर्ती है। इसीलिये मानव शरीर प्राण कोशाओं से रचित रहने के लिये इसमें परिवर्ती कार्य घटना समीचीन रहता ही है। इस प्रकार शरीर बल और शक्ति अपने व्यवस्था के रूप में प्रमाणित होते हुए सीमित और जड़ कोटि में गण्य होना पाया जाता है। रचना सहज श्रेष्ठता मेधस रचना और मेधस तंत्रणा ही प्रधान है। हृदयतंत्र, मेधस तंत्र यही मुख्य तंत्र है। इस प्रकार शरीर में मेधस और मेधस तंत्र, हृदय और हृदय तंत्र सहअस्तित्व में शरीर व्यवस्था कार्य सम्पन्न होना मानव शरीर के लिये रस, रसायन स्रोत, पाचन परिणाम, अनावश्यकता का विसर्जन, ये सब तंत्रणाएँ ऊपर कहे गये दोनों तंत्रों के आधार पर कार्यरत रहना पाया जाता है। इसी को शरीर व्यवस्था का नाम दिया जाता है। शरीर जीवन्त न रहने की स्थिति में स्वतंत्र रूप में आहार आदि क्रियाओं का सम्पादन नहीं हो पाता है और ज्ञानेन्द्रियों का क्रियाकलाप शून्य हो जाता है। ऐसे बहुत सारे उदाहरणों को मानव ने देखा है। इससे यह स्पष्ट होता है-शरीर को जीवन्त बनाए रखने का मूल तत्व जीवन ही है। जीवन ज्ञान के साथ-साथ ही यह तथ्य स्वीकार हो पाता है। तब तक भ्रमित रहना भावी है ही। भ्रम का सबसे चिन्हित गवाही यही है - शरीर को जीवन समझना। शरीर को जीवन समझने के मूल में जीवन सहज कल्पना ही आधार है। यह भ्रमित रहने के कारण ऐसा मानना होता है। फलस्वरूप जीवन अपेक्षा के विपरीत, मानव अपेक्षा के विपरीत घटित होता है, यही कारण रहा है जागृति विधि को मानव परंपरा को अपनाने के लिये आवश्यकता बलवती हुई।

दृष्टा पद का सर्वप्रथम उपलब्धि शरीर का दृष्टा होना ही है। शरीर का दृष्टा होने के आधार पर ही ऊपर इंगित किये गये तथ्य स्पष्ट हुआ है। उक्त तथ्यों को हृदयंगम करने से जागृति की संभावना समीचीन होती ही है। इसी आशय से यह अभिव्यक्ति है। दृष्टा होने का सतत फलन यही है हर स्थिति-गति, योग-संयोग, फल-परिणाम परिपाक और प्रवृत्तियों का मूल्यांकन होना सहज हो जाता है। जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान सम्पन्न मानव मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान का मूल्यांकन, अस्तित्व सहज प्रयोजन का मूल्यांकन करता

है। यह महिमा अस्तित्व कैसा है स्पष्टतया समझने के उपरान्त सफल हो जाता है और सफल होना देखा गया है।

अस्तित्व सम्पूर्ण सत्ता में संपृक्त सहअस्तित्व होने के रूप में अपने वैभव को चारों अवस्था में प्रकाशित किया है। यही वर्तमान का मतलब है। जीवन का स्वरूप, स्वीकृति और उसका अनुभव प्रतिष्ठा ही जीवन ज्ञान का तात्पर्य है। अस्तित्व सहज स्वरूप जैसा है इसका स्वीकृति और उसमें अनुभव स्वयं में से स्फूर्त प्रवृत्त सहअस्तित्व दर्शन का तात्पर्य है। जीवन ज्ञान सहअस्तित्व सहज के प्रकाश में ही अस्तित्व दर्शन सबको सुलभ होता है। इसलिये जीवन ज्ञान पर बल दिया जाता है। विद्या का तात्पर्य ही ज्ञान है। यहाँ इस तथ्य का भी स्मरण रहना आवश्यक है - जिन बातों को विद्या अथवा ज्ञान आदिकाल से कहते आ रहे हैं वह कल्पना क्षेत्र में ही सीमित रह गया। इसका साक्ष्य यही है जिसको ज्ञान, आत्मा, देवता कहते हुए सम्पूर्ण साधना, उपासना, अर्चना का आधार मान लिया गया है। वह सब मन, बुद्धि का गोचर नहीं है। मन, बुद्धि को जड़ क्रिया मानते हुए ज्ञान चेतना इनके पहुँच से बाहर है ऐसे ही उद्बोधन करते आये। इसके बावजूद बहुत सारे किताब इन्हीं मुद्दे अथवा नाम पर लिखा गया है। उल्लेखनीय तथ्य यही है कि जीवन ज्ञान - जीवन में, से, के लिये ही होता है। सहअस्तित्व दर्शन ज्ञान सहअस्तित्व में, से, के लिये ही होता है। इन दोनों विधाओं का दृष्टा जीवन ही होना पाया जाता है फलस्वरूप मानवीयता पूर्ण आचरण ज्ञान विधि से दृष्टा पद की महिमा स्पष्ट है। इस विधि से जीवन ज्ञान अर्थात् देखने समझने वाला, दिखने वाला भी जीवन सहित होना स्पष्ट हुआ। देखने वाला जीवन, दिखने वाला सहअस्तित्व यह अस्तित्व दर्शन के रूप में स्पष्ट हुआ। जीवन सहअस्तित्व में अविभाज्य वर्तमान होने के आधार पर जीवन का अस्तित्व भी सहज होना पाया जाता है।

प्रमाणों के मुद्दों पर अध्यात्मवाद सर्वप्रथम शब्द को प्रमाण मान लिया गया। तदनन्तर, पुनर्विचार पूर्वक आप्त वाक्यों को प्रमाण माना गया। तीसरा प्रत्यक्ष, आगम, अनुमान को प्रमाण माना गया। ये सभी अर्थात् तीनों प्रकार के प्रमाणों के आधार पर अध्ययनगम्य होने वाले तथ्य मानव परंपरा में शामिल नहीं हो पाये। इसी घटनावश इसकी भी समीक्षा यही हो पाती है यह सब कल्पना का उपज है। शब्द को प्रमाण समझ कर कोई यथार्थ वस्तु लाभ होता नहीं। कोई शब्द यथार्थ वस्तु का नाम हो सकता है। वस्तु को पहचानने के उपरान्त ही नाम का प्रयोग सार्थक होना पाया गया है। इसी विधि से शब्द प्रमाण का आशय निरर्थक होता है। "**आप्त वाक्यं प्रामाण्यम्।**" आप्त वाक्यों के अनुसार कोई सच्चाई निर्देशित होता हो उसे मान लेने में कोई विपदा नहीं है। जबकि चार महावाक्य के कौन से चार महावाक्य रूप में जो कुछ भी नाम और शब्द के रूप में सुनने में मिलता है उससे इंगित वस्तु अभी तक अध्ययन परंपरा में आया नहीं है।

आप्त वाक्य जब अध्ययनगम्य नहीं है, मान्यता के आधार पर ही है, तर्क तात्विकता की कड़ी है, अध्ययन तर्क संगत होना आवश्यक है। ऐसे में आप्त पुरूषों को भी कैसे पहचाना जाए? यह प्रश्न चिन्हाधीन रह गया। कोई भी सामान्य व्यक्ति भय, प्रलोभन और संघर्ष से त्रस्त होकर किसी को आप्त पुरूष मान लेते हैं तब उन्हीं के साथ यह दायित्व स्थापित हो जाता है आपने कैसे मान लिया। इसके उत्तर में बहुत सारे लोग मानते रहे, अथवा मैं अपने ही खुशी से मान लिया हूँ - यही सकारात्मक उत्तर मिलता है। ऐसा बिना जाने ही मान लेने के साथ ही सम्पूर्ण प्रकार से कल्याण होने का आश्वासन भी देते हैं साथ ही सारे मनोरथ या मनोकामना पूरा होने का आश्वासन देते हैं। ऐसा आश्वासन स्थली, आश्वासन देने वाला व्यक्ति के संयोग से आस्थावादी माहौल (भीड़) का होना देखा गया है। ऐसे भीड़ से कोई एक अथवा सम्पूर्ण भीड़ के द्वारा जीवन अपेक्षा, मानवापेक्षा फलीभूत होता हुआ इस सदी के अंतिम दशक तक देखने को नहीं मिला।

जहाँ तक प्रत्यक्ष की बात है ज्ञानेन्द्रिय गोचर अथवा इन्द्रिय सन्निकर्ष के नाम से इंगित कराया गया है। आँखों से अधिक कल्पना में, कल्पना से अधिक समझ में और समझ से अधिक अनुभव में आता है। इन तथ्यों को पहले स्पष्ट कर चुके हैं। अतएव आँखों में सम्पूर्ण वस्तु का प्रतिबिम्ब नहीं आता है, समझ में आता है। इस विधि से प्रत्यक्ष कोई प्रमाण होता ही नहीं है। अनुमान पूर्णतया कल्पना क्षेत्र है। अनुमान में नहीं आया हो, भविष्य में आने वाला हो ऐसे घटना को आगम भी नाम दिया गया है। अनुमान ही जब कल्पना हो गई - आगम भी कल्पना ही होगा। काल्पनिक निर्णय, प्रवृत्तियाँ, प्रयास किसी गम्य स्थली को प्रमाणित नहीं करता। इस प्रकार प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम का समीक्षा स्पष्ट हुई है। इसी के साथ आप्त वाक्य और शब्द प्रमाण का भी समीक्षा प्रस्तुत हो चुकी है। जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन, मानवीयता पूर्ण आचरण विधि से अनुभव, व्यवहार और प्रयोग ही प्रमाणों के रूप में होना देखा गया है। देखने का तात्पर्य समझने से है। ये तीनों हर मानव में घटित होने वाली घटनाएं है। मानवीयतापूर्ण विधि से मानव परंपरा अभिभूत होने की स्थिति में (अभिभूत होने का तात्पर्य ओत-प्रोत होने से है) प्रत्येक मानव अपने में परीक्षण, निरीक्षण पूर्वक अनुभव को सत्यापित करना बनता है। मानवीयतापूर्ण व्यवहार, व्यवस्था में भागीदारी, आचरण का संयुक्त स्वरूप ही है। इसमें मानव का विचार शैली, अनुभव बल समाहित रहता ही है। प्रयोग कार्यों में जो कुछ भी किया जाता है विचार शैली और व्यवहार, प्रयोजन का सूत्र समाहित रहना पाया जाता है। इस सार्थक विधियों से मानवापेक्षा और जीवनापेक्षा में सार्थक होना पाया जाता है। अतएव यह स्पष्ट हो गया है कि मानव परंपरा में प्रमाण और प्रमाणीकरण का मूल स्रोत अनुभव ही है। यही विचार शैली, व्यवहार कार्य और प्रयोग कार्यों में प्रमाणित होता है। इसलिये अनुभव प्रमाण ही परम प्रमाण है, यह स्पष्ट हो जाता है। इसीलिये मानव परंपरा अनुभवमूलक विधि से ही सार्थक होना स्पष्ट हो चुकी है। अनुभव सहज अभिव्यक्ति ही दृष्टा पद एवम् प्रमाण परंपरा का प्रमाण है।

जागृत जीवन व जागृतिपूर्ण जीवन ही अपने कार्य व्यवहार, विचार और प्रयोगों को प्रमाणित करना ही जीवन द्दष्टा पद प्रतिष्ठा मानव जागृति सहजता में होने का प्रमाण है। जीवन सहज अनुभव बल के आधार पर जीवन के सम्पूर्ण क्रियाएं अभिभूत होने के फलस्वरूप यथार्थता, वास्तविकता, सत्यता का स्वीकृति होना व उसकी अभिव्यक्ति, संप्रेषणा, प्रकाशन सहज होना पाया जाता है। सम्पूर्ण सत्य स्थिति सत्य, वस्तु स्थिति सत्य, वस्तुगत सत्य के रूप में ज्ञानगम्य विधि से द्दश्यमान होना पाया गया है। क्रम से सहअस्तित्व में ही दिशा, काल, देश, रूप, गुण, स्वभाव, धर्म सहज अध्ययन चेतना विकास मूल्य शिक्षा विधि से बोध अनुभव ही है। यह हर जागृत मानव के समझ में होता ही है। मानवीयता पूर्ण व्यवहार सहज विधि से अर्थात् मानवीयतापूर्ण आचरण सहित अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी करने से इसी स्थिति में, इसी गति में हर व्यक्ति द्दष्टापद अनुभव समाधान का प्रमाण प्रस्तुत करना सुगम, सार्थक होना समीचीन रहता ही है। इन्हीं तथ्यों के आधार पर मानव द्दष्टा होना सहअस्तित्व में अनुभव है, प्रमाणित होता है।

पूर्वावर्ती विचार में रहस्यमयी ईश्वर केन्द्रित विचार के अनुसार ईश्वर ही कर्ता-भोक्ता होना भाषा के रूप में बताते रहे। इसी के आधार पर ब्रह्म, आत्मा या ईश्वर सबका द्दष्टा होना बताने भरपूर प्रयास किये। यह मुद्दा रहस्य होने के आधार पर अभी तक वाद-विवाद में उलझा ही हुआ है। जबकि सहअस्तित्ववाद जीवन ही मानव परंपरा में द्दष्टा पद प्रतिष्ठा सहित कर्ता व भोक्ता के रूप में सफल होना देखा गया है। जागृति का प्रमाण केवल मानव परंपरा में ही होता है। जितने भी विधा से सहअस्तित्व, जीवन और मानवीयतापूर्ण आचरण संगत विधि से किया गया तर्क से, विश्लेषण से, किसी भी दो ध्रुवों के बीच त्व सहित व्यवस्था सहज कार्य प्रणाली से, जीवनापेक्षा अर्थात् जीवन मूल्य और मानवापेक्षा अर्थात् मानव सहज लक्ष्य के आधार पर और सार्वभौम व्यवस्था, अखण्ड समाज क्रम को जानने, मानने, पहचानने, निर्वाह करने के आशयों से अवधारणाएँ सहज रूप में ही जीवन में स्वीकार हो जाता है। इस क्रम में इस तथ्य का उद्घाटन चेतना विकास मूल्य शिक्षा-संस्कार विधि से होता है जीवन ही सार्थकता के लिये जागृत होता है। सार्थकता में जीना ही भोगना है। सार्थकता के लिये ही जागृतिपूर्ण विधि से सभी कार्य व्यवहार करता है। जागृति ही द्दष्टा पद सहज प्रमाण है। करना ही कर्ता पद है और जीवनापेक्षा और मानवापेक्षा को भूरि-भूरि विधि से जीना ही भोक्ता पद है। शरीर केवल करने के क्रम में एक साधन के रूप में उपयोगी होना देखा गया है। अध्ययन क्रम में भी सार्थक माध्यम होना देखा गया। अध्ययन-अध्यापन करना भी कर्त्ता के संज्ञा में ही आता है। द्दष्टा पद में पूर्णतया जीवन ही जागृति के स्वरूप में प्रमाणित होता है। यह प्रमाण जान लिया हूँ, मान लिया हूँ, प्रमाणित कर सकता हूँ के रूप में स्थिति के रूप में अध्ययन का प्रयोजन होता है। अर्थात् हर व्यक्ति में जागृति स्थिति में होता है, भोगने का जहाँ तक मुद्दा है, मानवापेक्षा सहज समाधान समृद्धि को भोगते समय में सम्पूर्ण भौतिक-रासायनिक वस्तुओं का शरीर पोषण, संरक्षण, समाज गति के अर्थ में

अर्पित, समर्पित कर समृद्धि को स्वीकार लेता है। जहाँ तक समाधान, अभय और सहअस्तित्व में जीवन ही अनुभव करना देखा गया है। जीवनापेक्षा संबंधी सुख, शांति, संतोष आनन्द का भोक्ता केवल जीवन ही होना देखा गया है।

ज्ञान, ज्ञेय, ज्ञाता : के रूप में भी चर्चाएँ प्रचलित रही हैं। इस संदर्भ में भी कोई अंतिम निष्कर्ष अध्ययन गम्य होना सम्भव नहीं हुआ था। अब अस्तित्वमूलक, मानव केन्द्रित चिन्तन, विचार अध्ययन और प्रमाण त्रय के अनुसार ज्ञान जीवन कार्यकलाप ही है। इसे अन्य भाषा से जागृतिपूर्ण जीवन कार्यकलाप ही ज्ञान है। सहअस्तित्व ज्ञेय है अर्थात् जानने योग्य वस्तु है। सहअस्तित्व में जीवन अविभाज्य रूप में वर्तमान रहता है। जीवन नित्य होना सुस्पष्ट हो चुकी है। इसलिये जीवन जागृति के अनन्तर जागृति की निरंतरता स्वाभाविक है। इन तथ्यों के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है **जागृत जीवन ही ज्ञाता है। जीवन सहित सम्पूर्ण अस्तित्व ही ज्ञेय है और जागृत जीवन का परावर्तन क्रियाकलाप ही ज्ञान है।**

सहअस्तित्व ही अनुभव करने योग्य समग्र वस्तु है यह स्पष्ट हो चुकी है। अस्तित्व स्वयं सत्ता में संपृक्त प्रकृति के रूप में स्पष्ट है। अस्तित्व में अनुभूत होने की स्थिति में सत्तामयता ही व्यापक होने के कारण अनुभव की वस्तु बनी ही रहती है। इसी वस्तु में सम्पूर्ण इकाईयाँ दृश्यमान रहते ही हैं। परम सत्य सहजता सहअस्तित्व ही होना, अस्तित्व में जब अनुभूत होना उसी समय से सत्तामयता में अभिभूत होना स्वाभाविक है। अभिभूत होने का तात्पर्य सत्ता पारगामी व्यापक पारदर्शी होना अनुभव में आता है। अनुभव करने वाला वस्तु जीवन ही होता है। इस विधि से सत्तामयता को ईश्वर, ज्ञान, परमात्मा के नाम से भी इंगित कराया है। यही सहअस्तित्व में अनुभूत होने का तात्पर्य है अर्थात् सत्तामयता पारगामी होने का अनुभव ही प्रधान तथ्य है। अस्तित्व में अनुभव इस तथ्य का पुष्टि होना स्वाभाविक है। सत्ता में प्रकृति अविभाज्य है। सत्ता विहीन स्थली होता ही नहीं है। सत्ता में प्रकृति नित्य वर्तमान रहता ही है। इस विधि से सत्तामयता का पारगामीयता जड़-चैतन्य प्रकृति ऊर्जा सम्पन्न रहने के आधार पर प्रमाणित हो जाता है। इस विधि से सत्तामयता में ही अविभाज्य रूप डूबे, घिरे हुए व्यवस्था में दिखाई पड़ते हैं। यही परमाणु, अणु, अणु रचित पिण्ड अनेक ग्रह-गोलों के रूप में देखने को मिलता है। यही परमाणु, अणु, अणु रचित रचनायें प्राणावस्था का संसार, जीवावस्था और ज्ञानावस्था का शरीर ही दृष्टव्य है। इन सबका दृष्टा जीवन ही है। सत्ता में अनुभव के उपरान्त ही दृष्टा पद प्रतिष्ठा निरन्तर होना देखा गया है। इसी अनुभव के अनन्तर सहअस्तित्व सम्पूर्ण दृश्य, जीवन प्रकाश में समझ में आता है। जीवन प्रकाश का प्रयोग अर्थात् परावर्तन अनुभवमूलक विधि से प्रामाणिकता के रूप में बोध, संकल्प क्रिया सहित मानव परंपरा में परावर्तित होता है। अतएव

जागृतिपूर्ण जीवन क्रियाकलाप अनुभवमूलक ज्ञान को सदा-सदा के लिये व्यवहार और प्रयोगों में प्रमाणित कर देता है। यही मानव परंपरा सहज आवश्यकता है।

अस्तित्व में अनुभव का परावर्तन = प्रामाणिकता = ज्ञान विवेक विज्ञान = (परावर्तन में)

अस्तित्व में अनुभूत (अनुभवपूर्ण) जीवन = ज्ञाता (प्रत्यावर्तन में)

अस्तित्व = ज्ञेय = सत्ता में सम्पृक्त प्रकृति

अस्तित्व में अनुभव की स्थिति में ज्ञान, ज्ञेय, ज्ञाता में एकरूपता सहअस्तित्व के रूप में होना देखा गया है जो ऊपरवर्णित विधि से स्पष्ट है।

यह सम्पूर्ण अभिव्यक्तियाँ नियति सहज प्रणाली से ही गुंथी हुई होती है। सहअस्तित्व सहज सम्पूर्ण क्रियाकलाप, सहअस्तित्व में पूरकता, उपयोगिता-उदात्तीकरण, रचना-विरचना के रूप में विकास क्रम में दृष्टव्य है। दूसरी धारा विकास, चैतन्य पद जीवन कार्य, जीवनी क्रम, जीवन जागृति क्रम, जागृति, जागृति पूर्णता और उसकी निरंतरता ही होना दृष्टव्य है। यह सुस्पष्ट हो गया कि नियति क्रम अपने में विकास क्रम, विकास, जागृतिक्रम व जागृति ही है। यह सम्पूर्ण अभिव्यक्ति ही वर्तमान है।

कार्य, कारण, कर्ता : सहज मुद्दे पर भी मानव में चर्चा का विषय रहा है। ऊपर वर्णित दृष्टा, कर्ता, भोक्ता क्रम में कार्य, कारण, कर्ता का स्पष्ट कार्य प्रणाली समझ में आता है। यह मुद्दा रहस्यमय ईश्वर केन्द्रित विचार और अनिश्चियता मूलक वस्तु केन्द्रित विचार के अनुसार सदा-सदा प्रश्न चिन्ह के चंगुल में ही रहते आये। इसका भी कोई समाधान अध्ययनगम्य नहीं हो पाया था। अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित विचारधारा के अनुसार कार्य कारण का दृष्टा जीवन ही है। सत्ता में संपृक्त प्रकृति रूपी सहअस्तित्व ही कार्य, कारण के रूप में नित्य वर्तमान है। सहअस्तित्व ही कार्य का कारण रूप है। सहअस्तित्व ही कार्य रूप है। क्योंकि सहअस्तित्व में ही सम्पूर्ण नियति सहज क्रियाकलाप दृष्टव्य होना वर्तमान है। अस्तित्व नित्य वर्तमान है ही। अस्तित्व ही नित्य स्थिति रूप में सहअस्तित्व में ही नित्य गति रूप में जड़-चैतन्य प्रकृति होना स्पष्ट है। सहअस्तित्व ही अस्तित्व सहज सम्पूर्ण क्रियाकलाप का कारण है और सहअस्तित्व ही क्रियाकलाप है। अस्तित्व में केवल दृष्टा ही कर्ता पद में होना स्पष्ट है और अन्य सभी पद कार्य पद में ही प्रतिष्ठित है। कार्य-कारण-कर्ता में सामरस्यता ही दृष्टा पद प्रतिष्ठा का सूत्र बनता है। ऐसी प्रतिष्ठा में ही जीवन जागृति का प्रमाण अनुभवमूलक विधि से व्यवहार में ज्ञान प्रमाणित होना पाया जाता है। **अतएव मानव ही कर्त्ता पद में है और सम्पूर्ण अस्तित्व ही कार्य-कारण पद में है।** कार्य-कारण विधि से ही कर्त्ता पद प्रतिष्ठा ज्ञानावस्था में देखा गया है।

साधन, साध्य और साधक : का प्राचीन समय से चर्चा और अनुसरण की वस्तु (विषय) मानते हुए चले आता हुआ मानव परंपरा में स्पष्ट रूप में प्रस्तुत है। साधक के रूप में मानव को, साध्य के रूप में मानव व जीवन लक्ष्य को, साध्य और साधक के बीच में दूरी को घटाकर लक्ष्य सामीप्य, सान्निध्य, समरुप्य क्रम में प्रमाणित ही होने के क्रम में प्रयुक्त सभी उपाय साधनों के नाम से जाना जाता है। साधन के रूप में कल्पना किया गया सम्पूर्ण उपाय अनेकानेक उपायों का सम्मिलित स्वरूप में साधक होना देखा गया है। इस विधि में मानव बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक तक विभिन्न समुदाय परंपराओं में विभिन्न प्रकार के साध्य का नाम प्रचलित किया हुआ देखा गया है। इस प्रकार के साध्य का नाम अनेक होना देखा गया है। अनेक नाम के रूप में प्राप्त साध्य के लिये संतुष्टिदायी वचन प्रणाली जिसको हम प्रार्थना कह सकते हैं। अर्चना प्रणाली जिसको हम पूजा कह सकते हैं, इसे कहके, करके दिखाने का भी प्रक्रियाएँ सम्पन्न हुई है। इसी आधार पर किसी आकार प्रकार की वस्तु को ध्यान करने की बात भी किया जाता है। ऐसी ध्यान में हर साधक में निहित कल्पनाशीलता का ही प्रयोग होना देखा गया है। ऐसी कल्पनाशीलता का प्रयोग बारबार हर दिन किया जाना भी देखा गया है। इसका अंतिम परिणाम और सार्थक परिणाम निर्विचार स्थिति होना जिसे 'समाधि' का भी नाम दिया जाना प्रचलित है। ऐसे स्थिति को भी अर्थात् निर्विचार स्थिति से भी गुजरा गया। भले प्रकार से गुजरने के उपरान्त समाधि का विश्लेषण कार्यक्रमों से और कार्यक्रम संबंधी प्रवृत्तियों से मुक्ति दिखाई पड़ती है। इसी को स्वान्त: सुख और चरमोपलब्धि के रूप में महिमा गायन किये है। जिसका विश्लेषण की कसौटी में कसने पर पता चला निर्विचार स्थिति के उपरान्त मानव का उपयोग शून्य हो जाता है। फलस्वरूप संयम साधना अपनाकर देखा जिसके फलस्वरूप सहअस्तित्व ही समझ में आया जिसकी सम्प्रेषणा और अभिव्यक्ति में और लोगों को सहअस्तित्व अध्ययन गम्य होना प्रमाणित हुई। इसी अभिव्यक्ति क्रम में "अनुभवात्मक अध्यात्मवाद" भी मानव सम्मुख प्रस्तुत किया गया।

जहाँ तक मनोकामनावादी अपेक्षाएँ होती है अधिकांश मानव में उसकी आपूर्ति हो ही जाती है जिसे साधना का फल माना जाता है जबकि ऐसी आपूर्तियाँ बिना साधना किये मानव को भी होते रहते हैं। इसीलिये साधना से मनोकामना पूरी हुई इस बात का चिन्हित प्रमाण नहीं मिल पाता है। यह केवल आस्था सूत्र और घटना काल के आधार पर सम्बोधन लगाने की बात आती है। यह सब प्रकारान्तर से भय-प्रलोभन का ही गठबन्धन है जबकि निर्विचार स्थिति में भय-प्रलोभन का कोई प्रभाव दिखाई नहीं पड़ती। अभाव की पीड़ा भी नहीं दिखती। इसीलिये भूत-भविष्य का पीड़ा एवं वर्तमान का विरोध नहीं रहता। इसी को स्वान्त: सुख का नाम देना समीचीन दिखा है। स्वान्त: सुख का प्रमाण समाज के रूप में सर्वसुख के रूप में परिवर्तित होने का कोई सूत्र नहीं रह जाती है। इसीलिये इस अवस्था में प्रवेश पाने का भी काल निर्णय नहीं हो पाती। यह भी इसके साथ देखा गया है कि सम्पूर्ण ईमानदारी, निष्ठा 'समाधि स्थिति' के प्रति अर्पित रहने

के क्रम में ही समाधि स्थली तक मन, बुद्धि, चित्त, वृत्तियाँ प्रवेश कर पाते हैं। फलस्वरूप इनकी कोई गति शेष नहीं है ऐसा बन पाता है जिसका निर्विचार स्थिति नाम दिया गया है। ऐसे घोर साधना के उपरान्त उस मानव का प्रयोजन ही, कार्यक्रम ही प्रसवित न हो ऐसे समाधि या निर्विचार स्थिति को कितने लोग चाह पाते हैं - यह प्रश्न चिन्ह में आता है। इसके उत्तर में विरले लोग ही चाह पाते है। ऐसे सद् ग्रंथों में ही लिखा गया है।

हम मूलरूप में सर्वसुख विधि को, सर्वशुभ विधि को अनुसंधान करने में तत्पर हुए। मैं अपने को सफल होने की स्वीकार स्थिति में आ गया। यह तभी घटित हुई जब अभ्यास, चिन्तन क्रम में सम्पूर्ण सहअस्तित्व ही जानने-मानने में आ गई। अस्तित्व में मानव अविभाज्य रूप में होना जानने-मानने में आई। इसी के साथ-साथ इन-इनका निश्चित कार्य क्यों, कैसा का उत्तर निष्पन्न हुई। हर मानव जीवन और शरीर के संयुक्त रूप में वर्तमान होना जानने मानने में आई। इसी के साथ अनुसंधान का फलन रूप स्वीकारने के स्थिति में आये। उसके तुरंत बाद ही इसे मानव में अर्पित करने की विधि को पहचानने की प्रक्रिया हुई। शनैः-शनैः इस कार्य में हम प्रवृत्त हुए। इस तथ्य को हम पहचानने में सफल हुए कि अनुभवमूलक विधि से मानव कुल को परंपरा के रूप में व्यक्त होने की आवश्यकता है और यह मानव में सफल होने के लिए सभी तथ्य से पूर्ण है।

समाधि लक्ष्य के अतिरिक्त जो कुछ भी साध्य, साधक, साधन के रूप में और मान्यताएँ मानव परंपरा में प्रचलित है वे सभी कल्पना क्षेत्र का ही सजावट होना पाया गया। क्योंकि हर धर्म के मूल ग्रंथ में भी धर्म का लक्षणों के रूप में अपने-अपने कल्पना को सजाया हुआ है। अतएव ऐसे सभी प्रकार के प्रतीक और प्रतीकों से सम्बन्धित वस्तुओं को साध्य मानते हुए, उसके लिये तत्परता को अर्पित किया हुआ भ्रमित साधक और भ्रमित साधन के संयोग में ईर्ष्या, द्वेष, श्राप, विरोध, वाद-विवाद, प्रलोभन, भय, समस्या ही समस्या देखने को मिला। इस प्रकार समाधिगामी साधना और मनोकामना प्राप्तिगामी साधनाएँ दोनों सुस्पष्ट है। उल्लेखनीय बात यही है उभय प्रकार से जूझा हुआ सभी साधक अथवा सर्वाधिक साधक, सर्वसुख को चाहने वाले होते हैं।

इतने दीर्घकालीन परिश्रम से अभी तक सर्वसुख का मूलरूप अथवा सार्वभौम रूप को पहचानने में भी अड़चन रहा है क्योंकि रहस्य के आधार पर, उपदेश के आधार पर, प्रयोगशालाओं में स्थापित शक्तिशाली सूक्ष्मदर्शी दूरदर्शी और जितने भी क्षारीय अम्लीय किरण-विकिरण संयोग पाकर कार्य करने वाले रस रसायनों के विश्लेषणों से भी सर्वसुख विधि निकल नहीं पायी। करोड़ों में, अरबों में एक व्यक्ति रहस्यवादी विचारधारा के आधार पर स्वान्तः सुख विधि को पा चुके हैं क्योंकि यह स्थली हमें देखने को मिला है। इससे

भी सर्वशुभ होने का रास्ता, दिशा, सूत्र, व्याख्या, अध्ययन विधि, प्रक्रिया परम्परा गम्य नहीं हो पायी। यह भी इसके साथ समीक्षीत हुई, कोई भी व्यक्ति स्वान्त: सुख को प्राप्त करने के बाद भी विभिन्न समुदायों के परस्परता में निहित द्रोह-विद्रोह, शोषण, युद्ध समाप्त नहीं हो पाया है। इतना ही नहीं हर समुदाय में निहित अन्तर्विरोध की शांति नहीं हो पायी। विज्ञानवाद युद्धोन्मुखी-संघर्षोन्मुखी होने के आधार पर इस शताब्दी के अंत तक सर्वाधिक प्रभावित रहा देखने को मिल रहा है। यही विगत का समीक्षा है। संघर्ष-युद्ध समाधान अथवा सर्वशुभ का आधार नहीं हो पाया।

जागृति विधि और अभ्यास

अस्तित्वमूलक मानव केन्द्रित चिन्तन ज्ञान, दर्शन, आचरण ध्रुवीकृत रूप में अध्ययन गम्य होना देखा गया है। जीवन ज्ञान जीवन में सम्पन्न होने वाली क्रियाओं का परस्परता सहज ध्रुव बिन्दुओं के आधार पर उभय तृप्ति विधि सर्व शुभ एवं समाधान से देखा गया अभिव्यक्तियाँ है। जैसा मन और तृप्ति में सामरस्यता का बिन्दु, विश्लेषण, तुलन पूर्वक आस्वादन के रूप में पहचाना गया है। यह सहअस्तित्व अनुभव के पश्चात् नियम, न्याय, धर्म, सत्य सहज प्रयोग में अनुभूत होने के उपरान्त ही सार्थक हो पाता है। इसके लिये अर्थात् ऐसे अनुभूति के लिये अध्ययन क्रम से आरंभ होता है। अध्ययन अवधारणा क्षेत्र का भूरि-भूरि वर्तमान विधि है। इस विधि से जितनी भी अवधारणाएँ अध्ययन से सम्बद्ध होता गया, उतने ही अवधारणा के आधार पर प्रवृत्ति सहज न्याय, धर्मात्मक और सत्य सहज तुलन, न्याय तुलन सम्पन्न विचार के आधार पर किया गया आस्वादन सहित, सम्पन्न किया गया सभी चयन न्याय रूप होना देखा गया है। इसी प्रकार ऊपर कहे चिन्तनपूर्वक जब चित्रण, तुलन, विचार, आस्वादन और चयन क्रियाएँ सम्पन्न होते हैं न्यायपूर्वक व्यवस्था में प्रमाणित होना देखा गया। अवधारणाएँ स्वाभाविक रूप में ही अस्तित्व सहज होने के आधार पर सहअस्तित्व रूप होने के आधार पर अनुभूत होना अर्थात् जानना-मानना और उसके तृप्ति बिन्दु को पाना ही अनुभव है। जानना-मानना-पहचानना ही अवधारणा है। इसमें तृप्ति बिन्दु को पा लेना ही अनुभव है। इसे कार्य-व्यवहार व्यवस्था में व्यक्त कर देना प्रामाणिकता है। अनुभव प्रमाण पूर्ण बोध सहित सम्पन्न होने वाले संकल्प, चिन्तन, चित्रण, न्याय, धर्म, सत्य रूपी तुलन, विश्लेषण आस्वादन सहित किया गया सम्पूर्ण अभिव्यक्तियाँ, व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी निर्वाह करता हुआ ही देखने को मिलता है। इस विधि से जागृतिपूर्ण मानव ही अस्तित्व में भ्रम बन्धनों से मुक्त होना स्पष्ट किया जा चुका है। जागृति विधि, अध्ययन रूपी साधना विधि से सर्वाधिक उपयोगी, सदुपयोगी, प्रयोजनशील होना देखने को मिला है। इस विधि से साध्य, साधक, साधन का सामरस्यता स्वयं-स्फूर्त विधि से सम्पन्न होना देखा गया है।

जागृति के लिये हर मानव साधक है। साध्य जागृति ही है। साधन जागृतिगामी अध्ययन प्रणाली है। इस क्रम में परम्परा साधन प्रतिष्ठा के रूप में तन-मन-धन व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी का प्रमाण मानवाकांक्षा के रूप में होता ही है। इस प्रकार से साध्य-साधक-साधन का संयोग मानवीयतापूर्ण परंपरा विधि से सफल होने का स्वरूप स्पष्ट है। ऐसे परंपरा के पूर्व (जैसे आज की स्थिति में भ्रमित समुदाय परंपराएँ) मानवीयतापूर्ण परंपरा में संक्रमित होने की कार्यप्रणाली मुद्दा है। इस क्रम में अनुसंधान के अनन्तर जितने भी शोधकर्ता सम्मत होते जाते हैं और सम्मति के अनुरूप निष्ठा उद्गमित हो जाती है और भी भाषाओं से स्वयं-स्फूर्त निष्ठा उद्गमित होती है। ऐसे ही निष्ठावान मेधावी इस कार्य में संलग्न है। यही आज की स्थिति में जागृतिगामी अध्ययन, जागृतिमूलक अभिव्यक्ति सहज विधि एक से अधिक व्यक्तियों में प्रमाणित होने का आधार बन चुकी है। जागृतिपूर्ण परंपरा में साध्य, साधन, साधक में नित्य संगीत होना देखा गया है। दूसरे भाषा में नित्य समाधान होना पाया गया है।

उल्लेखित अनुभवों के आधार पर सम्पूर्ण जागृति अपने-आपसे जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान, मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान में ही सम्पूर्ण है। इसका अभ्यास विधि सर्वप्रथम अनुसंधान दूसरा अध्ययन पूर्वक शोध, शोध पूर्वक अध्ययन ये ही मूल अभ्यास है। क्योंकि अध्ययन विधि से ही, शोध विधि से ही अवधारणा का स्वीकृत होना देखा जाता है। अन्य विधि जैसे उपदेश विधि में भ्रमित होने की संभावना सदा बना ही रहता है।

हर परंपरा में अपने ढंग की आदेश प्रतिष्ठा स्थापित रहता ही है। वह अध्यवसायिक (अध्ययनगम्य) होते तक उपदेश या सूचना मात्र है। परंपरा में जिस आशय के लिये आदेश-निर्देश है वह तर्क संगत-व्यवहार संगत बोध होने की प्रक्रिया प्रणाली पद्धति ही अध्ययन कहलाती है। तर्क का सार्थक स्वरूप विज्ञान सम्मत विवेक और विवेक सम्मत विज्ञान होना देखा गया। प्रयोजनविहीन उपदेश प्रयोग वह भी व्यवहार, प्रमाण विहीन उपदेश तब तक ही रह पाता है जब तक तर्क संगत न हो। तर्क का तात्पर्य भी इसी तथ्य को उद्घाटित करता है। तृप्ति के लिये आकर्षण प्रणाली (भाषा प्रणाली) ऐसे तर्क सहज रूप में ही विज्ञान के आशित विश्लेषणों को विवेक से आशित प्रयोजनों का प्रमाणित होना सहज है। हम इस बात को समझ चुके हैं कि प्रयोजनपूर्वक जीने के लिये, प्रमाणित होने के लिये समाधान समृद्धि के रूप में सहअस्तित्व दर्शन के लिये तर्क संगत अध्यवसायिक विधि का होना आवश्यक है।

अध्ययन क्रियाकलाप, तर्कसंगत प्रयोजन, प्रयोजन संगत मानवापेक्षा, मानवापेक्षा संगत जीवनापेक्षा, जीवनापेक्षा संगत सहअस्तित्व, सहअस्तित्व संगत विकास क्रम और विकास, विकासक्रम और विकास संगत जीवन-जीवनी क्रम-जागृति क्रम-जागृति एवं इसकी निरंतरता सहअस्तित्व सहज लक्ष्य है। अस्तित्व

सहज लक्ष्य में भी मानव ही अविभाज्य है और द्रष्टा है। इसलिये मानव अस्तित्व सहज सहअस्तित्व विधि से पूरकता-उदात्तीकरण, पूरकता-विकास, पूरकता-जागृति सूत्रों के आधार पर सहअस्तित्व सहज अध्ययन सुलभ हुआ है।

सम्पूर्ण अस्तित्व ही व्यवस्था के स्वरूप में वर्तमान होना समीचीन है। आज भी मानव के अतिरिक्त सभी अवस्था में (पदार्थ, प्राण, जीव अवस्था) अपने-अपने त्व सहित व्यवस्था में होना दिखता है। इसी क्रम में मानव भी अपने मानवत्व सहित व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी सहज अपेक्षा को सार्थक बनाने के क्रम में ही जागृत होना पाया जाता है।

हम यह पाते हैं कि जागृति सूत्र व्याख्या और प्रमाण सर्वशुभ के स्वरूप में ही वैभवित होता है। इस आशय को लोकव्यापीकरण करना भी सर्वशुभ कार्यक्रम का एक बुनियादी आयाम है। इसी सत्यतावश "अनुभवात्मक अध्यात्मवाद" एक प्रस्तुति है। हर मानव अपने कल्पनाशीलता, कर्मस्वतंत्रता पूर्वक ही हर प्रस्तुतियों को परखना (परीक्षण करना) स्वीकारना या अस्वीकार करने के कार्यकलाप को करता है। मानव अपने में ही पाये जाने वाले कल्पनाशीलता-कर्मस्वतंत्रतावश ही कार्यप्रणालियों की दिशाओं को परिवर्तित करता है। जैसे राजशासन राजकेन्द्रित दिशा से छूटकर लोककेन्द्रित दिशा के लिए तड़प रहा है। दूसरे भाषा में राजतंत्र से छूटकर लोकतंत्र की अपेक्षा बलवती हुई है। मान्यताओं पर आधारित (अथवा मान्यता केन्द्रित) रूढ़ियों के स्थान पर सार्थकता की ओर नजरिया को फैलाने की प्रवृत्तियाँ मानव में उदय हो चुकी है। मान्यता का दूसरा आयाम रहस्यमूलक गाथाओं के आधार पर मानव अपने कार्य नीतियों, व्यवहार नीतियों को निर्धारित रहने के लिए विवश रहते आया है। उसमें पुनर्विचार की आसार जैसे-समझदारी के आधार पर कार्य-व्यवहार, उत्पादन-विनिमय, स्वास्थ्य-संयम, शिक्षा, न्याय जैसी प्रवृत्तियों को सार्वभौमता की ओर दिशा परिवर्तन की आवश्यकता बलवती होती जा रही है। इससे पता चलता है-हम मानव एक ऐसा अभ्यास विधि चाहते हैं जो सर्वमानव में स्वीकृत हो, प्रयोजनशील हो। इन दो ध्रुवों के आधार पर ही मानवापेक्षा और जीवनापेक्षा का अर्थ, प्रयोजन और प्रणाली, पद्धति, नीति स्पष्ट हो गये है। मानवापेक्षा अर्थात् मानव लक्ष्य जीवनापेक्षा अर्थात् जीवन मूल्य है।

अस्तित्वमूलक मानव केन्द्रित चिन्तन विधि से उक्त मुद्दे पर हर व्यक्ति के पारंगत होने का अवसर, आवश्यकता और प्रत्येक मानव जीवन में निहित अक्षय बल रूपी साधन वर्तमान रहता है। समझदारी के आधार पर ही मानव में जीवनापेक्षा और मानवापेक्षा को सार्थक बनाने की विधि प्रमाणित होती है। मानवापेक्षा क्रम में जीवनापेक्षा अविभाज्य रूप में वर्तमान रहता है। मुख्य मुद्दा इसमें यही है, सर्वतोमुखी समाधानपूर्वक ही हर मानव सुखी होता है और सर्वतोमुखी समाधानपूर्वक हर परिवार समृद्ध होता है।

समाधान का धारक-वाहक प्रत्येक मानव ही होना देखा गया है। मानव में भी केवल 'जीवन' को धारक वाहक होना देखा गया है। जीवनापेक्षा सदा ही जागृति मूलक होता है। जागृति जीवन सहज आवश्यकता मानव सहज परंपरा में निरंतर समीचीन है जिसके लिये हर मानव का जिज्ञासु रहना सुस्पष्ट है। अतएव जीवनापेक्षा मानवापेक्षा अपने आप में नित्य प्रभावी होना देखा गया है इसी के साथ साथ सर्वमानव में यह प्रभाव होना देखने को मिलता है। जीवनापेक्षा का प्रमाण ही मानवापेक्षा और मानवापेक्षा का प्रमाण ही जीवनापेक्षा का होना देखा गया है।

सहअस्तित्व में ही मानव, जीवन सहज जागृति को प्रमाणित करना सहज, सुंदर, समाधान और सुखद होना देखा गया है। सहअस्तित्व में हर परंपरायें (हर अवस्था, हर पद) नित्य वैभव के रूप में अथवा निरन्तर वैभव के रूप में तभी प्रमाणित हुई है जब परम्परायें अपने में समृद्ध और आवर्तन शील होती हैं। इसी क्रम में मानव परम्परा भी अनुभवमूलक विधि से जीवनापेक्षा व मानवापेक्षा सहज आवर्तनशील रूप में वैभवित होना ही सार्वभौम व्यवस्था और अखण्ड समाज का होना समीचीन है। यह भी मानव परंपरा में आवश्यकता के रूप में देखा गया गया है कि मानव में सार्वभौमता की अपेक्षा स्वीकृत है। इसे दूसरी विधि से आशा के रूप में सार्वभौमता हर मानव में, हर परम्परा में, हर समुदाय में, हर जाति में, पंथ, मत, सम्प्रदायों में समाहित है ही। इसे सार्थक बनाने की इच्छा भी इस बीसवीं शताब्दी के दसवें दशक में आवाजों के रूप में सुनने को मिलता है। इसे सार्थक बनाने के लिए अनुभवात्मक अध्यात्म मानस अनिवार्य रही है।

अनुभवात्मक अध्यात्मवादी विचार और व्यवहार स्वाभाविक रूप में सहअस्तित्व को प्रमाणित कर लेना ही है। यह कार्य मानव परंपरा में ही संपादित होना स्वाभाविक है। क्योंकि मानव इकाई ही संस्कारानुषंगी अभिव्यक्ति होना स्पष्ट किया जा चुका है। अभिव्यक्ति का तात्पर्य भी सर्वतोमुखी समाधान के रूप में सार्थक होना देखा गया है। ऐसा समाधान मानव परंपरा सहज हर आयाम, दिशा, कोण, परिप्रेक्ष्यों में समाधानित होने के अर्थ में सार्थक होने और विशालता की ओर गतिशील होने के रूप में देखा गया है। यही जागृति विधि साधना का अभीष्ट व प्रमाण है। मानव अपनी जागृति सहज प्रमाणों को प्रमाणित करना ही अभ्यास का तात्पर्य है। अभ्यास अपने सार्थक स्वरूप में सर्वतोमुखी समाधान के लिये किया गया अनुभव, विचार, व्यवहार समुच्चय है।

अनुभव मानव सहज अपेक्षा एवं वैभव है। मुख्य रूप में इन्द्रिय सन्निकर्षात्मक स्वीकृतियाँ आबाल-वृद्ध पर्यन्त प्रभावित रहता ही है। इसके मूल्यांकन के लिये और समीक्षा के लिये मूल्य मूलक व लक्ष्य मूलक सिद्धांत, सूत्रों व व्याख्याओं के प्रति मानव का प्रमाणित होना आवश्यक है। क्योंकि इन्द्रिय सन्निकर्षात्मक विधियों, कार्यों और इसके लिये आवश्यकीय साधनों की संग्रह विधियों से कोई भी समुदाय परंपरा

मानवापेक्षा व जीवनापेक्षा को प्रमाणित करने में असमर्थ रहा है अथवा पराभवित रहा है। इसी के साथ-साथ समाधान, समृद्धि, अभय व सहअस्तित्व की अपेक्षा हर समुदायों में बना ही रहा किन्तु प्रमाणित नहीं हो पाया है। इस तारतम्य में यह स्पष्ट हो जाता है कि आदि काल से ही मानव सार्वभौम शुभ चाहते हुए अभी तक पराभवित होने का कारण एकांतवादी व भोगवादी प्रवृत्ति ही है। वैभवित होने का मार्ग भी सुस्पष्ट हो चुका है। यह केवल सहअस्तित्व में अनुभवमूलक प्रणाली ही है जो लक्ष्य मूलक, मूल्य मूलक अपेक्षाओं को सार्थक रूप देने में समर्थ होना देखा गया है। मूल्य मूलक प्रणाली से स्वाभाविक रूप से मानवापेक्षा सफल हो जाता है। लक्ष्य मूलक प्रणाली से जीवनापेक्षा सार्थक होना देखा गया है।

प्रणालियाँ मूलतः इन्द्रिय सन्निकर्षात्मक अथवा अनुभवात्मक होना ही देखा गया है। इन्द्रिय सन्निकर्षात्मक प्रणालियों पर आधारित प्रयोगों को मानव ने इस धरती पर किया है। इसका समीक्षा पहले हो चुका है। अब केवल मूल्य मूलक, लक्ष्य मूलक विधि ही सम्पूर्ण मानव के लिये शरण होना समीचीन है। मानव में मूल्य व लक्ष्य की अपेक्षा सदा रहते हुए इसके विपरीत प्रणाली से इसको पाने की अपेक्षा किया।

मानव परंपरा में शिक्षा-संस्कार, न्याय-सुरक्षा, उत्पादन कार्य, विनियम कोष, स्वास्थ्य-संयम, व्यवस्था व व्यवस्था में भागीदारी सहज मुद्दों पर जागृत सहज प्रमाण होना, जानने-मानने-पहचानने में निरीक्षण समर्थ होना और निर्वाह करने में निष्णात रहना ही प्रामाणिकता है। निष्णातता का तात्पर्य निरीक्षण पूर्वक हर कार्य व्यवहारों को पूर्णरूपेण पूर्णता के अर्थ में प्रतिपादित, प्रकाशित और प्रमाणित करना ही है। यह मानव सहज अपेक्षा और आवश्यकता होना देखा गया। इसकी दूसरी विधियों में मानव कायिक, वाचिक, मानसिक, कृत, कारित और अनुमोदित विधाओं में जागृतिपूर्ण कार्यकलापों को प्रमाणित करना ही है। यह सर्वमानव स्वीकृत है। स्वीकृति को सर्वत्र देखने के लिए जागृत होना चाहते हैं या भ्रमित रहना चाहते हैं, इसके उत्तर में हर व्यक्ति जागृति का ही पक्ष लेते हैं। जागृति का सुस्पष्ट स्वरूप अस्तित्व में जागृत होना ही है। अस्तित्व में जागृत होने का गतिक्रम स्वरूप अपने आप में सहअस्तित्व में ही निहित है। जिसको हम सहअस्तित्व के रूप में पहचानते हैं। सहअस्तित्व में ही परमाणु में विकासक्रम और विकास, विकसित परमाणु ही जीवन पद में होना, जीवन ही जीवनी क्रम, जागृतिक्रम, जागृति और जागृतिपूर्ण विधियों से विविध परंपराओं में मुक्त रहने, अखण्डता सार्वभौम व्यवस्था सहज रूप में वर्तमानित रहने तथा गठनशील परमाणुओं में भौतिक-रासायनिक क्रियाकलापों के फलन में रचना-विरचनाएँ वर्तमान है, इन्हीं सहअस्तित्व सहज गति को जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह करना ही जागृति और जागृति का प्रमाण है। इससे यह विदित होता है ऊपर कहे सभी क्रमों में हर मानव, सर्वाधिक मानव प्रमाणित होना ही जागृत मानव परंपरा का स्वरूप होना सुस्पष्ट हो गई। यही सर्वसुख विधि को सार्थक बनाता है।

मानव में जागृत परंपरा स्थापित होने प्रमाणित होने और उसकी निरंतरता को बनाए रखने के लिए सर्वसुखवादी विधि और व्यवस्था ही एक मात्र शरण है। यह पहले से ही स्पष्ट हो चुकी है जागृति ही विधि है, इसे प्रमाणित करना ही व्यवस्था है। यही व्यवस्था मानवीयता पूर्ण शिक्षा-संस्कार सुलभता व्यवस्था अपने स्वरूप में न्याय-सुरक्षा सुलभता, विनियम-कार्य सुलभता, उत्पादन-कार्य सुलभता, स्वास्थ्य-संयम कार्य सुलभता रूप में होना देखा गया है। यह सर्वसुलभ होना समीचीन है, आवश्यक और संभव है। मानव परंपरा में जागृति का प्रमाण मानवीयतापूर्ण शिक्षा-संस्कार ही है। जागृति और व्यवस्था के निरंतरता क्रम में स्वास्थ्य-संयम प्रणाली अपने आप मानव में, से, के लिये करतलगत होता है। इस प्रकार जागृति और जागृतिमूलक विधि से व्यवस्था सार्वभौम होना स्वाभाविक है। क्योंकि हर मानव जागृत होना चाहता ही है और हर मानव व्यवस्था में जीना चाहता ही है। यही अस्तित्व में अनुभव की महिमा है सहअस्तित्व का प्रभाव है फलतः जागृति और जागृति का प्रमाण रूप सार्वभौम व्यवस्था मानव परंपरा में सार्थक होता है। यही "अनुभवात्मक अध्यात्मवाद" का प्रयोजन है।

अभ्यास और साधना, आराधना

यह आदि काल से सुनी हुई भाषा अथवा मुद्दा है। मुद्दा के रूप में मानव प्रवृत्तियाँ को आंकलित किया जाना सहज है। सुनी हुई आधार पर किताबों, दस्तावेजों के रूप में, प्रवक्ताओं के मुखारबिन्द से सुनी हुई स्थितियाँ आंकलित होती है।

आराधनाओं को अपने आर्तता (असमर्थता) को अर्हता (समर्थता) के लिये सर्व समर्थ सम्पन्न किसी अज्ञात के अस्तित्व को मानते हुए आर्तनाद करते हुए क्रियाकलापों के रूप में देखा गया है। इस विधि से प्रमाण और उसकी सार्वभौमता का कोई एक सूत्र बना ही नहीं। फिर भी इस बात को आंकलित करने के लिए यह प्रयत्न किया कि बहुत सारे लोग कैसे आराधना में प्रसन्न रहते हुए भी देखने को मिलता है। इस क्रम में यह पाये कि किसी न किसी इष्ट-अनिष्ट घटनाओं को अपने आराधना का फल मानते हुए सांत्वना लगाते हुए देखा गया। हमारी यात्रा में आराधना का फल-परिणामों में उक्त प्रकार से आंकलित करते रहे। अतएव सभी आराधना व्यक्तिवादी होना स्पष्ट हो गया।

साधना में कई लोग आज भी शुभकामना से ही प्रवृत्त रहते हैं। साधना को हम अपने सुधार के लिये किया गया प्रयास के रूप में देख पाए। सुधार का अंतिम (तृप्ति) बिन्दु जागृति के रूप में ही होना देखा गया।

अभ्यास को हम इस तथ्य के रूप में देख पाये हैं कि साधना से जो जागृति बिन्दु हमें प्राप्त हुई और समृद्ध हुए उसे अभ्युदय (सर्वतोमुखी समाधान) के रूप में व्यवहृत करने के रूप में सार्थकता को देखा गया।

इसी के साथ-साथ नि:श्रेयस (निरंतर श्रेय) को जागृति पूर्णता के रूप में देखा गया। देखने का तात्पर्य समझने से ही है। समझने का तात्पर्य जानने, मानने, पहचानने से ही है। श्रेय के स्वरूप को जागृति और उसकी निरंतरता में ही होना देखा गया है। हर मानव, हर परिवार, हर समुदाय, हर पंथ-सम्प्रदाय सब जागृति को स्वीकारते ही हैं। इसे निरीक्षण, परीक्षण, सर्वेक्षण पूर्वक हर मानव देख सकता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है हर देश काल में हर मानव श्रेय अपेक्षी है ही। इसे सार्थक रूप देने के लिये परंपरा सहज कर्तव्य स्वीकृति आवश्यक है। इस क्रम में यह भी स्पष्ट हो गया है कि साधना सहज क्रम में जागृति, जागृति विधि में व्यवस्था होना, नित्य अभ्यास एवं प्रमाण है।

अभ्यास ही अनुसंधान कार्यकलाप के रूप में प्रमाणित होता है। हर मानव में पायी जाने वाली प्रवृत्तियाँ अनुसंधान के लिये प्रयुक्त होने वाली मूल शक्तियाँ ही है। ये जीवन सहज शक्तियों के रूप में देखा गया है। जीवन शक्तियाँ जीवन भ्रमित रहते तक कल्पनाशीलता कर्म स्वतंत्रता के रूप में कार्य करते ही रहती है। सम्पूर्ण प्रयोग साधना के रूप में ही होता है। हर साधना सुधरने के अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ रहता है। सुधार केवल जागृति की ओर ही है। जागृति का लक्ष्य बिन्दु अनुभव और प्रामाणिकता ही है। प्रामाणिकता अभ्युदय के अर्थ में अर्थात् सर्वतोमुखी समाधान के अर्थ में प्रयुक्त होता है। यही मानव धर्म है। जागृति सुख, शांति, संतोष, आनंद के रूप में ख्यात रहता ही है। यही जीवनापेक्षा का नित्य स्वरूप है।

अनुभव अस्तित्व में ही होना पाया गया है। जीवन ही अस्तित्व में अनुभव करता है। इसीलिये जीवन ही कर्तापद प्रतिष्ठा में ख्यात होता है। यहाँ मुख्य रूप से इंगित मुद्दा यह है जीवन भी सहअस्तित्व में ही है। अस्तित्व का स्वरूप, प्रभाव पहले से स्पष्ट किया जा चुका है - अस्तित्व ही सहअस्तित्व है। सहअस्तित्व ही नित्य प्रभावी प्रकटनशील है। अस्तित्व में जो कुछ भी है - यह सब वस्तु के रूप में है क्योंकि इनमें वास्तवकिताएँ नित्य प्रमाणित हैं। अस्तित्व में व्यापक और एक-एक के रूप में अनन्त इकाईयाँ वर्तमान में होना दिखाई पड़ती है। जिसका द्रष्टा मानव ही है। अस्तित्व में जो वस्तुएँ है, जितनी भी है इन्हीं वस्तुओं का नामकरण करना मानव का अधिकार सहज क्रियाकलाप है। जैसा- मिट्टी एक नाम है। मिट्टी नाम से इंगित वस्तु अस्तित्व में है ही। यह (मिट्टी) स्वयं में केवल नाम न होते हुए भी वस्तु के रूप में वर्तमान है। इसी प्रकार हर नाम से इंगित वस्तु अस्तित्व में होना वर्तमान है। व्यापक वस्तु में ही सम्पूर्ण एक-एक भीगा-डूबा और घिरा हुआ होने के आधार पर व्यापक वस्तु को सत्ता नाम दिया है। पहले से भी कुछ नाम है - वह है अध्यात्म। व्यापक वस्तु को पूर्व में सार्थक रूप में समझना-समझाना बन नहीं पाया था। अभी इस व्यापक वस्तु को हर मानव समझ पाना संभव हो गया है। एक-एक के रूप में जो वस्तुएँ है, इन्हें परस्परता में देखने के पहले ही व्यापक वस्तु दिखता ही है। इसी व्यापक वस्तु को हम अध्यात्म नाम भी

दिये हैं। इसी व्यापक वस्तु में सम्पूर्ण वस्तु डूबा-भीगा-घिरा दिखाई पड़ने के आधार पर 'अनुभवात्मक अध्यात्मवाद' इस ग्रंथ का नाम रखा गया है। वाद सदा ही मानव परंपरा में एक-दूसरे के बीच संप्रेषणा कार्य ही है। दूसरे विधि से सम्भाषण ही है। मानव परंपरा में संभाषण एक अनिवार्य प्रक्रिया है। हर तथ्यों के प्रति जागृति और उसका संप्रेषणा मानव परंपरा में होना आवश्यक है ही। मानव में, से, के लिये समीचीन सभी आयाम, कोण, दिशा, परिप्रेक्ष्य संबंधी सम्भाषण-संप्रेषणा एक अनिवार्य घटना है। यह घटना स्वाभाविक रूप में मानवापेक्षा और जीवनापेक्षा को सार्थक बनाए रखने के क्रम में सर्वाभिलाषित है ही। इसी अभीप्सावश "अनुभवात्मक अध्यात्मवाद" की अभिव्यक्ति है।

सुदूर विगत से अनुभव के अभाववश कई प्रकार से विचारों को सजाते हुए भी मानवपेक्षा-जीवनापेक्षा का सफलता या सफल बिन्दु नहीं मिल पाया था। अभी "अनुभवात्मक अध्यात्मवाद", "व्यवहारात्मक जनवाद" और "समाधानात्मक भौतिकवाद" के रूप में सहअस्तित्व विधि से उभय-अपेक्षा सर्वसुलभ होने की विधि से चर्चा-वार्तालाप, संभाषण, प्रबोधन, अध्ययन करना संभव हुआ है। अध्ययनपूर्वक मानव में समझदारी परिपूर्ण होना देखा गया। इसीलिये सम्पूर्ण वस्तु समझदारी के लिये जो आवश्यकता है उन सबको परंपरा में सर्वसुलभ करने की आवश्यकता है ही। इन्हीं आशय के साथ जीवन सहज जागृति, जागृति सहज अभिव्यक्ति, संप्रेषणा क्रम में यह एक वाङ्गमय मानव के सम्मुख प्रस्तुत है।

जीवन ही दृष्टा, सहअस्तित्व ही दृश्य, न्याय, धर्म, सत्यपूर्ण दृष्टियों का क्रियाशीलता ही दृष्टि का स्वरूप है। इसका साक्ष्य है न्याय सुलभता (परस्पर मानव और नैसर्गिकता में), धर्म सुलभता (सर्वतोमुखी समाधान सुलभता) और जागृति सुलभता (प्रामाणिकता और प्रमाण सुलभता) यह सब जागृति केन्द्रित विधि से सहअस्तित्व रूपी परम सत्य व्यवहार-कार्य रूप में सम्पन्न होना देखा गया है। जागृति हर व्यक्ति का आकांक्षा है ही। इसलिये परंपरा में निर्दिष्ट रूप में शिक्षा-संस्कार परंपरा में इनका सहज अध्ययन-मूल्यांकन पद्धति, प्रणाली, नीतियों को अपनाना ही परंपरा में वांछित परिवर्तन का स्वरूप है। दृष्टा पद रूपी जीवन अथवा दृष्टा पद प्रतिष्ठा में वैभवशील जीवन परंपरा में न्याय, धर्म, सत्य को अभिव्यक्त, संप्रेषित, प्रकाशित करने में मानव ही समर्थ है। इस तथ्य को परीक्षण, निरीक्षण पूर्वक देखने के उपरान्त ही उद्घाटित किया है। इसलिये कि मानवाकांक्षा, जीवनाकांक्षा ही सर्वशुभ के रूप में है। यह सर्वदा मानव परंपरा में सफल होते ही रहेगी। जागृत परंपरा में ही हर मानव और परिवार सर्वाधिक उपयोगी, सदुपयोगी, प्रयोजनशील होते हुए उपकारी होना देखा गया है। उपकारिता का तात्पर्य मानव को, मानव जागृति मार्ग को प्रशस्त कराते हुए देखने को मिला है। यह क्रिया वश जो मानव कर पाता है वह उपकारी होता है वह जागृति सहज प्रमाणों को प्रस्तुत करता ही है, वर्तमान में समीचीन मानव जो जागृत नहीं हुए हैं उन्हें जागृत होने

के लिये योग्य प्रस्तुति के रूप में हो जाता है। यह सहअस्तित्व में अनुभव सहज प्रामाणिकता सहित सर्वतोमुखी समाधान, समृद्धि सम्पन्न स्थिति और गति के रूप में होना देखा गया है; क्योंकि जागृतिगामी अध्ययन प्रणाली से हर व्यक्ति स्वायत्त होता है। स्वायत्तता का स्वरूप स्वयं के प्रति विश्वास, श्रेष्ठता का सम्मान, प्रतिभा और व्यक्तित्व में संतुलन, व्यवहार में सामाजिक, व्यवसाय (उत्पादन) में स्वावलंबी होना देखा गया है। ऐसे स्वायत्त मानव ही परिवार मानव के रूप में जीने देकर जीने में समर्थ होता है। यही अद्भूत सामर्थ्यवश सर्वतोमुखी समाधान और समृद्धि वैभवित होता है। यही हर स्वायत्त परिवार मानव सफलता का प्रमाण है और सर्वशुभ का भी प्रमाण है। अस्तु, मानव सत्य दृष्टि पूर्वक, धर्म दृष्टि पूर्वक, न्याय दृष्टि सहज स्वायत्त होता है और स्वायत्तता का मूल्यांकन कर पाता है। इसीलिये परिवार मानव का सार्वभौमता (परिवार मानवता में, से, के लिये सर्वमानव में स्वीकृति) प्रवाहित होना सहज है।

कर्ता-कार्य-कारण : यह तथ्य पहले स्पष्ट हो चुका है कि दृष्टा, कर्ता, भोक्ता पद में प्रमाणित होने वाली इकाई जागृत मानव ही है। जिसमें से भोक्ता पद में हर भ्रमित नर-नारी को देख सकते हैं। चाहे पंडित हो, मूर्ख हो, ज्ञानी कहलाता हो, अज्ञानी कहलाता हो, बली हो, दुर्बली हो, धनी हो, निर्धनी हो, बाल्य, कौमार्य, यौवन, प्रौढ़, वृद्धावस्था में क्यों न हो हर व्यक्ति हर अवस्था में इच्छित-अनिच्छित, परेच्छित विधि से भोक्ता हुआ देखने को मिलता है। भोग इस बात का साक्ष्य है कि कुछ करने का फलन में ही प्राप्तियाँ हो पाती हैं। स्वीकारना भी करना ही है। इस प्रकार कुछ करके, कुछ स्वीकार के भोग्य वस्तुओं को प्राप्त किया रहता है। यह तथ्य सर्वविदित है। इस क्रम में करने और स्वीकारने के रूप में हर मानव स्वतंत्र होना देखा गया है। एक व्यक्ति जो करता है उससे भिन्न दूसरा करता हुआ देखने को मिलता है, एक व्यक्ति जिन वस्तुओं को स्वीकारता है उससे भिन्न वस्तुओं को दूसरा व्यक्ति स्वीकारता है। इसलिये कर्म स्वतंत्रता सूत्र प्रमाणित हो जाता है। यह भी इसी के साथ निष्कर्षित होता है कुछ करने के आधार पर ही भोग्यमान वस्तुओं की प्राप्ति होती है।

हर व्यक्ति में हर क्षण किसी एक भोग के उपरान्त पुनः भोगने के लिये प्रवृत्तियाँ उदयशील रहते ही हैं, उसमें परिवर्तन का आधार पूर्व में किया गया भोग देखने को मिलता है। इस विधि से भोगने के लिये, भोग्यमान वस्तुओं का परिवर्तन और परिवर्तित वस्तुओं की प्राप्ति के लिये करने की शैली में परिवर्तन, करने की शैली के मूल में विचारों का परिवर्तन होना देखा गया है। इस प्रकार न्याय, धर्म, सत्य सहज प्रमाण सम्पन्न होने पर्यन्त हर मानव में, से, के लिए परिवर्तन अवश्यंभावी है।

सम्पूर्ण परिवर्तन मानव में जो कुछ भी देखने को मिलता है, देखने का नजरिया करने के लिये वैचारिक तैयारी और शरीर के द्वारा सम्पन्न किये जाने वाली क्रिया व्यवहार ही है। इन्हीं के फलन में प्राप्तियाँ होना

देखा गया है। इस प्रकार कर्ता, भोक्ता के मूल में दृष्टा पद ही प्रधान वस्तु होना स्पष्ट हो चुकी है। इसी आधार पर कर्ता, कार्य, कारण अपने आप में स्पष्ट होना स्वाभाविक है। कारण मूलतः मानव में पाये जाने वाली दृष्टि ही है। दृष्टि के कारण ही कार्य, कार्य के कारण से भोग, भोग के कारण से पुनर्दृष्टि, विचार होना हर मानव में दृष्टव्य है।

मानव में संपूर्ण कारण रूपी दृष्टि (जागृति) के आधार पर हर व्यक्ति करणीय कार्यों का निर्धारण कर पाता है। ये निश्चित वैचारिक प्रक्रिया है। इन्हीं कारणवश करने, स्वीकारने के रूप में कार्यकलाप सम्पन्न होते हुए देखने को मिलता है। सर्वमानव में छः दृष्टियाँ क्रियाशील होने की आवश्यकता और संभावना ही अध्ययनगम्य है, इसे स्पष्ट किया जा चुका है। इसी के साथ यह भी स्पष्ट किया जा चुका है कि प्रिय, हित, लाभ दृष्टि पूर्वक कोई भी मानव सामाजिक होना संभव नहीं है, व्यवस्था में जीना अति दुरूह रहता ही है। इसी अवस्था को भ्रमित अवस्था के नाम से स्पष्ट किया गया। जागृतिपूर्वक मानव में न्याय, धर्म, सत्य दृष्टि विकसित होती है। जागृतिपूर्वक मानव सामाजिक होता है और व्यवस्था में जीता है। हर मानव में, से, के लिये जागृति न्याय, धर्म, सत्य स्वीकृत है और वांछनीय है। भ्रमवश विभिन्न समुदाय परम्पराएँ अपने-अपने सामुदायिक अहमता के साथ उनके परंपरा में आने वाले सन्तानों को भ्रमित करने का तरीका खोज रखे हैं। इसलिये हर परंपरा में आने वाले संतान पुनः पुनः भ्रमित होते आए। यह काम बीसवीं शताब्दी के दसवें दशक तक देखने को मिला। दसवें दशक में "अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित दृष्टिकोण" सम्पन्न कुछ लोगों में यह सुस्पष्ट हो गई कि विगत से परम्परा में प्राप्त शिक्षा-संस्कार भ्रम की ओर है। इससे छूटना आवश्यक है। इसी के साथ यह भी समझ में आया कि हर मानव परम्परागत समुदाय मानसिकता से बड़ा होना देखने को मिलता है। इसका साक्ष्य यही है परम्पराओं में कहे हुए विधि से जितना खराब होना था, उतना न होकर उतना भाग सही की ओर होना पाया जाता है। जैसे हर प्रकार की धर्मगद्दियाँ अपने-अपने धर्म के विरोधी सभी पापी है, विधर्मी हैं, अधर्मी हैं, इन सबका नाश होगा। नाश करने वाला ईश्वर परमात्मा, सर्वशक्तिमान है। धर्म को बचाने वाला ही विधर्मियों का संहार करेगा। ऐसे विधर्मियों को संहार करना न्याय है और इससे ईश्वर प्रसन्न होते हैं। यह तो हुई परस्पर विद्रोहीता के लिये तत्व। यदि ईमानदारी से हर धर्म परम्पराओं में कही हुई बातों पर तुला जाये तो सदा लड़-झगड़ कर मारते ही रहना चाहिये या मरते ही रहना चाहिये। इतना कुछ हुआ नहीं। इसके विपरीत धरती में जनसंख्या बढ़ते ही रहा। इसलिये पता चलता है परंपरा जिस बदतर स्थिति में डालने के लिये अपने-अपने वचनों को बनाये रखा है उससे बेहतरीन स्थिति में अधिकांश लोगों को देखा जाता है। जिसका गवाही में किसी भी देश, काल, जाति, मत, संप्रदाय पंथों के अनुयायी हो अथवा समर्थक हो उन किसी सामान्य मानव से यह पूछने पर कि परस्पर समुदाय लड़ना

चाहिये या साथ में जीना चाहिये? उत्तर साथ में जीना चाहिये मिलता है। इस प्रकार हमें समुदाय परम्पराओं के मान्यताओं से बेहतरीन मानव होने की इच्छा आज भी दिखाई पड़ते हैं।

यह सुस्पष्ट हो चुकी है कि मानव का दृष्टिकोण ही, विचार ही हर कार्यो का कारण है। विचारों का कारण दृष्टिकोणों के आधार पर ही निर्भर है। हर दृष्टिकोण मानव जीवन सहज जागृति क्रम, जागृति, जागृति पूर्णता और उसकी निरंतरता पर निर्भर है। जागृति का कारण अस्तित्व, अस्तित्व सहज सहअस्तित्व, सहअस्तित्व सहज परमाणु में विकास, परमाणु में विकास सहज गठनपूर्णता, परमाणु में गठनपूर्णता सहज जीवन, जीवन सहज दृष्टियाँ, दृष्टि सहज विचार, विचार सहज क्रियाशीलता, क्रियाशीलता सहज जागृतिक्रम, जागृति, जागृति पूर्णता नियति सहज क्रियाकलाप है। नियति सहज क्रियाकलाप का तात्पर्य विकासक्रम, विकास, जागृति क्रम और जागृतिपूर्णता ही है। इसी क्रम में सम्पूर्ण अस्तित्व ही अभिव्यक्त है। इस प्रकार दृष्टि की क्रियाशीलता जागृति का कारण सहअस्तित्व ही है। इसी सत्यातावश हर मानव जागृति को प्रमाणित करने योग्य है। अस्तु, अस्तित्व सहज रूप में जागृति को प्रमाणित करना ही मूल कारण है।

सम्पूर्ण अस्तित्व जो कुछ भी अवस्थाएँ स्थितियाँ है, यथा-परमाणु, परमाणु अंश, धरती, एक सौर व्यूह, ऐसे ही अनंत सौर व्यूह जिसको ग्रह-गोल-नक्षत्र, तारागण, आकाशगंगा आदि नामों से हम मानव इंगित होते रहे हैं। यह सब सत्ता में संपृक्त प्रकृति सहज विधि से अस्तित्व ही है। इनमें से कोई-कोई धरती चारों अवस्था सहज अभिव्यक्ति सम्पन्न हो चुके हैं, कोई-कोई हो रहे हैं। कोई-कोई होने वाले हैं। इसीलिए अस्तित्व नित्य वर्तमान होना हमें समझ में आई है। इसीलिये अस्तित्व को परम सत्य के नाम से इंगित कराया गया है। अनुभव और उसकी अभिव्यक्ति का मूल कारण सहअस्तित्व ही है।

एकान्त और सहअस्तित्व

आदि काल से आस्था के आधार रूप में एकान्त वास मान्यता के रूप में कहता हुआ देखने को मिल रहा है। इसके मूल प्रतिपादन में कोई एक महान ज्ञान और सर्वज्ञ शक्तिमान है जिससे ही सम्पूर्ण जीव-जगत की उत्पत्ति, स्थिति और लय होता है-ऐसे शक्ति के अनुग्रह से ही जीवनों का उद्धार हो सकता है। इसीलिये ऐसे अज्ञात शक्ति को प्रसन्न कर अनुग्रहित होने के लिये अनेक उपायों को प्रस्तुत किया है। यही अध्यात्मवाद, अधिभौतिकवादी, अधिदैवीयवादी मान्यताएँ प्रणीत हुआ, प्रचलित हुआ। इस प्रणयन में विविधता बना रहा। मूलतः यही मानसिकता है, विचारों में प्रभेद, मानसिकता में प्रभेद और समुदायों में प्रभेद होना दृष्टव्य है। इन्हीं प्रभेदता और उन-उन के प्रति कट्टरता है। इसी के साथ ही रूढ़ियाँ (एक परंपरा जिस प्रकार रूढ़ियों को बनाए रखता है - के अतिरिक्त बाकी सभी को गलत माने रहना।) यही

भ्रमात्मक अहमता का मूल है। यह सुस्पष्ट है कि भ्रमात्मक अहमताएँ मानव के सामाजिक होने का सूत्र व्यवस्था अभी तक नहीं बन पाई। आगे भी नहीं बन सकेगा। इसका गवाही यही है कि भ्रमात्मक विधि से कोई भी सूत्र निर्धारित नहीं हो पाता। अहमतावश जिसको निर्धारण मान लेते हैं, उसका विरोध उसी समय से निर्गमित रहता ही है। जैसा विधर्मियों का नाश - यह सभी समुदायों का आवाज है। इसका विश्लेषण यही है कि एक समुदाय से मान्य रूढ़ियों अहमताओं के अतिरिक्त और जितनी भी अहमताएँ और रूढ़ी है उनके नाश की कामना। इन सभी रूढ़ी और अहमता के मूल में आस्था ही कारण है। आस्था का तात्पर्य यही है किसी वस्तु को हम नहीं जानते हुए उसके अस्तित्व को मान लेना। इसी आस्था के आधार पर अपने मनमानी रूढ़िगत अहमताओं को सुदृढ़ करते हुए जुटे रहना देखा गया है। यद्यपि हर आस्थाएँ शुभाकांक्षा से शुरू होते हुए किसी के नाश रूपी अशुभ के रूप में ही स्वयं के शुभ को मानने वाली स्थिति में आ जाता है। इसी आधार पर किसी भी प्रकार की आस्था अभी तक इस धरती में सार्वभौम होने में समर्थ नहीं हुआ। इस विधि से हम एकान्तवादी मान्यताओं के आधार पर, सार्वभौम नहीं हो पाये। क्योंकि हम मानव इस धरती पर एकान्तता का प्रमाण प्रस्तुत नहीं कर पाये हैं। इसका तात्पर्य जिस एक में सम्पूर्ण जीव जगत विलय होने अथवा लय होने की बात कही गई; वह अभी तक इस धरती पर किसी व्यक्ति के द्वारा प्रमाणित नहीं हो पायी है। हर मानव हर दिन भौतिक-रासायनिक रचना-विरचनाओं को देखता है, इसी को सृष्टि और लय कहता है। इसी क्रम में लय को एक में अन्त (विलय) होने वाला और ऐसे एक से ही सभी सृजन होना बताया गया है। इन दोनों क्रियाकलाप के मूल अभिप्राय रूपी जिस एक से पैदा होना है, जिस एक में विलय होना है, वह मूल तत्व ही प्रमाणित नहीं हो पाया। उसके बारे में कुछ अटकलें लगाते रहे, तत्कालीन रूप में ठीक लगा होगा। क्योंकि हर व्यक्ति कुछ न कुछ मान्यता रखते हैं। जहाँ तक सृष्टि, स्थिति लय को घटना और मानसिकता के संयोग से भाषा के रूप में हम पाते हैं, इसे अधिकांश लोग मानते हैं। इस क्रम में एकान्तवाद रहस्यमय होना सर्वविदित है ही और एकान्त की कल्पना प्रमाणित होना, अभी भी प्रतीक्षित है ही।

व्यवहार, अनुभव और प्रयोगपूर्वक प्रमाणित होने की विधि हम पाये हैं सभी इस तथ्य को समझ सकते हैं। इसे सभी प्रमाणित कर सकते हैं। अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिन्तन इसका आधार है। इस आधार के अनुरूप जीवन जागृतिपूर्वक अस्तित्व में अनुभूत होना एक स्वाभाविक उपलब्धि है। इस उपलब्धि की अपेक्षा हर मानव में है ही। हमें यह उपलब्ध है। इसी आधार पर (अनुभव के आधार पर) हम यह सत्यापित करते हैं - अस्तित्व स्वयं सहअस्तित्व है। सहअस्तित्व नियम है, नियन्ता नहीं है। सहअस्तित्व में भौतिक रासायनिक रचना-विरचना है, "लय" से इंगित कोई चीज नहीं है। विरचना को हम "लय" नाम रख सकते हैं। लय की परिकल्पना के अनुसार चीज गायब होने की बात, समाप्त होने के बात, अस्तित्व ही खत्म होने

की बात पर जो परंपराएँ तुले हैं, यह पूर्णतया भ्रम है, क्योंकि अस्तित्व न घटता है, न बढ़ता है। सहअस्तित्व में रचना-विरचना एक आवश्यकीय घटना है क्योंकि परिणामानुषंगीय, बीजानुषंगीय रचना होना पाया जाता है, इन रचनाओं का विरचना होते हुए उन-उन रचनाओं में समाहित रासायनिक-भौतिक रचनाओं का विलगीकरण ही होता है। विरचनाएँ होने मात्र से उन-उन में निहित वस्तु का तिरोभाव अथवा नाश नहीं होता। इसी तथ्यवश अस्तित्व स्थिर, नित्य वर्तमान रूप में देखने को मिलता है। इन तथ्यों से यह स्पष्ट हो जाता है - सहअस्तित्व नित्य प्रभावी है, वर्तमान है, क्योंकि अस्तित्व ही सहअस्तित्व है पुन: क्योंकि सत्ता में संपृक्त प्रकृति ही नित्य वर्तमान है। यही अस्तित्व है। इस प्रकार हम निष्कर्ष पर आते हैं कि जो कुछ भी है - यह सहअस्तित्व ही है न कि एकान्त। अतएव एकान्त विचार प्रमाण विहीन होना सबको विदित हो चुकी है, इसीलिये जो है, परम सत्य के रूप में उसे स्वीकारना जागृति अथवा जागृति क्रम का द्योतक है।

आत्मा, परमात्मा, अस्तित्व

इन मुद्दों में से आत्मा, परमात्मा की चर्चा अनेक भांति से मानव कुल में फैल चुकी है। परमात्मा को व्यापक बताते हुए आत्मा को परमात्मा का अंश होने की परिकल्पना यह चर्चा का विषय रही, प्रमाणित वस्तु के रूप में धरती पर किसी ने देखा नहीं। जब हम सहअस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिन्तन विधि से अस्तित्व को देख पाये तभी यह पता लगा कि व्यापक वस्तु में अनंत वस्तु क्रियाशील है। ये सभी अनंत वस्तुएँ चार अवस्था में क्रियाशील हैं। चारों अवस्थाओं को प्रमाणित करने वाला वस्तु अनंत रूपी प्रकृति ही है। यही जड़ और चैतन्य रूप में विद्यमान वर्तमान है। व्यापक वस्तु रूपी सत्ता में ही अनंत वस्तु रूपी प्रकृति नियंत्रित, संरक्षित रहना देखा गया। इन सम्पूर्ण अनंत में चारों अवस्था का मूल प्रभेद तत्व परमाणु ही है अर्थात् विविध प्रकार से अभिव्यक्ति होने का मूल तत्व परमाणु है। परमाणु में समाहित एक से अधिक परमाणु अंशों के संख्या भेद से ही विभिन्न अवस्थाओं की अभिव्यक्ति सहज हो पायी। ये परमाणु, अणु व अणु रचित रचनाओं के रूप में रासायनिक, भौतिक क्रियाओं को सम्पन्न करते रहे है। परमाणु ही विकासपूर्वक गठनपूर्णता पद में वैभव होना देखा गया। इसी को चैतन्य इकाई (जीवन) नाम से इंगित कराया गया।

मानव परंपरा में जीवन अपने ही कल्पनाशीलता - कर्म स्वतंत्रता की ओर प्रवृत्त होते हुए जागृति की ओर बाध्य होता गया। जागृति जीवन सहज स्वीकृति रहता ही है। जागृति अर्थात् जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह करना क्रियाकलाप ही है। यह प्रमाणित करने के लिये, ऐसे प्रामाणिकता को पाने के लिये, सर्वमानव इच्छुक रहा है। इन्हीं अस्तित्व सहज जीवन सहज आधारों पर समुदायगत संकीर्णताओं और वैज्ञानिक कर्मगत धरती के साथ किये जाने वाले अनिष्ट क्रियाकलाप के प्रति अस्वीकृति होते ही आया। जागृति के

लिये नित्य विद्यमान अस्तित्व, जीवन और मानवीयतापूर्ण आचरण ही प्रधान बिन्दु रहा अथवा सम्पूर्ण बिन्दु रहा। भले प्रकार से देखने-परखने के उपरान्त यह पता चला अस्तित्व में व्यापक वस्तु है, इसे परमात्मा के नाम से इंगित कर सकते हैं। यह भाग-विभाग होता नहीं। यह सम्पूर्ण प्रकृति में पारगामी है। परस्पर प्रकृति के लिये पारदर्शी है। इन प्रमाणों को हर व्यक्ति समझ सकता है। सत्ता में हर व्यक्ति डूबे, घिरे हुए स्थिति को देखता ही है। हरेक एक इसी प्रकार दिखती है। पारगामी होने का बिन्दु तभी पता चलता है, वस्तु में निहित ऊर्जा सम्पन्नता को, बल सम्पन्नता के रूप में देखा जाता है। इसे इस प्रकार देख सकते हैं कि प्रत्येक वस्तु मूलत: परमाणु अंश, परमाणु अंशों से रचित परमाणु, अनेक परमाणु से रचित अणु, अनेक अणुओं से रचित रचनाएँ दिखते ही हैं। परमाणु अंश, परमाणु के रूप में गठित होने के क्रम में इन अंशों के परस्परता में निश्चित दूरी होना पाया जाता है। ये दूरियाँ स्वयं व्यापक वस्तु ही है। ऐसे परमाणु अंशों को भी अनेकानेक भाग-विभाग में कम से कम गणितीय विधि से विभाजन कल्पना कर ही सकते हैं। कितने भी विभाजन करें एक की संख्या (अंश) बढ़ती जायेगी, न कि किसी एक का नाश होगा। इस सहज क्रिया से यह पता चलता है, एक का वैभव नित्य है। एक के सभी ओर ऊर्जा (व्यापक) दिखाई पड़ती है। इस विधि से सत्ता रूपी ऊर्जा पारगामी है। यह स्वाभाविक ही स्पष्ट हो जाती है। यह बौद्धिक प्रक्रिया इसलिये आवश्यक है कि जड़-चैतन्य रूपी अनन्त प्रकृति में सत्ता पारगामी है और यही पारगामीयता सहज महिमावश हर वस्तुएँ अथवा प्रत्येक एक सत्ता में भीगा हुआ होना पाया जाता है। इस मुद्दे को पहले भी स्पष्ट किया जा चुका है। अस्तु, अस्तित्व में व्यापक सत्ता विद्यमान है, आप हमारे आखों में देखने को मिलती है, इसका भाग-विभाग होता नहीं है और जीवों का उत्पत्ति अव्यक्त विधि से होता नहीं है।

अस्तित्व में परमाणु ही जीवन पद में गठनपूर्णता पूवर्क वैभवित है। जीने की आशा का उद्गमन जीवन में, से, के लिये होता ही रहता है। यही ऊर्जा आशा रूप में प्रगट है क्योंकि जीवन अक्षय बल - अक्षय शक्ति सम्पन्न है, इस बात को पहले स्पष्ट किया जा चुका है। इसी के साथ पहले यह भी स्पष्ट किया है कि गठनपूर्ण परमाणु पर रासायनिक-भौतिक दबाव-प्रभाव प्रभावशील होता नहीं है। रासायनिक-भौतिक वस्तुओं का दबाव-प्रभाव, इन्हीं के आपस में प्रभावशील होना देखा गया है। यह निष्कर्ष स्वाभाविक रूप में धरती, वायु, जल को नियंत्रित रखने के लिये सद्-बुद्धिदायी सूत्र है। इसी के साथ वन, खनिज का संतुलन, उसका उपयोग प्रयोजन को संतुलित रखने का प्रतिष्ठा, अधिकार (जिम्मेदारी) स्वाभाविक रूप में मानव से निर्गमित होता है और प्रमाणित होता है। यह सब जागृति और उसकी प्रभावशीलन का क्रम और वैभव है। इस प्रकार अस्तित्व सहज रूप में जीवन एक गठनपूर्ण परमाणु होना, जिसमें ही मन, वृत्ति, चित्त, बुद्धि, आत्मा रूपी जीवन बल; आशा, विचार, इच्छा, ऋतंभरा और प्रमाण रूपी जीवन शक्तियाँ प्रमाणित

होते हुए देखा गया है। अध्यात्म का परिभाषा सभी आत्माओं का आधार रूप में इंगित होना पाया जाता है क्योंकि सत्ता पारगामी है।

अस्तित्व में अनुभव विधि से यह तथ्य सुस्पष्ट हो जाता है कि जीवन एक गठनपूर्ण परमाणु है, इसमें मध्य में एक ही अंश कार्यरत है। सत्ता पारगामी होने के कारण, पदार्थ सत्ता को घेर नहीं पाता। इसका साक्ष्य यही है, किसी भी एक दूसरे के साथ भार बंधन का मूल में पाये जाने वाले चुम्बकीय धारा संबंध क्षेत्र से मुक्त होने के उपरान्त शून्याकर्षण स्थिति में स्पष्ट हो चुकी है। ऐसे स्थिति में हर वस्तु अपने ही गति और मात्रा के परिसीमन में निरंतरता को प्राप्त किया रहता है, जैसे यह धरती, सौर व्यूह है। यहाँ उल्लेखनीय तथ्य इतना ही है, व्यापक वस्तु भाग-विभाग होता नहीं है और इन चारों अवस्थाओं की प्रकृति अथवा किसी एक अवस्था की प्रकृति व्यापकता में से किसी एक अंश को घेर लेने में समर्थ नहीं है। इसीलिये इकाईयाँ सभी ओर से सीमित रहती है, ऐसे सीमाएँ व्यापक वस्तु में घिरा हुआ ही दिखाई पड़ता है। इस तथ्य से यह भी इंगित हुआ और स्पष्ट हुआ है कि सत्ता में प्रकृति अविभाज्य है और वर्तमान है। इस प्रकार अध्यात्म का तात्पर्य भी यही सार्थक समझ में आता है, व्यापक में अनंत का अविभाज्य वर्तमान। यह अध्ययन इसीलिये समीचीन है, रहस्य से नित्य कुण्ठित मानव परंपरा रहस्य मुक्ति चाहता ही रहा।

भोक्ता, भोग्य, भोग

अस्तित्व में जीवन जागृति पूर्वक मानव परंपरा में दृष्टा पद प्रतिष्ठा को प्रमाणित करना ही जीवन सहज तृप्ति और अस्तित्व सहज व्यवस्था है। व्यवस्था में ही हर मानव वर्तमान में विश्वास करना और होना पाया जाता है। और किसी उपाय से अभी तक प्रमाणित नहीं हुआ कि मानव को वर्तमान में विश्वास हो सके, कर सके। जीवन तृप्ति सहित मानव परंपरा तृप्ति, मानव परंपरा में, से, के लिये मूल उद्देश्य है। इसी सार्वभौम आशय को सार्थक बनाने के क्रम में हर व्यक्ति में स्वायत्तता, हर परिवार में समाधान, समृद्धि और सम्पूर्ण मानव में समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व यही अपेक्षित भोग है। भोग के मूल में सुखापेक्षा का होना सर्वमानव में दृष्टव्य है। यह भी देखा गया है कि समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व में जीवनापेक्षा सहज सुख, शांति, संतोष, आनंद वर्तमानित रहता है। मूल मुद्दा यही है कि सुविधाएँ और संग्रह इन्द्रिय सन्निकर्षात्मक भोग, अतिभोग, बहुभोग इसे वर्तमान तक अर्थात् बीसवीं शताब्दी के दसवें दशक तक अभिप्राय माना गया। इनके निष्कर्ष को इस प्रकार देखा गया कि संग्रह, सुविधा, भोग, अतिभोग के क्रम में सुख भासते हुए उसकी निरंतरता नहीं होती - यह सर्वविदित है ही। जबकि हम मानव सदा-सदा से सुखापेक्षा से ही परम्परा क्रम में व्यक्त होते आ रहे हैं। यह घटना अर्थात् संग्रह - सुविधा मूलक सुखापेक्षाएँ सदा-सदा ही हर व्यक्ति में क्षणिकता में भंगुरता को सत्यापित कराते ही आया है। ऐसी क्षणिकता (सुख

भासने वाली क्षणिकता) को पाने के लिये दिवा-रात्रि संग्रह सुविधा का परिकल्पना-सम्पादन कार्यों में लगा रहता हुआ अथवा लगे रहने के लिये इच्छा करने वाले स्थितियों में अधिकांश लोगों को देखा गया। अंतिम बात क्षणिकता के सत्यापन में ही हर पीढ़ी का उद्गार संप्रेषित होते ही आया। इस मुद्दे का संप्रेषणा इसलिये यहाँ स्मरण में लाया कि मानव परंपरा सुखापेक्षा से ही भय, प्रलोभन, आस्था, संघर्ष झेलता हुआ इतिहास रेखा बनाया है। यह रेखा मानव अपने भोग विधि और प्रवृत्ति विधि का संयोजन में स्पष्ट कर दिया है। प्रवृत्ति विधि कार्य और व्यवहारों में, प्रवृत्ति विधि के मूल में समझदारी का भी चिन्ह बना ही रहा।

कुछ समय तक मानव भयभीत होकर उससे छूटने का उपायों को ही समझदारी मान लिया। उसके तुरंत बाद या उसी के साथ साथ भय मुक्ति का स्थली को प्रलोभन के अर्थ में इन्द्रिय सन्निकर्ष व वस्तु संग्रह की ओर प्रवृत्त होना ही ज्ञान मान लिया। इनमें से समीचीन समस्याओं विकृतियों के चलते, इस धरती पर कोई सुख संभावना नहीं है। इस धरती पर कोई सुखी हो नहीं सकता। सुख स्थली कोई और है। वह ईश्वर परमात्मा का लोक है, घर है, देवी देवताओं का घर है, वहीं सुख मिलेगा। इस शरीर यात्रा में ऐसे अज्ञात ईश्वर, देवी देवताओं को प्रसन्न करना आवश्यक है, संभव है। ऐसी कल्पना के साथ अनेक उपाय सुझाया गया। इसी के साथ यह भी परिकल्पना दी, ईश्वर-देवी-देवता के शासन में ही हवा-पानी शासित रहने के बयान किये गये। साथ ही हर जर्रा शासित रहने का बयान दिया। यही आस्था स्रोत का आधार हुआ। कल्पनाएँ ज्यादा सुविधा की ओर दौड़ी। ऐसी ईश्वरीय और देवी-देवताओं के लोकों में सुख मिलने के लिये प्रलोभन और उनके कोपभाजक न होने के लिये भय का इस्तेमाल किया गया। यही आधार रहा है आस्थाओं का। जो सभी समुदायों में मौलिक ग्रन्थों के रूप में देखने को मिलता है। प्रकारान्तर से आस्था में भी वही भय और प्रलोभन जो इस धरती में भय और प्रलोभन के पराभव को स्वीकार कर चुके थे, उसी को पुन: दूसरे विधि से इस धरती से अतिरिक्त स्थली में सफल होने के आश्वासनों के साथ सम्पूर्ण आस्थाएँ, अधिकतम मानव मानस में स्वीकृत हुई। इस प्रकार के आस्था की लहरों को अभी भी धरती के जनमानस में देखा जा रहा है। इसमें समावेश हुई भय और प्रलोभन संघर्ष के रूप में आज प्रचलित हो चुकी है। जैसा-जैसा संघर्ष बुलंद होता गया वैसे वैसे संग्रह सुविधा की आवश्यकता का तादात बढ़ती गई। इसे पाने के प्रवृत्ति-प्रयासों के साथ साथ धरती, जल, वायु, वन, खनिज बरबाद होता गया। यही संघर्ष का परिणामों के रूप में आंकलन स्पष्ट हुआ है।

उक्त ऐतिहासिक तथ्यों को इसीलिये यहाँ स्मरण में लाना हुआ, हम मानव मूलत: सुखधर्मी है। सुखापेक्षा जीवन सहज है। जीवनापेक्षा सदा ही सुख, शांति, संतोष, आनन्द है। यह मानवापेक्षा रूपी समाधान,

समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व को प्रमाणित करने के क्रम में ही जीवन सहज सुख भोग नित्य सफल होने के लिये व्यवस्था ही एकमात्र शरण है।

व्यवस्था क्रम अपने आप में जागृति मूलक अभिव्यक्ति ही है। जीवन ही जागृत होना देखा गया है। समझदारी का धारक-वाहक केवल जीवन ही होना देखा गया है। जीवन सहित ही मानव परंपरा वैभवित रहना विदित है। इन तथ्यों के आधार पर अस्तित्व सहज व्यवस्था में अथवा नियति सहज व्यवस्था में जागृत होना और प्रमाणित करना ही सुख भोग का उपाय है। इस प्रकार सुख ही भोग का आशय है, आवश्यकता है। यह व्यवहार में सर्वतोमुखी समाधान प्रमाणित होने के क्रम में मानव में, से, के लिये नित्य समीचीन है। इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर आते हैं, भोग केवल सुख, शांति, संतोष, आनन्द है। ऐसे जीवनापेक्षा को भोगने के लिये समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व को प्रमाणित करना केवल व्यवस्था में ही संभव है, शासन में संभव नहीं है।

धर्मशासन और राज्य शासन विशेष और अव्यक्त के आधार पर तथा रहस्यमूलक होने के आधार पर सर्वसुख होना होता ही नहीं। विशेष अथवा विशेष व्यक्तियों के प्रति सम्मान इसलिये है, शापानुग्रह शक्ति अथवा ज्यादा से ज्यादा तंग करने के लिये शक्तियाँ विशेषों के पास हैं। इसके अतिरिक्त यह भी देखने को मिला कि विशेष व्यक्ति किसी जिज्ञासा को सफल होने के लिये आश्वासन देता है।

आदिकाल से भी विशेष अथवा आदर्श व्यक्ति कम संख्या में होते रहे हैं। सामान्य कहलाने वाले सदा सदा ही अधिक संख्या में रहते आये हैं। सम्मान अर्पण सदा ही विशेष व्यक्तियों के लिये सामान्य व्यक्तियों से होते ही आया। आज भी ऐसे ही अपेक्षाएं बनी रहती है। यह सर्वविदित है।

सामान्य व्यक्तियों के परस्परता में आजीविका संबंध प्रधान रहा है। इसी के साथ राज्य और धर्म शासन सूत्रों से अनुप्राणित संस्कृति, सभ्यता का धारक-वाहक होते हुए आज तक का इतिहास उक्त चार चौखटों से गुजरता हुआ देखने को मिलता है। यहाँ प्रासंगिक निष्कर्ष यही है, राज्य और धर्म शासन विधि से समाज रचना का सूत्र बनता ही नहीं है, न स्थापित हो पाया है। धर्म और राज्य के साथ, अभी तक जितने भी समुदायों के रूप में स्वीकृतियाँ है, वह सब संघर्ष परक ही है क्योंकि अभी तक समुदायगत राज्य और धर्म, सर्व स्वीकृति होना संभव नहीं हो पाया। धर्म और राज्य शासन छल, बल और प्रताड़ना जैसे औजारों के आधार पर ही गतिशील रहना देखने को मिल रहा है। इसका साक्ष्य यही है, धर्मशासन के अनुसार मानव प्रजाति सदा ही स्वार्थी अज्ञानी व पापी है। इससे छुटकारा दिलाना धार्मिक कार्यक्रम है। इस धरती पर जितने भी राज्य शासन है उनका मानना यही है देशवासी गलती, अपराध कर सकते हैं, पड़ोसी देश युद्ध कर सकते हैं इसलिये गलती को गलती से रोकना, अपराध को अपराध से रोकना और युद्ध को युद्ध से

रोकना है यही सभी राज्यों का कार्यक्रम है। इस बीच जन सुविधा, जन कल्याण के नाम से जन, तन, धन, मन को लगाकर कल्याणकारी कार्य का दावा किया करते हैं यही अभी तक देखने को मिलता है। ऐसी जनकल्याणकारी कार्य दूरसंचार, यातायात, वाहन, सड़क, स्वास्थ्य, जनसुविधा व शिक्षण संस्थाओं के रूप में होना देखने को मिलता है। इस धरती में कलात्मक विज्ञान, तकनीकी, व्यापार की शिक्षा ही स्थापित हुई दिखती है। इस धरती में अभी तक न्याय पूर्ण व्यवहार और समाधानपूर्ण व्यवस्था मानवीयता पूर्ण शिक्षा में प्रवेश ही नहीं हो पाया। जबकि विनिमय व सार्वभौम व्यवस्था ही शिक्षा की सम्पूर्ण आत्मा है। ऐसी व्यवहार शिक्षा के लिये आवर्तनशील अर्थशास्त्र और व्यवस्था, व्यवहारवादी समाजशास्त्र और व्यवस्था, मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान और व्यवस्था अनिवार्यतम स्थिति है। उत्पादन, प्रौद्योगिकी, तकनीकी को हर परिवार में समृद्धि सम्मत विधि से विकसित और स्थापित करने की आवश्यकता है। एक पीढ़ी समृद्ध होता है, आगे पीढ़ी को समृद्ध बनाने के लिये स्थापना कार्य को करते रहता है। समृद्धि के मूल में मानव व्यवहार ध्रुवीकृत होना आवश्यक है। मानव व्यवहार सूत्र मानव की परिभाषा और मानवीयतापूर्ण आचरण के रूप में अनुप्राणित होना देखा जाता है। फलस्वरूप परिवार मानव के रूप में प्रमाणित होना पाया जाता है। शिक्षा-संस्कार से हर मानव में स्वायत्तता प्रमाणित होना ही इसकी सार्थकता है। इन तथ्यों को पहले भले प्रकार से स्पष्ट किया जा चुका है। यथार्थ यही है हर जागृत मानव सुख, शांति, संतोष को ही भोगता है और कोई चीज को भोगता नहीं है। सुविधा-संग्रह भी सुख लक्षित होना सुस्पष्ट हो चुका है। इसी के साथ इसकी क्षणिकता, भंगुरता भी है, अतएव मानव इतिहास रूपी चारों सोपानों में कहीं भी सुख भोग की निरंतरता नहीं हो पायी। अब केवल परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था उसके पाँचों आयामों सहित कार्यप्रणाली में मानवापेक्षा सहित जीवनापेक्षा रूपी सुख, शांति, संतोष, आनंद भोगने में मिलता है। इसे भले प्रकार से हम देख पाये हैं। इस स्थिति के लिये हर व्यक्ति जागृत हो सकता है। इसी तथ्य के आधार पर सर्वसुख समीचीन है। सर्ववांछनीयता भी यही है। **इस प्रकार जीवन भोक्ता है, सुख भोग है, भोग्य वस्तु व्यवस्था है।** शरीर सहित मानव समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व सहज तथ्यों को भोगता है।

सिद्धी - चमत्कार

सिद्धी-चमत्कार के मुद्दे पर बहुत सारे वाङ्गमय और बहुत सारे लोगों का प्रयास अर्पित हुई। इसी के लिये योगाभ्यास, संयम, शक्तिपात, शक्ति जागरण, इन्द्रजाल, सम्मोहन जैसी प्रयोगों को किया जाना देखा गया है। इसके अलावा भी कितने भी प्रकार से सिद्धी-चमत्कार के लिये प्रयत्न किया जो वाङ्गमय रूप में भी नहीं पाया, ऐसा भी लोगों को देखा गया। ये सबका समीक्षा यही है अभी तक इस धरती पर सर्वशुभ के लिये उपकार, प्रमाण अथवा तर्कसंगत मार्ग जो अध्ययन विधि से बोध हो सके, ऐसा कुछ हो नहीं पाया।

पुन: यह सब में से समाधि लक्षित (सम्पूर्ण विचारों का मौन स्थली) प्रवृत्ति कार्य के अतिरिक्त सभी का सभी यश कीर्ति सुविधा संग्रह के लिये किया गया प्रयासों के रूप में परिणितियाँ देखने को मिली। जहाँ तक समाधि के लिये इशारा है यह घोर परिश्रम के अनन्तर होने वाली स्थली के रूप में देखा गया। इस स्थिति में सर्वसुख का कोई भी तरीका उपजता नहीं। इसलिये इसे स्वान्त: सुख कहा गया। यह सही होना देखा गया है परन्तु अस्तित्व में सिद्धी और चमत्कार के रूप कोई चीज नहीं है। जो कुछ है क्रमबद्ध है, नियमित है, संतुलित है और व्यवस्थित है। मानव कुल अभी तक व्यवस्था को ही पहचानने के क्रम में भयादि चारों सीढ़ियों को पार किया है।

सर्वशुभ समझदारी से ही है।

अध्याय - 7

जागृति कैवल्य

मानव परंपरा में जागृति कैवल्य शब्द परिचित सा है। सम्मानजनक अभिप्राय में ही इन शब्दों का प्रयोग किया गया है। इतना होते हुए इन दोनों शब्दों का अभिप्राय रहस्यमयता के चुंगल में फँसा होने के कारण, मानव परंपरा में प्रमाणित होने का संयोग ही नहीं हो पाया। प्रमाणित होने का तात्पर्य परंपरा में एक-दूसरे में एवं पीढ़ी से पीढ़ी में अंतरित होने से है। कैवल्य को अथवा जागृति को मानव परंपरा ही प्रमाणित करेगा। इसका परिभाषा और इसकी व्याप्ति समझ में न आते हुए भी सर्वोपरि शुभ स्थिति इंगित हो चुकी है। दूसरी विधि से मानव में स्वीकार्य हो चुकी है। जागृति का स्वरूप जीवन ज्ञान, सहअस्तित्व दर्शन ज्ञान ही है। जैसा जीवन है और अस्तित्व है उसे वैसा ही जानना, मानना, पहचानना और निर्वाह करना ही जागृति और जागृति का प्रमाण है। जीवन वस्तु को गठनपूर्ण परमाणु के रूप में स्वीकारते हुए, समझते हुए, जीवन वस्तु में ही अक्षय शक्ति, अक्षय बल का प्रवाह बना हुआ समझते हुए, स्वीकारते हुए जीवन सहज क्रियाकलापों के पाँच शक्ति और पाँच बलों को समझते हुए, स्वीकारते हुए, जीवन बल प्रवाह में प्रिय, हित, लाभ रूपी नजरिया एक दूसरे के लिए अपना-पराया होना समीक्षित होते हुए को सभी स्वीकारते हुए एक-दूसरे के लिए पूरकता को आवश्यक समझते हुए न्याय, धर्म, सत्य रूपी दृष्टियाँ एक दूसरे के साथ पूरक होते हुए सार्थकता का मार्ग प्रशस्त होता हुआ स्थिति और गतियों को समझते हुए उक्त नजरिये में सम्पूर्ण अस्तित्व को सहअस्तित्व रूप में साक्षात्कार करते हुए बोध और अनुभव करते हुए स्थितियों को विधिवत् समझते, सत्यापित करते हुए किया हुआ सम्पूर्ण आचरण अपने में मानवीयतापूर्ण आचरण होते हुए देखा गया है।

मानवीयता पूर्ण आचरण, मूल्य, चरित्र और नैतिकता का अविभाज्य रूप होना देखा गया है जिसको पहले स्पष्ट किया जा चुका है। हर परिवार मानव में मानवीयतापूर्ण आचरण ही समाज रचना और निर्वाह का सूत्र है। समाज रचना क्रम में ही परिवार रचना न्यूनतम आकार है। परिवार रचना के साथ ही व्यवस्था की आवश्यकता उद्भूत होना देखा गया है। व्यवस्था में जीना सर्वाधिक मानव का स्वीकृति है। व्यवस्था अपने में सहअस्तित्व सहज है, इस तथ्य को भी स्पष्ट किया जा चुका है, यह जागृति का पहला प्रमाण है। परिवार व्यवस्था में जीना सहज होने के उपरान्त ही समग्र व्यवस्था में भागीदारी संभव हो जाता है, समीचीन हो जाता है। जागृतिपूर्णता का यही प्रमाण होना देखा गया है। **समग्र व्यवस्था में भागीदारी का प्रमाण सहित**

अभिव्यक्ति, संप्रेषणा, प्रकाशन ही कैवल्य होना देखा गया है। कैवल्य अवस्था में सर्वतोमुखी समाधान अनुभव प्रमाण के आधार पर नित्य प्रवाह के रूप में होना पाया जाता है। कैवल्य अवस्था का महिमा यही है। इसी स्थिति में मानवापेक्षा, जीवनापेक्षा पूर्णतया प्रमाणित संतुष्ट रहना देखा गया। यही भ्रम से मुक्त अवस्था है। बंधन मुक्ति का सकारात्मक स्वरूप जागृति पूर्णता ही है। भ्रमवश ही बन्धन का पीड़ा होना पाया जाता है। मानव परंपरा में पीढ़ी से पीढ़ी भ्रमित होने का कारण परंपरा ही भ्रमित रहना रहा है। मानव परंपरा पाँच आयाम में प्रमाणित रहना ही जागृति है। स्वभावत: मानव अनेक आयामों में व्यक्त व प्रमाणित होने योग्य इकाई है। उपयोग, सदुपयोग, प्रयोजनशीलता को साक्षित होने, रहने, करने योग्य इकाई है। यह सब कैवल्य पद में सार्थक व चरितार्थ होता है। द्रष्टा पद जागृति योगफल में ही कैवल्य है न कि मोक्ष में।

मानव परंपरा जागृत होने के लिये अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित विश्व दृष्टिकोण को तर्क संगत विधि से अध्ययनगम्य होने के प्रणालियों से अभिव्यक्त होने के फलन में मानव परंपरा जागृत होना स्वाभाविक है। इसका प्रमाणों का धारक-वाहक अध्यापक ही होना पाया जाता है। निर्देशिका के रूप में वाङ्मय और धारक-वाहकता के रूप में अध्यापक ही हो पाते हैं। विद्यार्थियों को जागृत शिक्षा प्रदान करने में समर्थ होना स्वाभाविक है। इस क्रम में मानव परंपरा जागृत होने का संयोग समीचीन है। जागृति निरंतर, न्याय, समाधान, सत्य सहज होता ही है, इसका वैभव ही मानवापेक्षा और जीवनापेक्षा के रूप में सार्थक हो जाता है। ऐसे सार्थकता को प्रमाणित करना ही जागृत मानव परम्परा का तात्पर्य है।

कैवल्य अवस्था में प्रमाणित होता हुआ मानव में यह भी देखा गया है कि शरीर यात्रा की आवश्यकता शेष नहीं रह जाती है। कैवल्य पद प्रतिष्ठा प्राप्त जीवन जागृति पूर्ण होने के आधार पर जीवन के संपूर्ण क्रियाकलाप शरीर विरचित होने पश्चात् अनुप्राणित रहना देखा गया है। जागृति केन्द्रित वैभव जागृतिमूलक विधि से सम्पूर्ण जीवन क्रियाकलापों में जागृति अपने आप में प्रवाहित होता हुआ देखा गया है बल एक स्थिति, शक्ति एक गति के रूप में कार्यरत रहता है। बल और शक्ति में अविभाज्यता नित्य वर्तमान है। मूलत: बल ही है, महिमा के रूप में शक्तियाँ है। अनुभव मूलत: सहअस्तित्व में जागृति है। अस्तित्व सहज सहअस्तित्व में नित्य वर्तमान जीवन ही और जीवन में से आत्मा ही अस्तित्व में अनुभूत होना सहज है। अनुभव का स्वरूप जानने, मानने का तृप्ति बिन्दु पा लेना है। यही भ्रम निर्मूलन का प्रमाण है। अनुभव के अनन्तर अनुभव बोध होना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। ऐसे बोध में जानने, मानने की स्वीकृति बनी ही रहती है। यही ऋतम्भरा बुद्धि है। ऐसी बोध सम्पन्न बुद्धि का प्रवर्तन में ही सहज संकल्प, यथा सत्यपूर्ण संकल्प सुदृढ़ रहती ही है। इसीलिये सत्य सहज परावर्तन में दृढ़ता को संकल्प के नाम से इंगित कराया

गया। यह सत्य प्रभावी होना पाया गया है। सत्य सहज रूप में अस्तित्व ही है, इस तथ्य को यथा स्थान में स्पष्ट किया जा चुका है। यह नाम भी सत्य सहज दृढ़ता को इंगित कराता है। इस विधि से सत्य साक्षात्कार सहित चिन्तन सहज ही उत्सवित रहना देखा गया है। यही जीवन सहज नित्य उत्सव है। उत्सवापेक्षी चित्रण, तुलन, विश्लेषण , आस्वादन, चयन क्रियाएँ उत्सव से अनुप्राणित, उत्सवित रहते हैं। यह सब आत्म तृप्ति का ही द्योतक है। आत्मा निरंतर अनुभव तृप्ति सहज विधि से परमानन्दित रहना स्वाभाविक रहता ही है। इस क्रम में अनुभव सहज आनन्द, व्यवहार सहज सुख अपने आप में ध्रुव होना स्वाभाविक है, पुनश्च जागृति का स्वभाव होना देखा गया है। ऐसी नित्य उत्सव को ही कैवल्य का नाम दिया गया है।

नित्य उत्सव हर मानव का वांछित अभीप्सा है, जीवन सहज रूप में हर मानव शुभ स्वीकृति किया हुआ रहता है, जैसे सत्य, धर्म, न्याय स्वभाव इस प्रकार जीवन स्वीकृत तथ्यों के प्रति अपेक्षाएं रहना स्वाभाविक है। ऐसी अपेक्षाएँ सर्वमानव में विद्यमान है ही। इसीलिये सर्वमानव में, से, के लिये सर्वशुभ समीचीन है।

सर्वशुभ विधि जागृति मूलक अभिव्यक्ति और जागृतिगामी शिक्षा-संस्कार ही है। यही अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था का सूत्र है। इस विधि से अनुभवमूलक विधि से अभिव्यक्त होने का कार्यक्रम ही शिक्षा-संस्कार के रूप में प्रभावित व वांछित होना देखा गया है। इन तथ्यों को हृदयंगम करने के लिये "समाधानात्मक भौतिकवाद", "व्यवहारात्मक जनवाद" को अवश्य ही अध्ययन करें। मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान सहज विधि से अस्तित्व सदा-सदा ही विकासोन्मुखी सहअस्तित्व होने के कारण समाधान के अनंतर समाधान ही होना देखने को मिलता है। विकास का हर बिन्दु, हर कड़ी, हर अवस्था अपने आप में समाधान होना दिखाई पड़ती है। हर व्यक्ति को इसे हृदयंगम करना आवश्यक है।

जो कुछ भी हम अनुभव, बोध, चिन्तन, चित्रण, विश्लेषण पूर्वक मानसिकता को बनाये रखते हैं। ऐसे स्थिति में हर मानव व्यवहार में सामाजिक होना, परिवार समृद्ध होना पाया जाता है। इस तथ्य के आधार पर "व्यवहारात्मक जनवाद" स्रोत को और आधार को मानव के रूप में पाते हैं। इस विधि से मानव ही प्रमाणों का आधार होना पाया गया है। अस्तित्व नित्य वर्तमान है ही, मानव ही प्रमाण कर्ता है। प्रमाण कर्ता का तात्पर्य परम्परा में प्रमाणों को उद्घाटित करने, प्रमाणित करने और बोध कराने योग्य इकाई है।

मानव परंपरा व्यवहार, अनुभव और प्रयोग विधियों से प्रमाणित होना पाया जाता है। प्रमाणित होने के लिये उभय पक्ष की आवश्यकता है। इसलिये प्रबोधन, संबोधन होने रहने की स्थिति बनी रहती है। अनुभवमूलक विधि से ही प्रयोग व्यवहार प्रमाणित होता है। मानव समझता है इसलिये प्रयोग है। प्रयोग अपने आप में होता नहीं। सभी प्रयोगों का दृष्टा मानव ही है। ऐसे प्रयोगों में, से अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था में, से, के लिये साधन रूप में उपयोग, सदुपयोग, प्रयोजनशील होने वाली सभी उपलब्धियाँ, मानवीयतापूर्ण प्रयोगों

के रूप में होना पाया जाता है। इसके साथ यह भी आंकलन हो जाता है, मानव तथा नैसर्गिक असंतुलन के लिये किया गया सभी प्रयोग निरर्थक होना स्पष्ट हो जाता है। इस प्रकार प्रयोगों में, से जो कुछ भी हम पाते हैं यह सामान्य आकांक्षा और महत्वाकांक्षा सम्बन्धी वस्तुओँ के रूप में ही होना पाया जाता है। आज की स्थिति में इन वस्तुओं को पाने के लिये आवश्यकीय मानसिकता सहज ही लोकव्यापीकरण हो चुकी है। इनका उपयोग, सदुपयोग, प्रयोजनशीलता करतलगत नहीं हो पायी है। इसीलिये इनके अपव्यय को अर्थात् अमानवीयतावश अपव्यय की संभावना दिखाई देती है, इसका शमन, उपाय, समाधान मानवीयता पूर्ण पद्धति, प्रणाली, नीति सम्मत सार्वभौम व्यवस्था, अखण्ड समाज को जानने, मानने, पहचानने, निर्वाह करने की आवश्यकता है। यही अस्तित्वमूलक मानव केन्द्रित चिन्तन ज्ञान सहज सहअस्तित्व विधि पूर्ण परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था को साकार करना ही है।

व्यवस्था साकार होने के उपरांत शासन की निरर्थकता समझ में आती है। इसके फलस्वरूप छल, बल सहित किये जाने वाले द्रोह, विद्रोह, शोषण और युद्ध निरर्थक हो जाता है। साथ ही मानवीयता पूर्ण विधि क्रम में समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व में, से, के लिये कार्यक्रम, प्रवृत्ति, मानसिकता, अवधारणा और अनुभव सर्वसुलभ होना व्यवस्था गति में समाहित रहता है।

मानवीयतापूर्ण व्यवस्था गति बहुआयामी अभिव्यक्ति और उसका मूल्यांकन क्रम में तृप्ति, संतुष्टि और समीक्षा करने योग्य प्रणाली है। मानव अपने में, से किये गये सम्पूर्ण अभिव्यक्ति, संप्रेषणा, प्रकाशनों को व्यवहार में प्रमाणित करने के उपरान्त उसका मूल्यांकन करना ही सफलता की स्वीकृति के रूप में होता है। जागृत परंपरा में किये गये सम्पूर्ण कार्य-व्यवहारों का मूल्यांकन मानवीयतापूर्ण व्यवस्था के अंगभूत होने के कारण मूल्यांकन सदा समाधान सहज होना पाया गया है। मानव परम्परा में व्यवस्था सहज विधि से जीना ही जीने की कला को प्रमाणित कर पाता है। इस तथ्य को अच्छी तरह से देखा गया है। इसके साथ यह भी समीक्षित हुआ है कि व्यवस्था के पहले हम किसी भी प्रकार से जीने के जैसा नहीं दिखते हैं ये सब जीने के लिये प्रयत्नशील है।

जीना कम से कम तीन आयामों में स्वयं-स्फूर्त विधि से सम्पन्न होता है। तभी व्यवस्था में जीने का रस और सुख अपने आप मिलने लगता है। ऐसे तीन आयाम को न्याय सुलभता (न्याय प्रदायिता एवं पाने में सुलभता), उत्पादन सुलभता और विनिमय सुलभता पूर्वक ही हर परिवार व्यवस्था में जीता हुआ अनुभव करता है। ज्यादा से ज्यादा मानव, मानवीयतापूर्ण व्यवस्था में पाँचों आयामों में अपने भागीदारी को प्रमाणित करता है। यह उक्त तीनों के साथ शिक्षा-संस्कार सुलभता और स्वास्थ्य-संयम सुलभता है। इन्हीं व्यवहारिक आधारों के कारण मानव को जागृत और जागृतपूर्ण स्थितियों में देखा गया है। यह सबके लिये

समीचीन है। इन्हीं दो स्थिति को क्रम से क्रियापूर्णता और आचरणपूर्णता का नाम दिया है। आचरण की विशालता में ही विशाल, विशालतर और विशालतम व्यवस्था में भागीदारी सम्पन्न होना सहज है। सम्पूर्ण प्रक्रिया का सफल स्वरूप समाधान और समृद्धि के रूप में मूल्यांकित होता है। अभय, सहअस्तित्व मानवीयता पूर्ण आचरण का फलन है। इन तथ्यों को भली प्रकार से देखा गया है। इस प्रकार हर परिवार मानवीयतापूर्ण शिक्षा-संस्कार पूर्वक स्वायत्त मानव और परिवार मानव के रूप में जीते हुए व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी का प्रमाण प्रस्तुत करना सहज है। सहजता का तात्पर्य जागृति पूर्वक प्रमाण सहज गति ही सहज होना। जागृति नित्य समीचीन रहता ही है। यह परम्परा जागृत होने के उपरान्त ही सर्वसुलभ होता है। मानवापेक्षा, जीवनापेक्षा ही सार्वभौम अपेक्षा है। यही जागृति और कैवल्य का प्रमाण है।

जीवन ज्ञान, सहअस्तित्व दर्शन ज्ञान, मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान तथ्यों सहज विधिवत् अध्ययनपूर्वक बोध होना देखा गया है। ऐसे बोध सहज तथ्यों को उद्घाटित करने के क्रम में और लोकव्यापीकरण करने के क्रम में प्रमाणित होते ही है। फलस्वरूप अनुभूत भी होते हैं। इस प्रकार नित्य प्रमाण और अनुभव सहज रूप में ही सम्पन्न होता हुआ देखा गया है। यही कैवल्य और जागृति की महिमा है।

अस्तित्व सदा-सदा वर्तमानित है ही, व्यक्त भी है। अस्तित्व में अव्यक्त नाम की वस्तु अथवा नाम से इंगित वस्तु नहीं है। अस्तित्व निरंतर परम सत्य होने के कारण रहस्य भी नहीं है। अस्तित्व नित्य वर्तमान होने के कारण समझने वाले मानव में, से, के लिये अति सहज है, जटिल नहीं है। अतएव अस्तित्व में अविभाज्य रूपी मानव ज्ञानावस्था में होने के कारण इस अवस्था में, से, के लिये सार्थकता को प्रमाणित करने में समर्थ भी है। इन सभी कारणों से अनुभवमूलक विधि से जागृति और कैवल्य को प्रमाणित कर सकता है। मानव परंपरा इसका धारक-वाहक भी हो सकता है। यही ज्ञानावस्था का सार्थकता है।

मानव ही जीवन मूलक व्यवस्था है

ज्ञानावस्था में पाये जाने वाले मानव अपने में मौलिक अभिव्यक्ति होना सर्वस्वीकृत है। इस मौलिकता के मूल में शरीर रचना के आधार पर पहचानने के लिए कोशिश किया वह नस्ल के ढांचे-खाँचे में पहचानने में आता रहा। इसी के साथ अर्थात् शरीर रचना के साथ रंग में भी विभिन्नता होना देखा गया। इन्हीं मुद्दे पर सर्वाधिक समय मानव अपने को मनमानी सोच में लगाया। इसी क्रम में मानव, मानव के साथ जैसा भी पाशविकताएँ बरती गई हैं वह सर्वविदित है ही। यह आरंभिक काल में ही अर्थात् इस धरती पर मानव के अवतरण होने के थोड़ ही समय के उपरांत घटित घटनाओं के आधार पर समझा जाता है। इसके पश्चात

भी बहु कारणों से समुदायों को अलग-अलग श्रेष्ठ-नेष्ठ बताने के लिए प्रयास किया गया, वाङ्गमय बनाये गये और उनके आधार पर आचार संहिता बताई गई। अभी तक यही निष्कर्ष निकला है कि सार्वभौम रूप में मानव को पहचानने का विधि स्थापित नहीं हुआ। जबकि सुदूर विगत से ही यह प्रयास जारी रहा है।

जैसा-जैसा मानव अधिकाधिक आयामों में अपने को सार्थक बनाने जाता रहा उनके सम्मुख उतना ही अधिक जटिलताएँ आता रहा। इन सभी कुण्ठा, प्रताड़नाओं को झेलता हुआ मानव लुके छिपे विधियों से अपने में अच्छाइयों को पालने का भी बहुत सारा प्रयत्न करता रहा। ये सब करने के उपरांत भी अच्छाइयों का तृप्ति बिन्दु कहीं मिल नहीं पाया। इन्हीं सब विरोधाभासी घटनाक्रम में मानव अपने को पहचानने की अभीप्सा को बरकरार रखा। यही मुख्य रूप में परंपरा का देन है। इसी क्रम में पहले कहे गये चारों विभूतियों के गुजर रहे हैं। इन्हीं में उतरता-चढ़ता रहा विभिन्न समुदायगत मानव दृष्टव्य है।

प्रधान उलझन यही है मानव शरीर मूलक व्यवस्था है या जीवन मूलक व्यवस्था है? यदि जीवन मूलक व्यवस्था है, ऐसी स्थिति में जीवन क्या है? कैसा है? क्यों है? इन्हीं प्रश्नों से बोझिल होता है। इसका उत्तर भौतिकवादी, अधिभौतिकवादी व अध्यात्मवादी विधि से व अधिदैवीवादी विधियों से अध्ययन प्रक्रिया सहित कोई तथ्य कल्पना प्रस्तुत नहीं कर पाया। विचार तो काफी दूर रहा। इसका उत्तर "अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिन्तन" से प्राप्त किया जाना सहज सुलभ है। यह रहस्यों और अनिश्चयताओं से मुक्त विधि है, और क्रम पूर्वक हृदयंगम होता है। इसी बिन्दु पर सुस्पष्टता के लिये विभिन्न स्थलियों में आवश्यकतानुसार अवगाहन योग्य तथ्यों को प्रस्तुत किया।

अस्तित्व सर्वमानव को स्वीकृत होने के रूप में अनेकानेक ग्रह-गोल, ब्रह्माण्ड, यह धरती, धरती में पानी समुद्र, नदी, नाला, हवा, वन, खनिज, जीव-जानवर, कीट-पतंग, पशु-पक्षी का होना आबाल वृद्ध पर्यन्त हर व्यक्ति को समझ में आता है। इस धरती पर स्वयं के सदृश्य बहुत सारे लोग का होना भी स्वीकार होता है। इस परिशीलन से मानव सहित अस्तित्व सहज वर्तमान स्वीकार्य होता है। इससे आगे का मुद्दा मानव ही अस्तित्व का दृष्टा, अर्थात् देखने-समझने वाला इकाई है।

उक्त तथ्य आदिकालीन मानव के सम्मुख भी यथावत् बना ही रहा। इन सबको बनाने वाला कोई और है; ऐसा मानने वाले बनाने वाले को खोजने-मानने और मनाने के कार्य में लग गये। इस मुद्दे पर धरती के सभी प्रकार के समुदाय फँसे ही है। जबकि धरती में स्थित ये सभी परस्परताओं में पूरक और विकासक्रम में काम करते रहते हैं। इसे दूसरे भाषा में यह कहना बनता है नियंत्रित, नियमित विधि से काम करते रहे हैं। विकास के आधार पर हर वस्तु अपने-अपने पद प्रतिष्ठा में रहता ही है। ऐसे निरंतर रहने वाली वस्तुएँ मूलत: एक-एक के रूप में अनन्त वस्तुएँ और व्यापक वस्तु में होना सबको समझ में आता है। इसी मूल

तथ्य से वंचित होने से ही बनाने वाले को खोजने गये। रचना-विरचना क्रम में रासायनिक-भौतिक वस्तुएँ हैं। इन्हीं वस्तुओं को अपने कल्पनाशीलता कर्मस्वतंत्रता का प्रयोग करते हुए मानव कुछ रचनाओं को बना लिया है, कुछ रचनाओं को बना सकता है। मानव जो कुछ रचनाओं को साकार करता है, उसका विरचना होते ही रहता है। चाहे प्राकृतिक रूप में हो, चाहे मानवकृत रूप में हो, अथवा जीव कृत रूप में हो। इनसे किया गया सभी रचनाएं विरचित होते हुए देखा गया है। जैसा मधुमक्खी के छत्ते का रचना-विरचना, पक्षियों के घोंसले का रचना-विरचना, दीमकों से बनी बांबीयों का रचना-विरचना, मानव के द्वारा बनाई गई झोपड़ी, महल, सेतु, महासेतु, सड़क, यंत्र-उपकरणों का रचना-विरचना होने का तथ्य को आप हम देखते ही रहते हैं। यह ध्यान में लाने की आवश्यकता है, निर्णय लेने की आवश्यकता है, ये दोनों क्रिया के लिये मानव, अस्तित्व सहज रूप में पर्याप्त रहना देखा जाता है। इस धरती के बाहर भी जो कुछ भी वस्तुएँ है, रचना-विरचना क्रम में ही सदा-सदा ही तरल-तरल के साथ, विरल-विरल के साथ, ठोस-ठोस के साथ सहअस्तित्व सहज नियम के आधार पर वर्तमानित रहता है। अस्तित्व न घटता है, न बढ़ता है।

अस्तित्व सदा-सदा होने के वैभववश ही अस्तित्व नाम है, इसमें सहअस्तित्व विधि से संतुलन, नियंत्रण, संरक्षण, परिणाम, विकास, जागृति जैसी अभिव्यक्तियाँ सदा-सदा रहता ही है। ऐसा कोई क्रियाकलाप को हम प्रस्तुत या कल्पना नहीं कर सकते हैं जो अस्तित्व में नहीं। अब रहा इस ग्रह गोल में हो, उस ग्रह गोल में न हो, यही स्थितियों के आधार पर किसी भाव की अपेक्षा में ही अभाव का कल्पना हो पाता है, हर अभाव देश काल ही है। इस आधार पर कोई नया-पुराने की बात नहीं हो पाती, नया-पुराना के स्थान पर नित्य वर्तमानता का भाव समीचीन रहता है। सम्पूर्ण भावों का स्वरूप ही अस्तित्व है। दूसरे विधि से ऐसे स्वरूप को अस्तित्व नाम दिया गया। मानव ही दृष्टा पद प्रतिष्ठा में होने के कारण अस्तित्व को देखने, समझने, समझाने योग्य है। अभी तक जो कुछ भी अध्ययन के नाम से की गई है अथवा अध्ययनपूर्वक हाथ लगा है, वह सब अस्तित्व सहज सहअस्तित्व में ही हुआ। हर अध्ययन का कसौटी यही है पूरकता, विकास, जागृति, उदात्तीकरण, प्रक्रिया-प्रणाली अनुरूप रहने से इसके विपरीत कुछ भी किया जाता है सर्वाधिक मानव ही परेशान होने से शुरुआत होता है। जैसा युद्ध, शोषण, द्रोह, विद्रोह क्रियाकलाप के लिये किया गया सभी प्रकार का प्रयास। इस क्रियाकलाप के लिए जितना भी सोचा गया है मानव दुखी पीड़ित होकर सोचा है। पीड़ाओं का उपचार उत्पीड़न विधि को अपनाने से युद्ध कर्म, युद्धाभ्यास, युद्धकौशल, युद्ध तकनीक की सामाग्रियाँ बनते आया। आज की स्थिति में युद्ध और शोषण के लिए सर्वाधिक जन-धन लगा हुआ है। इसके लिए द्रोह, विद्रोह, शोषण अति आवश्यक हुआ। इसीलिये धरती के श्रेष्ठतम प्रतिभाएँ इन्हीं कार्यों के लिए नियुक्त हुई है।

युद्ध के लिए व्यापार एक अनिवार्यता रही। अभी तक जितने भी युद्ध-व्यापार हुए, देश, देशों के बीच, पहले से अधिक शंका-कुशंका भयोत्पादी क्रम में प्रभावित हुआ। यह सम्पूर्ण मानव का देखा हुआ तथ्य है। व्यापार और युद्ध के लिए द्रोह-विद्रोह अति अनिवार्य रहा। इस प्रकार युद्ध पूर्वक शोषण, व्यापार पूर्वक शोषण कार्यों को इस धरती पर देखा गया है। जो अत्यधिक शोषण कर लेता है उसे विकसित देश कहने, स्वीकारने तक मानव जाति तैयार हो गयी। जबकि युद्ध, शोषण, द्रोह, विद्रोह समाज रचना और समाज वैभव का सूत्र नहीं बन पाती है। इसलिये व्यापार और नौकरी में लगे हुए आदमियों से समाज रचना, समाज संरक्षण, समाज संतुलन, समाज नियंत्रण जैसी महत्वपूर्ण मुद्दों का पूरक होना, इस धरती पर देखा नहीं गया। यहाँ इन तथ्यों को उद्घाटित करने के मूल में आशय यही रहा कि हम मानव जाति किस प्रकार के प्रवृत्तियों के चंगुल में आ चुके हैं जिसके फलस्वरूप मानव परेशान होता ही है, उसके साथ-साथ धरती उजड़ने की ओर गति बन चुकी है।

चाहे उपयोगिता विधि से हो, चाहे संग्रह विधि से हो, चाहे युद्ध के लिये हो, चाहे जो कुछ भी वस्तुएँ चाहिये उनकी इस धरती से ही आपूर्ति होना, इसके लिए वन खनिज ही स्त्रोत है। धरती में जो कुछ भी वन खनिज बनी है, मानव के अवतरण के पहले से ही स्थिति में था ही उसके अनन्तर ही मानव का अवतरण इस धरती पर हुआ। मानव अपने को अखण्ड समाज के रूप में जीने की आवश्यकता को सोचा ही नहीं है। फलस्वरूप जीव-जानवरों के सदृश्य नस्ल, रंग के आधार पर लड़-भिड़कर अपने भद्दगी जितना करना था वह सब कर चुका।

अभी इस बीसवीं शताब्दी के दसवें दशक में देश, देश के साथ कूटनीतिक व्यापारोन्मुखी शोषण तंत्र का मुद्दा यही है कि विकसित देश कहलाने वाले, ऐसा कहलाने के लिए पैमानों को पहचाना गया है, अधिकाधिक सुवर्ण धातु जिस राष्ट्र कोष में संग्रहित हो चुका हैं उस देश का मुद्रा विकसित हो जाता है। यह व्यापार तंत्र का धन, धन को पैदा करता है सिद्धांत के आधार पर आधारित है। जिन-जिन देश के राष्ट्र कोष में सुवर्ण धातु कम रहती है उस देश की मुद्राएँ अविकसित रहती है। दूसरे भाषा में ज्यादा मूल्यवान, कम मूल्यवान हो जाता है जबकि दोनों कागज ही रहता है।

दूसरा विकास का मापदण्ड समर शक्तियाँ, सामरिक सामग्री, सामरिक प्रयास जिन देशों में सर्वाधिक रहता है, उसी को विकसित देश कहा जाता है। युद्ध से शोषण की चर्चा सुनने में मिलता ही है। इस शताब्दी में हुई युद्धों के सिलसिले में भी शोषण-लूट-खसोट की चर्चाएँ जनवार्ताओं में देखा गया है। इन दो मापदंडों में जो विकसित देश है, अब अन्य देशों के वन खनिज को उपयोग करने के लिए इच्छुक हो चुके हैं इसके लिये सभी योजनाएं बन चुकी हैं। यहाँ उक्त तथ्यों का उल्लेख करने का आशय इतना ही है जिन युद्ध,

शोषण, द्रोह-विद्रोह पूर्वक लाभोन्माद, भोगोन्माद, कामोन्माद की ओर सभी विधा में अग्रसर है। उसके लिए अंत विहीन साधनों की अपेक्षा मानव मात्र में होना देखा जा रहा है। इसकी आपूर्ति इस धरती से संभव नहीं है। इसलिये और भी संघर्ष की ओर इसका स्पंदन दिखाई पड़ती है। अतएव इससे मुक्त होना सहज सुंदर, सुखद, समाधानपूर्ण परंपरा बनानी ही है।

इस विधि से हम इन तथ्यों के प्रति स्पष्ट हो चुके हैं कि वस्तुओं के आधार पर (रासायनिक-भौतिक) मानवाकांक्षा सम्मत व्यवस्था नहीं हो पाती है। यह जीवन जागृति मूलक विधि से ही सम्पन्न होना देखा गया है। जीवन में ही तुलन कार्यकलाप सहज रूप में ही सम्पन्न होने के कारण भौतिक-रासायनिक वस्तु संसार में प्रियाप्रिय, हिताहित, लाभालाभ तुलन के कसौटी पर देखा जा सकता है, देखा गया है। न्याय, धर्म, सत्य को मानव चेतना पूर्वक सर्वतोमुखी समाधान (धर्म) सहअस्तित्व सहज परम सत्य दृष्टियों के आधार पर अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था को परंपरा के रूप में पाना सहज समीचीन है। बहुमुखी अभिव्यक्ति रूपी मानव सर्वतोमुखी समाधानपूर्वक ही व्यवस्था और उसका सार्वभौमता को प्रमाणित करने में सक्षम है। इसे योग्यता और पात्रता में प्रमाणित कर देना ही मानव परंपरा का प्रतिष्ठा है, क्योंकि जीवन में अक्षय शक्ति, अक्षय बल अविनाशिता सहित नित्य समीचीन है। उसे व्यवस्थात्मक प्रणालियों के रूप में परिशोधित प्रवर्तित करने की आवश्यकता है।

न्याय, धर्म, सत्य को स्वीकारने वाला, व्यंजित होने वाला, प्रमाणित होने वाला और प्रमाणों को प्रस्तुत करने वाला मानव जीवन ही है। इस तथ्य को भले प्रकार से देखा गया है। प्रिय, हित, लाभानुवर्ती कार्यकलापों में व्यस्त रहते हुए भी न्याय, धर्म, सत्य की स्वीकृति, अपेक्षा, कल्पना करता हुआ मानव को देखा जाता है यही इस बात का द्योतक है। इन्द्रिय सन्निकर्ष में प्रिय, हित व्यंजनाएँ होते हुए लाभ की कल्पना (अस्पष्ट आशा, विचार, इच्छा का क्रियाकलाप) लाभ की स्वीकृति को मानव में होना पाया जाता है। इसका अंतिम सर्वेक्षण हानि का अस्वीकृति, लाभ की स्वीकृति। उल्लेखनीय तथ्य यही है अस्तित्व में लाभ-हानि का कोई विधि नहीं है। इसलिए कहीं लाभ होता है तो कहीं हानि हो ही जाता है। इसलिए आज तक लाभोन्मुखी व्यापार विधि से कोई संतुष्टि बिंदु अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है। जबकि मानव हर विधाओं में संतुष्ट होना चाहता है। इसीलिए चाहना, होने का विरोधी है। सम्पूर्ण क्लेश भ्रमवश ही हो पाता है। जीवन ही भ्रमवश शरीर को जीवन समझने का फलन है। जीवन, जीवन को समझने के उपरान्त भ्रमजाल कष्टों से मुक्त होने के लिए उपायों को सोचना स्वाभाविक है। इसी क्रम में यह अध्ययन के लिए प्रस्तुत किया गया है। अस्तित्व न घटता है, न बढ़ता है, इसलिए लाभ-हानि से मुक्त है, इसलिये नाश से मुक्त है। इस प्रकार अस्तित्व नित्य वर्तमान रूप में अपने यथास्थिति में बने रहने का वैभव स्पष्ट है। अस्तित्व में अविभाज्य

मानव भी सहअस्तित्व में अनुभूत होना स्वाभाविक है। सहअस्तित्व में ही व्यवस्था का विधान है। विविधता के साथ ही जुड़ा हुआ परस्पर पूरकता सूत्र ही विधान है। ऐसा विधान नियति सहज रूप में नित्य प्रभावी है। यही सहअस्तित्व का प्रमाण है। इसका और प्रमाण ग्रह-गोल एक दूसरे के पूरक होना; पदार्थ, प्राण, जीव और ज्ञान अवस्था परस्पर पूरक होना ही है।

पूरकता सहज विधि से अनुप्राणित होना रहना ही व्यवस्था सूत्र का आधार है। यह संवेदनशीलता, संज्ञानशीलता का संतुलन रूप में कार्यरत होना देखा गया है। जानने-मानने के रूप में संज्ञानशीलता को और पहचानने-निर्वाह करने के रूप में संवेदनशीलता को हर मानव अपने में और सम्पूर्ण मानव में पहचान सकता है। यही संवेदनाएँ अर्थात् पहचानने-निर्वाह करने का प्रवर्तन क्रम में पूरकता विधि अपने आप से चरितार्थ होता है। ऐसी चरितार्थता जीवन सहज अक्षय शक्तियों का ही वैभव है। इस क्रम में सम्पूर्ण मानव अपने को प्रयोजित कर पाना समीचीन है। इस क्रम में यह पता लगता है, समझ में आता है। मानवीयतापूर्ण आचरण के रूप में प्रमाणित हो जाता है कि मानव संचेतना अर्थात् संवेदनशीलता संज्ञानशीलता में, से जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह करना यह पूणर्तया जागृत मानव सहज कार्यकलाप है। जीवन ही संज्ञानीयता का, मानव ही संज्ञानीयता-संवेदनशीलता का धारक-वाहक है। इस तथ्य को भले प्रकार से देखा गया है। निर्वाह करने की स्थिति में हर मानव द्वारा प्रमाणित होना आवश्यकता के रूप में देखा गया है। ऐसे प्रमाणीकरण क्रम में ही न्याय, धर्म, सत्य प्रमाणित होना स्वभाविक है।

शरीर तंत्र में प्रधानत: मेधस तंत्र ही सर्वोपरि सूक्ष्म तंत्र के रूप में देखने को मिलता है। मेधस तंत्र रचना सर्वाधिक पुष्टि तत्व से बना हुआ दिखाई पड़ता है। यह जीवन विचारों के साथ-साथ तंत्रित होना स्पष्ट होता है क्योंकि जीवन्त शरीर में ही मेधस तंत्र ही इसके क्रियाकलापों को करता हुआ देखने को मिलता है। इस रचना में कहीं भी ऐसी स्थली नहीं है जिसमें न्याय, धर्म, सत्य को बनाए रखे। इसी प्रकार हृदयतंत्र, फुफ्फुसतंत्र, आंत्र तंत्र, प्लीहा तंत्र, वृक्कतंत्र, मलाशय, गर्भाशय तंत्रों में इसे बनाये रखने का कोई स्थली नहीं है। और भी देखा गया पाँचों कर्मेन्द्रियों-ज्ञानेन्द्रियों में भी न्याय, धर्म, सत्य को पहचानने की स्थली कुछ भी नहीं है। इन तथ्यों से यह विदित हो जाता है कि जीवन शक्तियों से तंत्रित मेधस तंत्र द्वारा ज्ञानेन्द्रियों का कार्यकलाप सम्पन्न होता हुआ स्पष्टतया देखा गया है। अतएव जीवन ही न्याय, धर्म, सत्य को जानता है, मानता है, पहचानता है, निर्वाह करता है। फलस्वरूप जीवनाकांक्षा रूपी सुख, शांति, संतोष, आनंद भोगता है। भ्रमवश ही शरीर को जीवन मानते हुए प्रिय, हित, लाभात्मक प्रवृत्तियों में ग्रसित होते हुए स्वयं दुखी होता है, अन्य को दुखी बनाता है। नैसर्गिकता को भी अव्यवस्था में परिणित कर देता है। इस प्रकार से मानव अभी तक भ्रमित कार्यों को पूरा करने वाला है या कर चुका है। अब शेष जागृत कार्यों विचारों

सहित सार्वभौम व्यवस्था, अखण्ड समाज सूत्रों में सूत्रित होना ही है। यही मानव का सुखद, सुंदर, समाधानपूर्ण कार्य है।

भूमिः स्वर्गताम् यातु, मनुष्यो यातु देवताम् ।
धर्मो सफलताम् यातु, नित्यम् यातु शुभोदयम् ॥

मूल ग्रंथ

"अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन"

बनाम

"मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद"

दर्शन (मध्यस्थ दर्शन)

- मानव व्यवहार दर्शन
- मानव कर्म दर्शन
- मानव अभ्यास दर्शन
- मानव अनुभव दर्शन

वाद (सहअस्तित्ववाद)

- व्यवहारात्मक जनवाद
- समाधानात्मक भौतिकवाद
- अनुभवात्मक अध्यात्मवाद

शास्त्र (अस्तित्व मूलक मानव केंद्रित चिंतन)

- व्यवहारवादी समाजशास्त्र
- आवर्तनशील अर्थशास्त्र
- मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान

संविधान

- मानवीय आचार संहिता रूपी मानवीय संविधान सूत्र व्याख्या

परिभाषा

- परिभाषा संहिता

अन्य

- विकल्प एवं अध्ययन बिंदु
- आरोग्य शतक

मध्यस्थ दर्शन पर आधारित उपयोगी संकलन

परिचयात्मक संकलन

- जीवन विद्या एक परिचय
- दिव्य पथ (जीवन परिचय – श्रद्धेय श्री ए. नागराज)

सहयोगी संकलन

- संवाद भाग - 1
- संवाद भाग - 2

प्रकाशित पुस्तक प्राप्ति ईमेल :

books@divya-path.org

प्रकाशित एवं अप्रकाशित मूल प्रति डाउनलोड :

www.madhyasth.org

सामान्य पूछताछ :

info@divya-path.org

Madhyasth Darshan Information Portal /

'जीवन विद्या' गतिविधि जानकारी :

www.madhyasth-darshan.info